उद्गीत

तेजस्वि नावधीतमस्तु

जनवरी-मार्च, 2025

अंक 3

उद्गीत

PEER REVIEWED JOURNAL

SHIVAJI COLLEGE

विषय : भारतीय मूल्यबोध और हिंदी सिनेमा

Shoonya Theatre Group in Association
with Kala Mandali Delhi Presents
Rama Yadav's
कस्तूरबा के गाँधी
Design & Direction: Rama Yadav , Mayank
Date: 21st April 2025 , 2:30 PM
Sammukh Auditorium,NSD Delhi
Ministry of Culture
Government of India

दो-दिवसीय
राष्ट्रीय
संगोष्ठी

उद्गीत

साहित्य, समाज और संस्कृति की संवाहक त्रैमासिक पत्रिका

PEER REVIEWED JOURNAL

अंक 3 जनवरी–मार्च, 2025

उद्गीत

अंक 3, जनवरी-मार्च, 2025

संपादक : **वीरेंद्र भारद्वाज**

संस्थापक : **रमेश गौतम**

संरक्षक : **यामिनी गौतम**

संपादक मंडल

अनीता देवी

आशा

ज्योति शर्मा

मीनू कुमारी

धर्मेंद्र प्रताप सिंह

विद्वत समीक्षक मंडल

माधुरी सुबोध

सविता मुद्गल

जय विनोद कुमार

मंजु शर्मा

अमितेश कुमार

प्रूफरीड : राम भुआल (शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

इस अंक का मूल्य : 40 रुपये

संपादकीय संपर्क

प्लॉट नंबर 75, चतुर्थ तल

पॉकेट 8, सेक्टर 21

रोहिणी, दिल्ली-110086

udgeet8@gmail.com

https://udgeet.in/

संपादन : अवैतनिक

लेखकों के व्यक्त विचारों से संपादक या प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अंतर्गत विचाराधीन होंगे।

अनुक्रम

संपादकीय

संस्कृति और अध्यात्म 5

हिंदी साहित्य

अवधी के 'मानस' की परंपरा में 'उभय-प्रबोधक रामायण' — राजकुमार उपाध्याय 'मणि' 6

मानवता की रक्षा करना मनुष्य का परम धर्म है (संदर्भ: प्रेमचंद की कहानी 'मंत्र') — अनीता देवी 11

धूमिल के काव्य में युग-चेतना — मीनू कुमारी 14

'प्रियप्रवास' की राधा का लोक कल्याणकारी रूप — प्रवीण भारद्वाज 18

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श: अस्मिता, संघर्ष और स्वीकार्यता — पवन कुमार 21

संत काव्य की क्रांति-चेतना और तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य — सोनाली 24

आदिकालीन और मध्यकालीन हिंदी काव्य में अभिव्यक्त मानवीय मूल्य — मनीष कुमार 28

भाषा चिंतन

हिंदी भाषा का विकास और वर्तमान परिस्थिति — राहुल सिंह 33

संस्कृत से हिंदी तक : भाषाई संक्रमण और परंपरा का प्रवाह — अनुराग सिंह 35

कृत्रिम बुद्धिमत्ता

मानव और कृत्रिम बुद्धिमत्ता: सहयोग या प्रतिस्पर्धा? — श्री प्रवेश 39

सिनेमा

अज्जो : बेटी इंडिया की — कुसुम लता 41

ओटीटी प्लेटफॉर्म : वेब सीरीज और हिंदी फिल्मों का बदलता स्वरूप — संदीप सो. लोटलीकर 43

ओटीटी प्लेटफॉर्म द्वारा उत्पन्न सांस्कृतिक प्रभाव और वैश्विक कंटेंट का स्थानीयकरण — पूजा द्विवेदी 46

सोहराब मोदी : भारतीय इतिहास को सिनेमा के पर्दे पर जीवंत करने वाला व्यक्तित्व — आकांक्षा 48

कहानी

'बिट्टी' (कुंठित समाज के नागपाश से ग्रसित नारी की हृदयग्राही कथा) — वीणा विज 'उदित' 51

अद्‌भुत दुनिया में अमूल्य उपहार — पूजा पाराशर 55

कविता

कविताएँ — शिवम द्विवेदी 57

आधुनिकता के दौर में — अमर वर्मा 59

संघर्ष — सूरज मिश्रा 59

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय-चेतना के स्वर — ममता 60

व्यंग्य

सिद्धा पर गिद्ध — दिलीप कुमार — 63

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में युगबोध — दीक्षा गुप्ता — 65

नाटक और रंगमंच

लोकनाट्य परंपरा में 'बिदेसिया' का स्थान — पूजा कुमारी — 70

हृषिकेश सुलभ के नाटकों में लोक-चेतना और सामाजिक यथार्थ — राहुल — 74

संस्कृति और अध्यात्म

संस्कृति और अध्यात्म ये दोनों ही शब्द राष्ट्र की अस्मिता को गढ़ते हैं। वह राष्ट्र, राष्ट्र बन ही नहीं पायेगा, जहाँ संस्कार न हो और वे संस्कार हमें मानव मात्र ही नहीं प्राणी मात्र से न जोड़ें। आज विश्व स्तर पर महती आवश्यकता है कि प्राणी विजय-पराजय के कुढ़ंग से ऊपर उठे। अहं प्रेरित विस्तारवादी निरंकुश सत्ता विश्व में भयानक रूप से उग्र रूप ले रही है, जिसका एक-मात्र समाधान है-भारतीय मनीषी चिंतन परंपरा में।

अध्यात्म की सुदृढ़ भित्ति पर हमारा आर्ष-चिंतन निर्मित है। अथाह सागर के समान हमारे पास अनंत ज्ञान का वह भंडार है जो संपूर्ण विश्व को मानवीय बनाने की अद्भुत सामर्थ्य रखता है। कितना ही हम आर्थिक और भौतिक रूप से समृद्ध क्यों न बन जायें परंतु आत्मज्ञान की ज्योति के सामने ये सब निष्प्रभ हैं। क्योंकि मानव को करुणा, संवेदना और निश्छल प्रेम की प्राप्ति तो अध्यात्म से ही प्राप्त होगी।

भारतीय संस्कृति की मूल अवधारणा है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अर्थात सब कुछ ब्रह्म ही है। यह 'इदं' रूप जगत जो हमारी पाँच ज्ञानेंद्रियों, पांच कर्मेंद्रियों और अंतरू करण चतुष्टय का विस्तार है, वह सब कुछ निश्चय ही ब्रह्म है। वह ब्रह्म तत्व अथवा आत्म तत्व ही चेतन है, वह सर्वत्र सर्वानुस्यूत है, सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। वह अद्वैत तत्व ज्यों का त्यों रहता है, रंच मात्र भी स्थान ऐसा नहीं जहां वह सत् चित् आनंद तत्व विद्यमान न हो।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की दृष्टि को अपनाकर यदि हम इस संसार और उसके पहले विस्तृत व्यापार में उतरेंगे तो जीवन में कभी भी, कहीं भी कोई गलत कार्य नहीं हो सकता। सारे विश्व में यदि एक मात्र उस मूल भावना को अपनाकर हम चले तो कोई भी, किसी के भी साथ मिथ्या आचरण नहीं करेगा। आज इस जगती में जो अमाननीय शक्तियां अपना दुर्दांत रूप फैलाये खड़ी हैं। अपनी आर्थिक और सैन्य शक्ति के बल पर एक देश में, एक देश का दूसरे देशों से जो कटु व्यवहार है, वह मानव जीवन के लिए, मानवता के अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा घातक एवं मारक रोग है। अपना विकास और वर्चस्व का विस्तार करने के अहं में एक शक्तिशाली सत्ता दूसरे को निगलने के लिए जो तत्पर है, उसके मूल में अहंकारी शासन का हिटलरी रवैया बहुत डरावना और अहम् रोल रखता है।

रूस, यूक्रेन का युद्ध हो या चाहे इसराइल और फिलिस्तीन का युद्ध हो, फ़िल वक़्त ये विश्व अशांति के दो मुख्य उदाहरण हैं। युद्ध में यदि मरती है तो मानवता ही मरती है। यह विस्तारवादी विनाशकारी क्रूर प्रवृत्ति अपने अहं मद में डूब कर अपना तो अहित करती ही है, दूसरों को कुचल कर, मसल कर भी रख देती है। यदि मानवता ही मर गई तो ये सारे भौतिक विकास के स्तंभ विश्व को किस धरातल पर लाकर पटक देंगे, यह कल्पना से आगे की बात है।

इस अशांत एवं भयावह कुप्रवृति पर यदि कोई नियंत्रण कर सकता है तो उसके लिए भारतीय संस्कृति और अध्यात्म चिंतन ही एकमात्र विकल्प है क्योंकि उपनिषद् चिंतन तो यह स्पष्ट करता है—

'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्ये वानुपश्यति'
'ईशा वास्यम् इदम् सर्वभ्'
'तत्र को मोहः कः शोका'

जो सब प्राणियों में एक आत्मा को देखता है और एक आत्मा में ही सारे प्राणी समाहित हैं तो वह शोक और मोह किस से करेगा। यदि इस विचार का अमूल्य बीज इस विश्व में बो दिया जाये, रोप दिया जाये तो वहाँ से केवल समानता और अपनत्व ही विकसित होगा। परंतु विडंबना है कथन और व्यवहार में जबरदस्त अंतर्विरोध।

ऋषि दृष्टि कहती है सारे इस संसार को, इस 'इदं' रूपी दृष्टि को 'ईश भावना' से भावित होकर देखो, यदि 'ईशा वास्यम् इदम् सर्वंयत् किंचित जगत्यां जगत्' की दृष्टि से हम देखेंगे और उपभोग करने से पहले त्याग वृत्ति को अपना कर भोग करेंगे तब कैसे किसी के अधिकारों का कोई हनन कर पायेगा। किसी के भी धन की आकांक्षा को त्याग कर 'मागृधः कस्यास्विग्द्धं' को अपनाकर जीवन में उतार कर, यदि अपने आचरण में ढाल ले—तो उसे बड़ी अध्यात्म और संस्कृति की संजीवनी कोई नहीं हो सकती।

वीरेंद्र भारद्वाज

●

अवधी के 'मानस' की परंपरा में 'उभय-प्रबोधक रामायण'

राजकुमार उपाध्याय 'मणि'

सारांश : यदि अवधी की काव्य-परंपरा का मूल्यांकन करें तो इस दृष्टि से हमें तुलसी के समकालीन, पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियों की ओर देखना आवश्यक हो जाता है। भक्ति काल में अवधी का सम्यक् विकास सूफी कवियों के द्वारा हुआ, जिन्होंने निर्गुण उपासना में मुख्य विषय प्रेम पर आधारित अपनी रचनाएँ रचीं। वे सभी रचनाएँ प्रेमाश्रयी शाखा अथवा सूफी शाखा के अंतर्गत आती हैं। दोहा-चौपाई की शैली को हम सूफी कवियों से प्रारंभ न मानकर आदिकालीन जैन कवियों के द्वारा प्रारंभ की गई पद्धति मान सकते हैं, जिसमें स्वयंभू और पुष्पदंत की रचनाएँ रची गईं और ऐसे ही कमोबेश रूप में चंदबरदाई ने पृथ्वीराज रासो और विद्यापति ने कीर्तिलता में भी प्रयोग किया है। आगे चलकर जैन कवि कुशललाभ ने 'ढोला मारू रा दूहा' में इसी शैली को अपनाया है। निर्गुण कवियों में भी कई संतों ने रमैनी के रूप में चौपाई को अंगीकृत किया है, जिसे सूफी कवियों के बाद गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस, ब्रजवासीदास का ब्रजबिलास, सबलसिंह चौहान की महाभारत-कथा, मधुसूदनदास का रामाश्वमेध रचना के साथ-साथ अवधी के प्रख्यात् परवर्ती कवि बाबा बनादास ने भी अपने ग्रंथों में दोहा-चौपाई शैली को अपनाया है। परंतु इन रचनाओं में अवधी, दोहा-चौपाई की शैली और राम की भक्ति का प्रकाश श्रीरामचरितमानस में दिखाई देता है, उसका प्रभाव महात्मा बनादास में भी परिलक्षित होता है। बनादास ने उभय-प्रबोधक रामायण को सात खंडों-गुरुखंड, नामखंड, अयोध्याखंड, विपिनखंड, विहारखंड, ज्ञानखंड और शांतिखंड में विभक्त किया है। प्रथम मूल में प्रस्तावना के बाद सात खंडों में क्रमशः चार, चार, छब्बीस, छियालीस, ग्यारह, चौदह और षष्ठ अध्याय में विभाजित हैं। उन्होंने अपने उभय-प्रबोधक रामायण को दोहा-चौपाई शैली में नहीं; बल्कि विविध छंदों लिखा है।

बीज-शब्द : परिलक्षित, शास्त्र-पारंगत, संस्कृत-गर्भित, कड़वक-पद्धति, कड़वक छंद, पद्धड़िया, अंगीकृत, उभय-प्रबोधक रामायण, साम्यताएं, मानस-गुरु, स्वप्न-गुरु, आध्यात्मिक-गुरु, नवसत, मंगलाचरण, सिंहावलोकनि, सार्थकता, सीद्यमान, विषयोपयोगी, प्रबन्ध-पटुता, काव्य-सौष्ठव, सर्वोत्कृष्ट, विलक्षणता, अनन्त-काल, तत्त्वज्ञान स्पृही-संत, समन्वय एवं सामंजस्य स्थापन।

हिंदी साहित्य में जब-जब राम काव्य की परंपरा का उल्लेख किया जाता है तो तीन विषय हमारे सामने आते हैं-अवध क्षेत्र की अवधी, काव्य-प्रबंध की दोहा-चौपाई शैली और राम की भक्ति। इस दृष्टि से हमें राम काव्य की परंपरा देखने में अधिक सुविधा होती है। जब राम काव्य की चर्चा करते हैं तो गोस्वामी तुलसीदास और उनके श्रीरामचरितमानस रचना को केंद्र में रखकर ही मूल्यांकन किया जा सकता है। यदि अवधी की काव्य-परंपरा का मूल्यांकन करें तो इस दृष्टि से हमें तुलसी के समकालीन, पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियों की ओर देखना आवश्यक हो जाता है। अवधी की रचना का जहाँ तक सवाल है तो काव्य की दृष्टि से सूफी काव्य मुल्ला दाऊद की 1379 ई. में रची 'चंदायन' मानी जा सकती है, जिसे प्रथम सूफी काव्य की संज्ञा दी गई है। यह अवधी का प्रथम काव्य भी है, जिसमें चंदा और लोरिक की प्रेम-कथाओं को दोहा-चौपाई शैली में वर्णित किया गया है। इस प्रकार से हमें दो विषय यहाँ स्पष्ट दिखाई देते हैं, जो रामचरितमानस और राम काव्य में अन्य प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, वह यह है कि अवधी भाषा का प्रयोग और दोहा-चौपाई की शैली इसमें अपनायी गई है। इतना ही नहीं, यदि प्राचीनता की दृष्टि से देखें तो काशी के दामोदर शर्मा के 'उक्ति व्यक्ति-प्रकरण' नामक ग्रंथ में भी अवधी की भाषा का प्रयोग दिखाई देता है, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी इनकी भाषा को 'कोसली अर्थात् अवधी' कहते हैं। यद्यपि दामोदर शर्मा ने इसकी भाषा अपभ्रंश बताया है, लेकिन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण रचना 'प्राकृत-पैंगलम्' है जिसमें अवधी के प्रयोग के साथ-साथ पुरानी ब्रजभाषा, राजस्थानी, खड़ी बोली और मैथिली का भी मिश्रण प्राप्त होता है। यह 11वीं से 14वीं शताब्दी की ऐसी रचना है, जिसे विद्याधर द्वारा रचित मानी गई है।

भक्ति काल में अवधी का सम्यक् विकास सूफी कवियों के द्वारा हुआ, जिन्होंने निर्गुण उपासना में मुख्य विषय प्रेम पर आधारित अपनी रचनाएँ रचीं। वे सभी रचनाएँ प्रेमाश्रयी शाखा अथवा सूफी शाखा के अंतर्गत आती हैं। उनमें मुल्ला दाऊद का चंदायन, कुतुबन की मृगावती, मंझन की मधुमालती, ईश्वरदास की सत्यवती-कथा, शेख उस्मान की चित्रावली, नासिर का प्रेम-दर्पण, जान कवि की कनकावती आदि रचनाओं के साथ 37 कवियों द्वारा लगभग 55 सूफी काव्य की रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इन सबकी एक ही भाषा अवधी थी, तो कुछ की मिश्रित अवधी। राम काव्य की परंपरा में सगुण भक्ति की जिस धारा का विकास हुआ, उसमें अनेक ऐसे कवि हुए जिन्होंने अवधी और राम की भक्ति को अपनाकर अपनी रचनाएँ की थीं। परंतु, संत मार्गी कवियों में मलूकदास को अवधी का कवि माना जा सकता है, जो तुलसीदास के परवर्ती हुए हैं। इन्होंने मलूकदासी संप्रदाय अथवा पंथ की स्थापना की थी, जिनकी भाषा के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है- ''इनकी भाषा सुव्यवस्थित और सुंदर है। कहीं-कहीं अच्छे कवियों का-सा पद-विन्यास और कवित्त आदि छंद भी पाए जाते हैं। कुछ पद बिलकुल खड़ी बोली में है। आत्मबोध, वैराग्य और प्रेम पर इनकी बानी बड़ी मनोहर है।''[1]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल 1501 ई. में रचित कुतुबन-कृत 'मृगावती' को प्रथम सूफी काव्य मानते हैं, जबकि डॉ. रामकुमार वर्मा 'चंदायन' को 1379 ई. में रचित प्रथम सूफी काव्य मानते हुए सूफी काव्य-परंपरा की शुरुआत का उल्लेख करते हैं। यद्यपि 'चंदायन' मुल्ला दाऊद की

एक ऐसी रचना है, जो लोरकहा और लोरकथा के रूप में भी हिंदी साहित्य में प्रसिद्ध है। 'मधुमालती' अवधी की ऐसी प्रेमाख्यान रचना है, जिसे 'पद्मावत' और मृगावती के मध्य की रचना माना गया है। इसके संदर्भ में बनारसीदास ने अपनी अर्थ-कथानक में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है- "तब घर में बैठे रहैं, नाहिंन हाट बाजार। मधुमालती मृगावती, पोथी दोय उचार।।"[2] हिंदी साहित्य में ईश्वरदास की सत्यवती-कथा 1501 ई. में रचित अवधी भाषा की दोहा-चौपाई शैली की ऐसी रचना है, जिसे किसी हिंदू रचनाकार द्वारा राजकुमार ऋतुपर्ण एवं राजकुमारी सत्यवती की प्रेम गाथा का वर्णन और उसके सतीत्व-धर्म की रक्षा के लिए लिखा गया है।

अवधी के माधुर्य अथवा ठेठ अवधी की हम जब बात करते हैं तो हमारे सामने जायसी और गोस्वामी तुलसीदास एक साथ उपस्थित हो जाते हैं, लेकिन जिस ठेठ अवधी की बात शुक्ल जी जायसी के संदर्भ में करते हैं, उसका स्वरूप गोस्वामी तुलसीदास की रामलला-नहछू में भी दिखाई देता है। यह सोहर शैली में लिखा हुआ है। इसी प्रकार से पार्वती-मंगल और जानकी-मंगल में पूर्वी अवधी का दिग्दर्शन होता है। पार्वती-मंगल में शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन है तो जानकी-मंगल में राम और सीता के विवाह का वर्णन किया गया है। निःसंदेह, ये दोनों रचनाएँ पूर्वी अवधी में रचित हैं। जबकि रामाज्ञा-प्रश्न ब्रजभाषा मिश्रित अवधी में वर्णित है। गोस्वामी तुलसी की प्रख्यात् और अवधी की सर्वश्रेष्ठ रचना रामचरितमानस भी अवधी में रचित है। गोस्वामी तुलसीदास जी की अवधी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए तुलनात्मक रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इस प्रकार प्रस्तुत किया है- ''भाषा का एक विशिष्ट सामान्य रूप उन्होंने रखा जिसका व्यवहार आगे चलकर बराबर कविता में होता आया। यह तो हुई ब्रज भाषा की बात। इसके साथ ही पूर्वी बोली या अवधी भी साहित्य निर्माण की ओर अग्रसर हो चुकी थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अवधी की सबसे पुरानी रचना ईश्वरदास की सत्यवती-कथा है। आगे चलकर 'प्रेममार्गी शाखा' के मुसलमान कवियों ने अपनी कहानियों के लिए अवधी भाषा ही चुनी। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने समय में काव्य भाषा के दो रूप प्रचलित पाए- एक ब्रज और दूसरी अवधी। दोनों में उन्होंने समान अधिकार के साथ रचनाएँ कीं।"[3] आचार्य शुक्ल शैलियों के संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास के विषय में लिखते हैं- "ब्रजभाषा का जो माधुर्य हम सूरसागर में पाते हैं, वही माधुर्य और भी संस्कृत रूप में हम गीतावली और कृष्ण-गीतावली में पाते हैं। ठेठ अवधी की जो मिठास हमें जायसी के पद्मावत में मिलती है, वही जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, बरवै-रामायण और रामलला-नहछू में हम पाते हैं। यह सूचित करने की आवश्यकता नहीं कि न तो सूर का अवधी पर अधिकार था और न जायसी का ब्रज भाषा पर।"[4]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने आगे उनके दोहा-चौपाई शैली पर बात करते हुए अवधी पर भी अद्भुत कथन कहा है- "जिस प्रकार चौपाई, दोहे के क्रम से जायसी ने अपना पद्मावत नाम का प्रबंधकाव्य लिखा, उसी क्रम पर गोस्वामी जी ने अपनी परम प्रसिद्ध काव्य रामचरितमानस; जो लोगों के हृदय का हार बनता चला आता है, रचा। भाषा वही अवधी है, केवल पद-विन्यास का भेद है। गोस्वामी जी शास्त्र-पारंगत विद्वान थे। अतः उनकी शब्द-योजना साहित्यिक और संस्कृत-गर्भित है। जायसी में केवल ठेठ अवधी का माधुर्य है, पर गोस्वामी जी की रचना में संस्कृत की कोमल पदावलियों का भी बहुत ही मनोहर चित्रण है।"[5]

यदि हम कड़वक-बद्ध रचना या कड़वक छंद की चर्चा करें तो इसकी शुरुआत हिंदी साहित्य में सिद्ध कवियों के शिरोमणि सरहपाद से ही मान लेनी चाहिए क्योंकि उनका दोहा-कोश कड़वक-बद्ध रचना तथा मिश्रित स्वरूप में है—

"अलिओ! धम्म-महासुह पइसइ। लवणों जिमि पाणीहि विलिज्जइ।।
मन्तह मन्तेसन्ति ण होइ। पडिलभित्ति की उट्ठीउ होइ।।
तरुफल-दरिसण णउ अग्घाइ। वेज्ज देक्खि की रोग पलाइ।।
जाव ण आप जणिज्जइ, ताव ण सिरस करेइ।
अन्धां अन्ध कढाव तिम, वेण्ण वि कूव पडेइ।।"[6]

परंतु, कतिपय विद्वान जैन कवियों में प्रमुख स्वयंभू को ही कड़वक का प्रवर्तक मानते हैं, जिसे स्वयंभू कवि ने पद्धड़िया कहा है। काव्य परंपरा में कई विद्वान कवि सरहपा, स्वयंभू और पुष्पदंत को भी इस शैली को शुरू करने वाले मानते हैं। यही कारण है कि स्वयंभू को हिंदी का कालिदास और पुष्पदंत को भवभूति की संज्ञा दी गई है। इस कड़वक पद्धति या दोहा-चौपाई की शैली को हम सूफी कवियों से प्रारंभ न मानकर आदिकालीन जैन कवियों के द्वारा प्रारंभ की गई पद्धति मान सकते हैं, जिसमें स्वयंभू, पुष्पदंत की रचनाएँ रची गईं और ऐसे ही कमोबेश रूप में चंदबरदाई ने पृथ्वीराज रासो और विद्यापति ने कीर्तिलता में भी प्रयोग किया है। आगे चलकर जैन कवि कुशललाभ ने 'ढोला मारू रा दूहा' में इसी शैली को अपनाया है। निर्गुण कवियों में भी कई संतों ने रमैनी के रूप में चौपाई को अंगीकृत किया है, जिसे सूफी कवियों के बाद गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस, ब्रजवासीदास का ब्रजबिलास, सबलसिंह चौहान की महाभारत-कथा, मधुसूदनदास का रामाश्वमेध रचना के साथ-साथ अवधी के प्रख्यात् परवर्ती कवि बाबा बनादास ने भी अपने ग्रंथों में दोहा-चौपाई शैली को अपनाया है। परंतु इन रचनाओं में अवधी, दोहा-चौपाई की शैली और राम की भक्ति का प्रकाश श्रीरामचरितमानस में दिखाई देता है, उसका प्रभाव महात्मा बनादास में भी परिलक्षित होता है। यही कारण है कि महात्मा बनादास और गोस्वामी तुलसीदास में अनेक साम्यताएँ प्रकट होती हैं।

डॉ. भगवती प्रसाद सिंह के संपादन में लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद से 1980 में प्रकाशित 'महात्मा बनादास विरचित-उभय-प्रबोधक रामायण' में प्रस्तावना के अंतर्गत हिंदी की रामायण-परम्परा के रूप में उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन और परवर्ती रामायणों की कुछ सूची इस प्रकार बताई है—''1. रामचरित (मधुर अली) 1558 ई, 2. अवध विलास रामायण (लालदास) 1643 ई, 3. सीतायन (रामप्रियाशरण) 1703 ई, 4. रामायण (झामदास) 1704 ई, 5.जोगरामायण (जोगराम) 1708 ई, 6.रामायण (भगवत सिंह) 1730 ई, 7. रामविलास-रामायण (शंभुनाथ बंदीजन) 1741 ई, 8. रामचरितवृत्त प्रकाश (क्षेमकरण मिश्र) 1771 ई, 9. रामरसायन (पद्माकर) अठारहवीं शती, 10. वाल्मीकि रामायण भाषा (गणेश) 1803 ई, 11. बालकांड रामायण (देवीदास) 1803 ई, 12. रामायण (सीताराम) 1830 ई, 13.

अध्यात्म रामायण (नवलसिह) 1831 ई, 14. रूपक रामायण (नवल सिंह) 1831 ई, 15. आह्लाद रामायण (नवल सिंह) 1831 ई, 16. वाल्मीकि रामायण भाषा (गिरधरदास) 1833 ई, 17. अद्‌भुत रामायण भापा 1838 ई, 18. रामायण (समरदास) 1841 ई, 19. अध्यात्म रामायण (किशोरदास) 1843 ई, 20. वाल्मीकि रामायण भाषा (छत्रधारी) 1857 ई, 21. रामायण (ईश्वरी प्रसाद) 1858 ई, 22. रामायण (गोमती प्रसाद) 1858 ई, 23. महारामायण (भगवानदास खत्री) 1879 ई, 24. सुसिद्धान्तोत्तम (रुद्र प्रताप सिंह) 1820 ई, 25. रामनिवास रामायण 1933 वि. 26. रामरसायन (रसिक बिहारी) सं.1939 वि. 27. अद्‌भुत रामायण (लालमणि) 19 वीं शती 28. अमर रामायण (रसिक अली) 19 वीं शती, 29. प्रश्न रामायण (अज्ञात) 19 वीं शती, 30. जानकी-विजय-रामायण (तुलसीदास-?) 19 वीं शती, 31. गीत रामायण (महावीरदास) 19 वीं शती, 32. छप्पय रामायण (रामचरनदास) 18 वीं शती, 33. कुण्डलिया रामायण (तुलसीदास-?) 18 वीं शती, 34. जोग रामायण (जोगराम) 18 वीं शती, 35. दोहावली रामायण (पं० रामगुलाम द्विवेदी) 18 वीं शती, 36. माधव मधुर रामायण (माधव कत्थक) 18 वीं शती, 37. रामरहस्य रामायण (पूय-पूरनचंद), 38. वाल्मीकि रामायण (महेशदत्त) 18 वीं शती, 39. रामायण कवित्त (शंकर त्रिपाठी) 18 वीं शती, 40. सातो कांड रामायण (समर सिंह) 18 वीं शती, 41. विचित्र रामायण (अज्ञात) 18 वीं शती, 42. रामायण बारहखड़ी (अज्ञात) 18 वीं शती, 43. रामायण (विश्वनाथ सिंह) 18 वीं शती, 44. रामायण (वैदेहीशरण) 18 वीं शती, 45. अनुराग विवर्धक रामायण (बनादास) सं. 1850।''[7]

महात्मा बनादास अपने मानस-गुरु और स्वप्न-गुरु गोस्वामी तुलसीदास के जन्म से 310 वर्ष बाद और मृत्यु के 198 वर्ष बाद उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में 1821 ई. को उत्पन्न हुए थे और 1892 ई. को अयोध्या में इन्हें साकेतधाम प्राप्त हुआ था। इनकी कुल 64 रचनाओं में प्रथम 'अर्ज-पत्रिका' मात्र 30 वर्ष की अवस्था में 1851 ई. में लिखी हुई प्राप्त होती है। परंतु, प्रबंधात्मक रूप में दो महत्वपूर्ण ग्रंथ 1874 में लिखा गया- उभय-प्रबोधक रामायण और विस्मरण संहार। यहाँ 'उभय-प्रबोधक रामायण' और गोस्वामी तुलसीदास के श्रीरामचरितमानस के संदर्भ में कुछ तथ्य द्रष्टव्य है। गोस्वामी तुलसीदास का जन्म अवधी के पश्चिमी छोर चित्रकूट में हुआ है, तो वहीं बनादास का जन्म अवधी के पूर्वी क्षेत्र गोंडा में हुआ है। दोनों के आराध्यदेव भगवान श्रीराम थे। जिस प्रकार तुलसीदास जी के दीक्षा गुरु नरहरिदास थे और शिक्षा गुरु काशी के शेष-सनातन थे, उसी प्रकार बनादास के आध्यात्मिक-गुरु अयोध्या के परमहंस सियावल्लभ शरण थे, लेकिन स्वप्नादेश में ज्ञान गुरु स्वयं गोस्वामी तुलसीदास थे। इन दोनों ने अपने इष्टदेव प्रभु श्रीराम का दर्शन किया था। दोनों महात्माओं ने अपने कर्म क्षेत्र अयोध्या को चयनित किया तथा अपने परमप्रिय ग्रंथ श्रीरामचरितमानस और उभय-प्रबोधक रामायण के लेखन का श्रीगणेश अयोध्या में किया है। तुलसीदास जी ने अपने काव्य का लेखन राम के जन्मदिन शुरू किया तो बनादास ने राम-जानकी के विवाह के दिन शुरू किया। बाबा बनादास ने अपने उभय-प्रबोधक रामायण की रचना सं 1931 और तिथि अगहन मास की पंचमी के बारे में स्पष्ट लिखा है—

"हिम रितु अगहन मास सित पंचमी है, रामजूको ब्याह दिन जगत बिदित है।
सम्बत सहस नवसत को प्रमान जानौ, तापै एकतिंस पुनि बरष लिखित है।।
बनादास रघुनाथ चरित प्रकास किये, बुद्धि तौ मलीन पुनि लागो अति चित है।
'उभय प्रबोधक रामायण' है नाम जाको, सात खंड सात छंद सारो जग हित है॥''[8]

गोस्वामी जी ने मानस की रचना का काल इस रूप में बताया है—
संबत सोलह सै एकतीसा। करउं कथा हरि पद धरि सीसा।।
नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥''[9]

यदि तुलसीदास ने अपने ग्रंथ को मूलरूप में अवधी में रचते हुए मंगलाचरण और अनेक स्तुतियों की भाषा संस्कृत अपनाई है, तो बनादास ने उभय-प्रबोधक रामायण को केवल अवधी में लिखा है, किन्तु संस्कृत वाक्य से अध्याय का समापन किया है। प्रत्येक अध्याय के अंत में श्रीरामचरितमानस के 'इति श्रीमद्रामचरितमान से सकल कलिकलुषविध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः'[10] की भाँति बनादास ने 'इति श्रीरामचरित्रे कलिमलमथने उभय प्रबोधक रामायणे प्रथम गुरुखंडे प्रथमोध्यायः'[11] लिखा गया है। मानस की रचना 'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना' के द्वारा सात कांडों-बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किन्धाकांड, सुंदरकांड, लंकाकांड और उत्तरकांड में किया गया है, तो बनादास के उभय-प्रबोधक रामायण को सात खंडों- गुरुखंड, नामखंड, अयोध्याखंड, विपिनखंड, विहारखंड, ज्ञानखंड, शांतिखंड में विभक्त किया गया है। प्रथम मूल में प्रस्तावना के बाद इन खंडों में क्रमशः चार, चार, छब्बीस, छियालीस, ग्यारह, चौदह और षष्ठ अध्याय में विभाजित हैं। उन्होंने अपने उभय-प्रबोधक रामायण को दोहा-चौपाई शैली में नहीं लिखा है, बल्कि विविध छंदों-छप्पय, कुंडलिया, कवित्त-घनाक्षरी, सवैया, दंडक, झूलना, रेखता, सिंहावलोकनि में संपूर्ण रामायण लिखा है जबकि गोस्वामी तुलसीदास ने मानस रचना दोहा-चौपाई के बीच-बीच में संस्कृत-हिंदी के अनेकानेक सुंदर छंदों का व्यवहार करके प्रबंध में लालित्य ला दिया है। इस दृष्टि से मानस की समानता उभय-प्रबोधक रामायण नहीं कर सकता है। यद्यपि प्रबंधात्मकता की दृष्टि से मानस से बहुत दूर बनादास का रामायण ठहरता है। आलोचना के शिखर महापुरुष आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आँखों से यह रचना कैसे ओझल हो गई। जबकि उनके इतिहास-ग्रंथ के प्रकाशन (1929) से सैंतीस वर्ष पूर्व इसका प्रकाशन 1892 ई. में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से हो चुका था। परवर्ती इतिहास ग्रंथों में भी इसका मूल्यांकन नहीं हो सका। यद्यपि डॉ. भगवती प्रसाद सिंह के द्वारा जब उभय-प्रबोधक रामायण का दूसरी बार प्रकाशन 1980 में लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद से किया गया तो उन्होंने इस पुस्तक की विस्तृत प्रस्तावना लिखकर ग्रंथ का साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया था। उन्होंने बनादास की रचनाओं के बारे में लिखा है—"ब्रह्मायन, परमात्मबोध, ब्रह्मायन-पराभक्ति, परत्तु, शुद्ध बोध वेदान्त-ब्रह्मायन सार, रकारादि सहस्रनाम, मकारादि सहस्रनाम, बजरंग विजय, उभय-प्रबोधक रामायण, विस्मरण सम्हार, सार शब्दावली, नामपरत्तु संग्रह, नाम परत्तु, बीजक, मुक्त मुक्तावली, गुरु महात्म्य, संतसुमिरनी, समस्यावली, समस्या विनोद,

झूलन पचीसी, शिव सुमिरनी, हनुमंत विजय, रोग पराजय, गजेन्द्र पंचदशी, प्रह्लाद पंचदशी, द्रौपदी पंचदशी, दाम ढुलाई, अर्जपत्री, मोक्ष मंजरी, सगुन बोधक, बीजक राम गायत्री। इनमें अंतिम दो को छोड़कर शेष सभी प्राप्त हो गये हैं। 'उभय-प्रबोधक रामायण' नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से 1892 ई० में प्रकाशित हुआ था, किन्तु अब वह अप्राप्त है। विस्मरण सम्हार 1958 में गुरुमहात्म्य 1971 तथा आत्मबोध 1977 में छपा है। ये उपलब्ध हैं, अन्य सभी रचनाएँ अभी केवल हस्तलेखों के रूप में हैं।''[12]

सगुण-निर्गुण दोनों रूप को मानने वाले बाबा बनादास ने उभय-प्रबोधक रामायण की विषय-वस्तु और उसके नामकरण की सार्थकता स्वयं बता दी है-

"यह सगुण निर्गुन ध्यान मिश्रित बोध ज्यहि आवै हिये।
स्रुति विहित साधन साधि सम्यक जगत जीवन फल लिये।।
निर्पक्ष वाद विवाद तजि सब सांति ते जन ह्वै रहे।
सुख दुःख हानि जौ लाभ सममुख चहै जो जैसी कहै।।''[13]

अपने दोनों ग्रंथों के दो विषयों की ओर संकेत करते हुए महात्मा बनादास जी ने लिखा है कि उपासना का ग्रंथ उभय-प्रबोधक रामायण है और निर्गुण साधना का ग्रंथ ब्रह्मायन है। उन्होंने उभय-प्रबोधक रामायण में राम के सगुण स्वरूप का वर्णन किया है और ब्रह्मायन में निर्गुण निराकार परम-ब्रह्म राम की विवेचना की है। वे सगुण और निर्गुण ब्रह्म तत्व के बारे में लिखते हैं। पहले रामायण भयो, जो है उपासना ग्रंथ। पीछे ब्रह्मायन भयो, जो है ज्ञान को पंथ।। प्रथम नाम जपि राम लहि, अद्‌भुत सगुन सरूप। बनादास पीछे मिलत, निर्गुण ब्रह्म अनूप॥ बनादास जी ने उभय-प्रबोधक रामायण की रचना का स्थान अयोध्या स्थित 'भवहरण कुंज' है, जिसे उन्होंने एक छप्पय में इसकी फलश्रुति के साथ संकेत किया है-

"नाम भवहरन कुंज अवधपुर मध्य सोहाये।
तेहि आसन आसीन चरित रघुपति को गाए।।
प्रभु लीला अतिविसद धेनु सुर सुरतरु अधिका।
काम क्रोध मद लोभ मोह अघ खग गन बधिका।।
लोकहूँ माहि प्रसिद्ध है स्रुति पुरान सब कोउ कहै।
कह बनादास बलबुद्धि लघु राम निबाहे निरबहै।।''[14]

महात्मा बनादास जी अपनी काव्य-प्रतिभा का सारा श्रेय गोस्वामी तुलसीदास को देते हैं। बनादास ने ग्रंथ के प्रथम गुरुखंड में विनम्रता पूर्वक अपने इष्टदेव राम जी और गोस्वामी जी का प्रसाद बताया है, जिन्होंने स्वप्न में काव्यज्ञान और रचना की प्रेरणा दी है

"पढ्यो न पुरान वेद काव्य शास्त्र ग्रंथ एक, नाम के प्रभाव रामचरित में अबादी है।
मान औ बड़ाई मतवाद द्रव्य हेत पढे, कीरति की चाह ताकी सम्यक् बरबादी है।।
मानुष तन लाभ रामभक्ति बात साची यह, सुकृत को सीव सोई सुरपुर नामजादी है।
अंतस् को भाव उरबासी रघुनाथ जाने, काव्य बनादास की गोसाई की प्रसादी है।।''[15]
'मिले है स्वप्न माहि कृपाकरि दीने बर, बढो अनुराग पुनि सुने सुभयानी है।

× × × ×

बनादास गुरू भाव माने है गोसाई विषे, ताते मति मेरी बिन दाम ही बिकानी है।।''[16]

जिस तरह से गोस्वामी जी ने अपने मानस के अतिरिक्त कवितावली आदि में कलियुग के संताप का वर्णन किया है, उसी प्रकार बनादास ने भी कलिकाल का वर्णन किया है। तुलसी के मानस के उत्तरकांड में वर्णित कलिकाल का एक अंश–

"कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौअनुजा तनुजा।।
नहिं तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता।।''[17]

× × × ×

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि, बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस, कहैं एक एकन सों, कहाँ जाई, का करी।।
बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ बिलोकिअत, सांकरे सबै पै, राम! रावरें कृपा करी।
दारिद दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु! दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी।।''[18]

उभय-प्रबोधक रामायण में बाबा बनादास ने भी इस प्रकार से वर्णन किया है–

"आयो विकराल काल कलि काल कारो मुख, सारो सुख सोखि लिए जीव दुख दरे है।
तिहुँ ताप तपत लपत लोभ लालच में, काम क्रोध प्रबल न धीर कोऊ धरे है।।
अति बिपरीत ज्ञान ध्यान न समाधि बनै, इन्द्री-मन अजित फजीहति में परे है।
बनादास हमरे बिचार यही सार आयो, परम चतुर रामजस गान करे हैं।।''[19]

महात्मा बनादास ने अपने उभय-प्रबोधक रामायण को जिन सात खंडों में विभक्त किया है, उनमें प्रथम मूल खंड भूमिका की भाँति है, जिसमें एक ही अध्याय है। प्रथम गुरु खंड में चार अध्याय 107 छंद, दूसरे नाम खंड में चार अध्याय 107 छंद, तीसरे अयोध्या खंड में छब्बीस अध्याय 466 छंद, चौथे विपिन खंड में 46 अध्याय 1362 छंद, पाँचवाँ बिहार खंड में ग्यारह अध्याय 362 छंद, छठवें ज्ञान खंड में चौदह अध्याय 421 छंद, सातवें खंड में छः अध्याय 217 छंद हैं। इस प्रकार से उभय-प्रबोधक रामायण में कुल 111 अध्याय और 3042 छंद हैं, जिसको (स्व.) डॉ. भगवती प्रसाद सिंह ने इसे 643 पन्नों में संपादित किया है। छंद की दृष्टि से इसमें छप्पय, कुंडलिया, कवित्त-घनाक्षरी, सवैया, दंडक, रेखता, झूलना, सिंहावलोकनि, छंद प्रयुक्त हैं। बाबा बनादास को छप्पय, घनाक्षरी और कुंडलिया बहुत प्रिय छंद है, उन्होंने इसमें सर्वाधिक लिखा है। लेकिन यह ध्यान देने की बात है कि हिंदी की रामायण लेखन परम्परा में दोहा-चौपाई की शैली का प्रयोग किया गया है, परन्तु, उभय-प्रबोधक रामायण में दोहा-चौपाई शैली अथवा छंद का प्रयोग नहीं हुआ है। रेखता छंद चौपाई या रमैनी जैसी जरूर दिखती है, लेकिन यह 14-14 मात्राओं से युक्त है।

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस का परवर्ती राम काव्य की परंपरा पर इतना गहन और गंभीर प्रभाव है कि उसके विषय-वस्तु, उसकी पद्धति को त्याग पाना किसी भी कवि के लिए असंभव है। निःसंदेह, उभय-प्रबोधक रामायण पर तुलसीदास का गंभीर प्रभाव दिखाई देता है। बनादास ने प्रथम गुरु खंड को 'व' अक्षर से प्रारंभ करके कालिदास और तुलसीदास की परंपरा को आगे बढाया है—

"वन्दौ दास तुलसी गोसाईं महराज पद कलिराज उदधि जहाज अवतार है।

× × × ×

ऐसी रीति रहसि महान तीन काल नाहिं बनादास बदत प्रचार बारबार है।।"[20]

इन कवियों में एक बड़ी विशेषता यह देखने को मिलती है कि गोस्वामी जी ने बालकांड का मंगलाचरण 'व' अक्षर से ही प्रारंभ किया है तो महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश महाकाव्य को 'व' से शुरू किया है—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि। मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।"[21]

× × × ×

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।"[22]

विषय-वस्तु के साथ-साथ अन्य प्रबंधात्मक विषय की प्रतिछाया इसमें परिलक्षित होती है। कमोबेश इसकी महनीयता को नकारा नहीं जा सकता है क्योंकि स्वयं बनादास ने यह अंगीकार किया है कि इसके लेखन की प्रेरणा और ज्ञान-बोध दोनों स्वप्न गुरु गोस्वामी तुलसीदास ने प्रदान की है। तथापि, इसके साहित्यिक महत्व के संदर्भ में डॉ. भगवती प्रसाद सिंह की बात अधिक सटीक और विषयोपयोगी है-"गोस्वामी तुलसीदास के बाद रचना-शैलियों की विविधता, प्रबंध-पटुता और काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से बनादास रामभक्ति शाखा के सर्वोत्कृष्ट कवि ठहरते हैं। इनकी कृतियों की विशेषता है- भक्ति की निर्गुण तथा सगुण दोनों धाराओं का अपूर्व समन्वय एवं सामंजस्य स्थापन। हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की उक्त दोनों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व बनादास साहित्य की एक ऐसी विलक्षणता है, जो अन्य किसी भक्त कवि की रचना में प्राप्त नहीं होती। निर्गुण तथा सगुण दोनों धाराओं के सम्यक् ज्ञाता एवं निरूपक के रूप में उनकी रचनाएँ अनन्त-काल तक साहित्यिकों तथा तत्त्वज्ञान स्पृही-संतों को आकृष्ट करती रहेंगी।"[23]

संदर्भ सूचीः

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल; हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 81
2. वही, पृ. 81
3. वही, पृ. 110
4. वही, पृ. 110
5. वही, पृ.112-13
6. पं. राहुल सांकृत्यायन, (सं.) डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि', हिंदी काव्य-धारा, पृ. 63
7. डॉ. भगवती प्रसाद सिंह (सं.), महात्मा बनादास विरचित-उभय-प्रबोधक रामायण, पृ. 9-10)
8. वही, तृतीय अयोध्या खंड, घनाक्षरी, छंद, 36 पृ. 66
9. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस-बालकांड, दोहा 34, चौपाई 2-3
10. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस बालकांड, सोरठा 361
11. वही, प्रथम गुरु खंड, छंद 22, पृ. 28
12. वही, पृ. 38
13. वही, प्रथम मूल खंड, छंद 63, पृ. 19
14. वही, तृतीय अयोध्या खंड, छप्पय, छंद 39, पृ. 67
15. वही, प्रथम गुरु खंड, कवित्त घनाक्षरी, 1, पृ. 25
16. वही, प्रथम गुरु खंड, कवित्त घनाक्षरी, 9, पृ. 26
17. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस उत्तरकांड, दोहा 102, छंद 03
18. गोस्वामी तुलसीदास, कवितावली, छंद 239
19. डॉ. भगवती प्रसाद सिंह (सं.), महात्मा बनादास विरचित, उभय-प्रबोधक रामायण, तृतीय अयोध्या खंड, कवित्त घनाक्षरी, 55, पृ. 188
20. वही, प्रथम गुरु खंड, कवित्त-घनाक्षरी, छंद 01, पृ. 25
21. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, बालकांड, मंगलाचरण, श्लोक 1
22. महाकवि कालिदास, रघुवंशम्, श्लोक 1
23. डॉ. भगवती प्रसाद सिंह (सं.), महात्मा बनादास विरचित-उभय-प्रबोधक रामायण, पृ. 38

एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

मानवता की रक्षा करना मनुष्य का परम धर्म है
(संदर्भ: प्रेमचंद की कहानी 'मंत्र')

अनीता देवी

प्रेमचंद हिंदी साहित्य रूपी आकाश में ध्रुव तारे के समान हैं। वे हिंदी साहित्य जगत के उपन्यास सम्राट होने के साथ- साथ हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार भी हैं। उनको मुख्य रूप से आदर्शवादी, आदर्शोन्मुख यथार्थवादी साहित्यकार के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि प्रेमचंद मानववादी लेखक भी हैं। प्रेमचंद ने पहले उर्दू में लिखना शुरू किया और बाद में हिंदी भाषा को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक और अनेक समालोचनात्मक निबंध लिखे।

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में मानव जीवन के विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक पहलुओं और समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए मानव समाज का केवल यथार्थ चित्रण ही नहीं किया बल्कि समाज को सामाजिक बुराइयों के प्रति सचेत भी किया और समाज को एक नई दिशा दिखाने का प्रयास किया। उन्होंने 300 से अधिक कहानियों की रचना की है। उनकी कहानियों का संकलन मानसरोवर के कई खंडों में संकलित है। जिस तरह का प्रेमचंद ने लिखा है, उसको देखकर कहा जा सकता है कि उन्होंने समाज की दुखती रग को पकड़ा है। प्रेमचंद के साहित्य में आगमन से पूर्व अधिकतर हिंदी कथा साहित्य पौराणिक या फिर तिलस्मी कथाओं को आधार बनाकर लिखा गया। सामाजिक यथार्थ से उनका कम ही लेना- देना था। प्रेमचंद विशुद्ध रूप से पहले कथाकार थे जिन्होंने सामान्य जनजीवन की समस्याओं को छुआ। प्रेमचंद के इस क्षेत्र में प्रवेश करते ही एक नए युग का प्रारंभ हुआ। प्रेमचंद की नजरों से सामाजिक जीवन का कोई पक्ष नहीं छूटा। उनका साहित्य बहुआयामी है। उनके साहित्य में मानवता सर्वोपरि रही है, प्रेमचंद ने समाज के जिन पक्षों को अपने लेखन का आधार बनाया है उसको पढ़कर यह भी कहा जा सकता है कि उसके पीछे उनका मानवतावादी दृष्टिकोण ही था, वैसे भी मानवता मनुष्य होने की पहली शर्त है और इसलिए मनुष्य बने रहना एक प्रकार साधना है, प्रसिद्ध साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि "मनुष्य बनने की साधना करना बड़ी बात है। उन्होंने मानवता की सेवा को ही सच्चा धर्म माना है।" मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्र कवि कहा जाता है क्योंकि उन्होंने अपने साहित्य में मनुष्यता की बात की है, प्रेमचंद भी मनुष्य की सेवा करना मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म मानते हैं इसलिए समाज में जहाँ भी उनको मानवता की हानि होते दिखी, बस उसी घटना को उनकी कलम ने पकड़ लिया और रख दिया जनता के खुले दरबार में, यह बात प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों से स्वयं सिद्ध है।

प्रेमचंद के समय में ऋण- समस्या, जातिगत भेदभाव, गरीबी, जमींदारी प्रथा, पूँजीपतियों द्वारा किसानों का शोषण, समाज के निम्नवर्ग के साथ होने वाला अत्याचार आदि होना सामान्य सी बात समझी जाती थी। इन सभी बुराइयों ने समाज को जकड़ा हुआ था। अगर किसी के साथ अन्याय होता था तो कोई सुनने वाला नहीं था। अमीर आदमी अपने आप को समाज का ठेकेदार समझता था और गरीब जनता उनको भगवान से कम नहीं समझती थी। इसलिए गरीब जनता का शोषण होता था और अमीर आदमी सभी सुख - सुविधाओं के साथ जीवनयापन करता था। गरीब व्यक्ति को अपने जीवन में छोटी छोटी खुशियाँ भी नसीब नहीं होती थी। वे दिन-रात संघर्ष करते थे फिर भी दो जून की रोटी कमाने के चक्कर में ही उनका पूरा जीवन खत्म हो जाता था। प्रेमचंद ने उस समय लिखना आरंभ किया जब हम आजादी के लिए संघर्ष कर रहे थे। उन्होंने ईदगाह, भाईसाहब, पंच-परमेश्वर, बूढ़ी काकी, बेटो वाली विधवा, पूस की रात, नमक का दरोगा, कफ़न आदि अनेक मार्मिक कहानियों की रचना की है। इन सब कहानियों के अतिरिक्त उनकी 'मंत्र' कहानी भी बहुत मार्मिक कहानी है।

प्रेमचंद ने 'मंत्र' नामक कहानी 1920 के आसपास लिखी थी, यह अत्यंत मार्मिक एवं प्रभावशाली कहानी है। दूसरी कहानियों की भाँति इस कहानी के केंद्र में भी समाज का वही अभागा, वृद्ध और गरीब ही है जो दीन हीन हालात में अपना जीवन जी रहा है। प्रेमचंद में इस कहानी के माध्यम से पाठक को अमीर और गरीब के बीच बनी खाई में जो घना अंधेरा है, उसमें सीधे उतारा है। मानव स्वभाव की निर्मिति में उसकी आर्थिक स्थिति एक बहुत बड़ी भूमिका निभाती है, इस बात का अंदाजा मंत्र कहानी से लगाया जा सकता है। साथ ही इस कहानी में प्रेमचंद बताना चाहते हैं कि ग्राम और नगर, स्वार्थ और सेवा में बहुत अंतर है।

कहानी का प्रारंभ अत्यंत मर्मस्पर्शी घटना द्वारा होता है। कहानी का मुख्य पात्र एक अत्यंत गरीब और बूढ़ा व्यक्ति है, जिसका नाम भगत है, उसका सातवां और अंतिम पुत्र मृत्यु शैया पर है, ऐसे में वह अपने पुत्र को स्थानीय डॉक्टर चड्ढा के पास इलाज करने के लिए लेकर आता है लेकिन डॉ. चड्ढा का वह वक्त गोल्फ़ खेलने का है, मरीजों के देखने का नहीं है। डॉक्टर अपने मनोविनोद में जरा भी खलल नहीं डालना चाहता इसलिए वह उस समय बच्चे को देखने से इंकार कर देता है। भगत डॉक्टर चड्ढा से हाथ जोड़कर, अपनी पगड़ी डॉक्टर के चरणों में रखकर, बहुत अनुनय-विनय करते हुए कहता

है कि वे केवल एक नजर उसके पुत्र को देख भर ले, किंतु डॉ. चड्ढा गुस्से से बूढ़े भगत को वक्त न होने और और कल आने के लिए कह मोटर में बैठ कर खेलने निकल जाता है। ऐसा लगता है कि डॉक्टर चड्ढा का मनोविनोद एक गरीब के प्राणों से भी अधिक मूल्यवान है। भगत निराश होकर लौट आता है और उसी रात्रि उसका पुत्र प्राण त्याग देता है।

कथानक का विकास डॉ. चड्ढा व उसके परिवार के परिचय से होता है, डॉक्टर चड्ढा का पुत्र कैलाश, जो सर्पो के पालने में विशेष रुचि रखता है, अपने जन्मदिवस पर साँपों का प्रदर्शन करता है और यह सब करते हुए वह उन में से किसी एक क्रोधित साँप द्वारा डसा जाता है, कथानक की चरम स्थिति अत्यंत हृदयस्पर्शी तब बनती है जब कैलाश के बचने की आशा टूट जाती है और डॉक्टर के घर में कोहराम मच जाता है। तभी भगत को इसकी सूचना मिलती है, उसके मन में अंतर्द्वंद्व होता है कि वह डॉक्टर के पुत्र के प्राण की रक्षा करे या उसे देखने से उसी प्रकार इंकार कर दे जैसे कि डॉक्टर ने उसके बेटे को देखने से इंकार किया था। अंततः उसकी कर्तव्य भावना जागृत होती है और वह मंत्र के प्रभाव से कैलाश के प्राण बचाता है। वह धन या सम्मान की तनिक भी इच्छा नहीं रखता और चुपचाप लौट जाता है, इस प्रकार कहानी एक आदर्शवादी प्रभाव छोड़ती हुई समाप्त हो जाती है।

मंत्र कहानी का कथानक यद्यपि अनेक वर्षो की अवधि में फैला हुआ है, किंतु इसमें मुख्य घटनाएँ दो-तीन हैं, बूढ़े भगत का डॉक्टर चड्ढा के घर से निराश लौटना, कैलाश का साँप के काटने से मूर्छित होना और भगत द्वारा उसे बचाया जाना, ये घटनाएँ भिन्न होते हुए भी एक विशेष भावना के सूत्र से परस्पर जुड़ी हुई हैं, कथावस्तु में रोचकता, आदि से अंत तक बनी रहती है। प्रारंभ में बूढ़े भगत के पुत्र की मृत्यु, हमारे मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न करती है कि अब क्या होगा? पुनः कैलाश द्वारा साँप का खेल दिखाए जाने पर पाठकों के मन में एक नया कुतूहल जगता है, साँप द्वारा कैलाश के डसे जाने पर कुतूहल और भी तीव्र हो जाता है, अंत में भगत की सहृदयता सभी शंकाओं का समाधान कर देती है।

कहानी चरित्र प्रधान है। सभी पात्र यथार्थ जगत के हैं। वे अति मानव न होकर सामान्य मानव है। कहानी में पात्र यथार्थ से आदर्श की ओर बढ़ते हैं, वैसे माना जाता है कि सफल कहानी में पात्रों की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए, लेकिन इस कहानी में पात्रों की अधिकता है मुख्य पात्र बूढ़ा भगत के अतिरिक्त बुढ़िया, डॉ. चड्ढा, उसकी पत्नी, कैलाश मृणालिनी, मित्रगण, चौकीदार आदि हैं, लेकिन भगत का चरित्र ही इस कहानी का प्राण है। शेष पात्रों के चरित्र तो भगत के चरित्र को आदर्श बनाने के लिए ही चित्रित किए गए हैं। सभी पात्रों का स्वभाव और व्यक्तित्व अपने आप में विलक्षण है। गरीब भगत सीमा से अधिक भावुक, सहृदय और कर्तव्यशील है। डॉक्टर चड्ढा समय की पाबंदी के सामने मनुष्यता को भी भुला देता है। कैलाश एक आधुनिक युग का युवक होते हुए भी साँप पालने का विचित्र शौक रखता है। इस कहानी की यह प्रमुख विशेषता है कि सभी पात्रों का चरित्र विभिन्न घटनाओं, स्थितियों और संवादों द्वारा अपने आप ही स्वस्थ होता चला जाता है।

लेखक ने पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने, कथानक को अग्रसर करने तथा एकरसता को मिटाकर उसमें सजीवता उत्पन्न करने के लिए संवादों की योजना की है। आरंभ में ही बूढ़े भगत और डॉक्टर चड्ढा का संवाद दोनों के स्वभाव के अंतर को स्पष्ट कर देता है- डॉक्टर साहब ने चिक के अंदर से गरजकर कहा—''कौन है? क्या चाहता है?

बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा- ''हजूर बड़ा गरीब आदमी हूं। मेरा लड़का कई दिन से.....

डॉक्टर साहब ने सिगार जलाकर कहा- ''कल सवेरे आओ, कल सवेरे, हम इस वक्त मरीज को नहीं देखते।

इसी प्रकार मृणालिनी, कैलाश और उसके मित्रों का, बूढ़े और बुढ़िया का, आगंतुक और बूढ़े का, चौकीदार और बूढ़े के संवाद भी विशेष प्रभावशाली हैं। इन संवादों की स्वाभाविकता और संक्षिप्तता प्रशसनीय है तथा ये संवाद परिस्थितियों के अनुकूल हैं।

प्रेमचंद घटना का हुबहू चित्रण करने में बहुत कुशल हैं। चाहे शहरी वातावरण हो या फिर ठेठ ग्रामीण समाज का चित्रण हो, भाषा उनके सामने लाचार नजर आती है, वे उससे जो चाहते हैं वहीं कहलवाते हैं। प्रेमचंद अपनी कलम से रचना में ऐसा सजीव वातावरण तैयार करते थे कि पाठक उनकी रचना को पढ़ता चला जाता है।

'मंत्र' कहानी हमारे समाज के ग्रामीण और शहरी दोनों वर्गों से संबंधित है। लेखक ने इन दोनों वर्गो का चित्रण पूरी सजगता से किया है। प्रेमचंद ग्रामीण जीवन के यथार्थ जीवन की ऐसी झांकी प्रस्तुत करते हैं जिससे पाठक की आँखों के सामने वहाँ का चित्र साकार हो जाता है। उदाहरण के लिए ''शहर से कई मील दूर एक छोटे से घर में एक बुड्ढा और बुढ़िया अंगीठी के सामने बैठे जाड़े की रात काट रहे थे। बूढ़ा नारियल पीता था और बीच-बीच में खाँसता, बुढ़िया दोनों घुटनों में सिर डाले आग की ओर ताक रही थी।'' इसी प्रकार अगर शहरी जीवन की बात करें तो डॉक्टर चड्ढा के शहरी जीवन का भी सजीव वर्णन किया है। जैसे- ''संध्या का समय था। हरी-हरी घास पर कुर्सियाँ बिछी हुई थी। शहर के रईस और हुक्काम एक तरफ और कॉलेज के छात्र दूसरी तरफ बैठे भोजन कर रहे थे।'' यहाँ लेखक ने शहरी जीवन का भी बारीकी से वर्णन कर दिया है।

कहानी वर्णनात्मक शैली में लिखी गई है। कहानी की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा प्रवाहमयी है। प्रेमचंद ने इसमें पात्रों एवं स्थिति के अनुकूल बोलचाल के व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग किया है। गाँव और शहर के लोगों द्वारा आपसी बातचीत में जैसी भाषा वे बोलते हैं उसे बिना किसी बनावटीपन के इस कहानी में देखा जा सकता है। खड़ी बोली के साथ-साथ उर्दू-अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जैसे मिनट, मोटर, हजूर, मरज, सिगार आदि। मुहावरों और लोकोक्तियों के सुरुचिपूर्ण प्रयोग द्वारा कहानी में प्रवाह आ गया है जैसे—अक्ल पर पत्थर पड़ गया था, नहीं वो ऐसा पागल नही हूँ कि जो मुझे काँटे बोवे उसके लिए फूल बोता फिरूँ। कहीं-कहीं अलंकारों का भी अनायास प्रयोग हो गया है।

प्रेमचंद की प्रत्येक कहानी किसी न किसी आदर्श को सामने उपस्थित करती है। इस कहानी के माध्यम से भी लेखक ने स्पष्ट किया है कि मानवता की सेवा करना ही मनुष्य की महानता है। प्रायः

नगरों के गुणी और धनी लोग कठोर हो जाते हैं। वे गरीब और ग्रामीण लोगों की ओर ध्यान ही नहीं देते। उन्हें समय की पाबंदी, समय पर खेलना आदि मानवता से अधिक प्रिय हैं। इसके विपरीत दरिद्र, अभाव ग्रस्त और अनपढ़ ग्रामीणों में मानव धर्म का पालन करने का भाव सुरक्षित है। किसी मनुष्य के दुःख- दर्द को सुनकर वे अनायास ही उसकी सहायता को तत्पर हो जाते हैं। ईर्ष्या- द्वेष अथवा प्रतिशोध की अग्नि उनकी मानवता के शीतल जल से शांत हो जाती है।

कहानी का शीर्षक 'मंत्र' संक्षिप्त, सार्थक एवं कहानी की मुख्य घटना से संबंधित है। वस्तुतः प्रेमचंद की 'मंत्र' कहानी एक श्रेष्ठ कहानी है। जिसमें मानव स्वभाव का यथार्थ चित्रण है। इस कहानी में प्रेमचंद की कहानी कला का उच्चतम रूप दिखाई देता है।

संदर्भ सूचीः

1. प्रेमचंद, मंत्र तथा अन्य कहानियाँ, पेंगुइन रैंडम हाउस, भारत
2. विश्वनाथ त्रिपाठी, गंगा स्नान करने चलोगे?, के. एल. पचौरी प्रकाशन
3. मैथिलीशरण गुप्त, मनुष्यता (कहानी), स्पर्श (भाग 2), एनसीईआरटी
4. सुरेश कुमार (सं), प्रेमचंद और भारतीय साहित्य, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

असिस्टेंट प्रोफेसर
मैत्रेयी महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

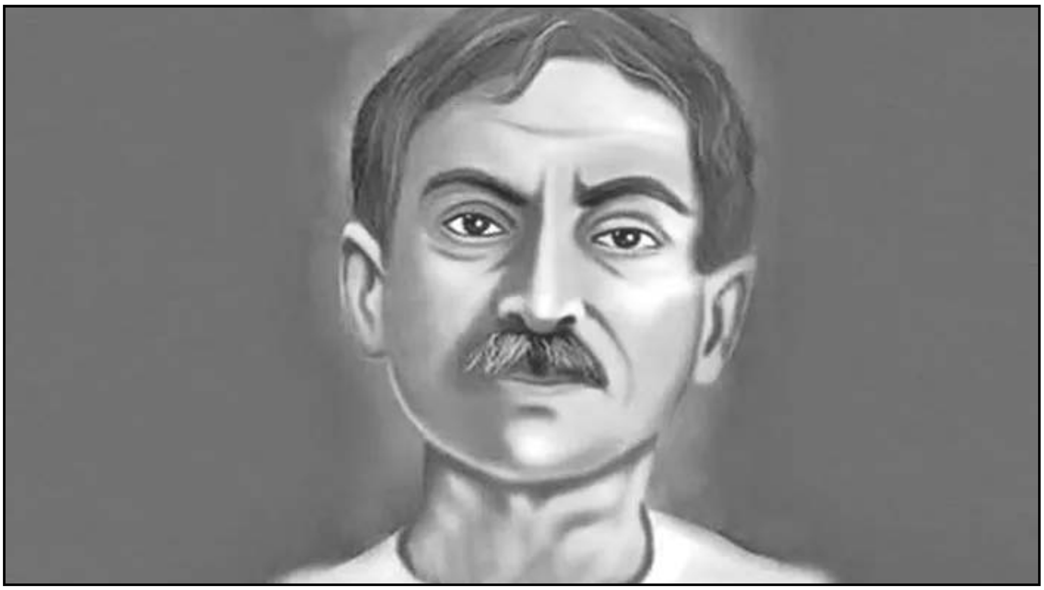

इंटरनेट से साभार

धूमिल के काव्य में युग-चेतना

मीनू कुमारी

सुदामा पांडेय धूमिल के विषय में अशोक वाजपेयी का कथन समीचीन है कि "धूमिल मात्र अनुभूति के नहीं वह विचार के कवि हैं, उनके यहाँ अनुभूतिपरकता और विचारशीलता, इतिहास और समझ, एक दूसरे से घुले मिले हैं और उनकी कविता केवल भावात्मक स्तर पर नहीं बल्कि बौद्धिक स्तर पर भी सक्रिय होती है"। धूमिल सपाटबयानी के कवि माने जाते हैं। उनका समस्त काव्य राजनैतिक दस्तावेज़ है। उन्होंने अपनी लेखनी में युग चेतना को बांधा है। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जिस स्वर्णिम काल की भारतीय जनता ने कल्पना की थी, वह स्वयं अपने ही शासन में दम तोड़ रही थी। आजाद भारत में अपने ही नेताओं की राजनीति में देश गिरफ्तार हो चुका था। विकास की गति धीमी पड़ गई थी। राजनीति का भद्दा चेहरा कुछ ही लोग पहचान पा रहे थे। भोली -भाली जनता अपने नेताओं को अपने हृदय में बसाए बैठी थी। वह प्रजातंत्र पर हो रहे लगातार आघात को भी नहीं देख पा रही थी। कवि धूमिल ने अपनी लेखनी के माध्यम से जनता को चेताने का कार्य किया। 1966 में भारतीय राजनीति में एक नया अध्याय जुड़ा जिसके अंतर्गत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दो दलों में विभक्त हो गई। एक दल की नेता गाँधी परिवार से थी और दूसरे दल के नेता मोरारजी देसाई। देश घोर गरीबी से गुजर रहा था। मोरारजी देसाई के समर्थन में बहुत सारे अन्य नेताओं ने सत्ता पक्ष का विरोध किया। इन नेताओं में जयप्रकाश नारायण, सत्येंद्र नारायण सिंह, आचार्य जीवत राम कृपलानी इत्यादि थे। धीरे-धीरे यह सभी नेता जनता की लोकप्रियता प्राप्त करने लगे। सत्ताधारी पार्टी ने इनका भरपूर विरोध किया और आनन- फानन में कई गलत कदम उठाए गए। गाँधी सरकार पर पहले से ही सत्तावादी आचरण के आरोप लग चुके थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने संविधान में परिवर्तन कर केंद्र और राज्यों के बीच सत्ता के सामंजस्य को बदल दिया। उन्होंने दो बार उन राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करवाया जिनमें कांग्रेस की सरकार नहीं थी। इससे जनता दल में और अधिक आक्रोश पैदा हो गया। इसके अलावा सत्ताधारी पार्टी से भी भारतीय जनता की नाराजगी रही क्योंकि उन्होंने नसबंदी कार्यक्रम को बहुत कठोरता से लागू करवाने के प्रयास किये। सत्ताधारी पार्टी की मनमानी को देखते हुए जयप्रकाश नारायण, सत्येंद्र नारायण सिंह और आचार्य जीवत राम कृपलानी ने कांग्रेस पार्टी के विरुद्ध सक्रिय प्रचार करते हुए भारत भर का दौरा किया।

1975 में राजनारायण ने एक चुनाव याचिका दायर की और इंदिरा गाँधी पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए। जिसके कारण लोकसभा चुनाव को रद्द घोषित कर दिया गया। व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने के लिए विरोध करने वाले अनेक महानुभावों की गिरफ्तारी के आदेश दे दिए। उन्होंने 26 जून 1975 को संविधान की धारा 352 के प्रावधानानुसार आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी। चारों तरफ पुलिस के कर्फ्यू लग गए। जनसाधारण पर अनिश्चितकाल के लिए रोक लग गई।

आपात स्थिति में सरकार पर लगातार आरोप लगते रहे और देश की राजधानी में सांप्रदायिक कटुता फैलने लगी। भारतीय जनता कांग्रेस पार्टी से पूरी तरह खिलाफ हो चुकी थी। परिणामस्वरूप 1977 के चुनाव में कांग्रेस पार्टी जनता दल से बुरी तरह हार गई। मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने और नीलम संजीव रेड्डी को राष्ट्रपति बनाया गया।

कवि धूमिल इन परिस्थितियों में काव्य के उपजीव्य तलाश रहे थे। नई सत्ताधारी पार्टी भी भारतीय जनता को कोई विशेष लाभ नहीं पहुँच सकी। कवि धूमिल एक स्वस्थ नेतृत्व की तलाश करते रहे जो उन्हें कहीं भी नहीं मिला। अंततः कवि इस निर्णय पर पहुँचे कि राजनीति की फितरत सदा एक- सी रहती है। केवल चेहरे बदल जाते है। कवि धूमिल समाज की बिगड़ी व्यवस्था से अनभिज्ञ नहीं थे। यह सामाजिक अव्यवस्था राजनैतिक कुव्यवस्था का परिणाम थी। जनता लोकतंत्र के नाम पर तानाशाही झेल रही थी। चारों तरफ से होने वाले षड्यंत्रों का परिणाम केवल जनता को भुगतना पड़ रहा था। नेताओं के अहंकारों की मार जनता पर पड़ रही थी। राजनीतिक पार्टियों का परस्पर मतभेद केवल सामान्य जनता पर गाज गिरा रहा था। वह सामान्य जनता जिसका कीमती वोट पाकर यह पार्टियाँ सत्ता संभाल रहीं थीं। लोकतंत्र को बार-बार कुचला जा रहा था। इस राजनीति के भद्दे चेहरे को देखकर कवि का हृदय आहत हो चुका था। कवि आजादी के सुनहरे सपने देखता देखता मोहभंग की स्थिति में फंस जाता है। इस मोहभंग की स्थिति में कवि धूमिल लिखते हैं—

"मैंने इंतजार किया
अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगी।

अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा—

अब कोई दवा के अभाव में
घुट-घुटकर नहीं मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा
कोई किसी को नंगा नहीं करेगा
अब यह जमीन अपनी है
आसमान अपना है

ये सारे शब्द थे

सुनहरे वादे थे
खुशफहम इरादे थे"

इन पंक्तियों में कवि ने उन सभी अभावों का जिक्र किया है जो आजादी से पूर्व जनता ने झेले और जिससे उभरने की उम्मीद स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की जा रही थी। किंतु वे सभी उम्मीदें मिट्टी हो गई, खाक हो गई। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि के अंदर इस बात का क्षोभ है, दुःख है कि आज हम अपने ही देश में, अपने ही शासन में अभी तक वे सभी अभाव झेल रहे हैं।

भारत ने अपनी शांतिवादी नीतियों की वजह से कई बार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर युद्ध में मत खाई। कवि को इस बात का दुःख भी है कि हम सिद्धांतों के फेर में आकर दुश्मन देश से हारते रहे। चीन ने 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' का नारा देकर भारत के साथ विश्वास घात किया। चीन की कूटनीतियों के कारण ही हम आज तक संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थायी सदस्य नहीं बन पाए यह बातें कवि को कचोट रही।

"हर सवाल का
एक ही जवाब था
यानी कोर्ट के बटन-हॉल में
महकता हुआ एक फूल
गुलाब का।
वह हमें विश्व शांति के और पंचशील के सूत्र समझता रहा।
मैं स्तब्ध रह गया
मेरा सारा धीरज
युद्ध की आग से पिघलती हुई बर्फ में
बह गया।"

धूमिल राजनीतिक चेतना के ऐसे महान कवि हैं जो मुश्किल से ही मिलते हैं। उनकी कविताओं में साफ झलकता है कि उन्हें प्रजातंत्र में व्याप्त उस व्यवस्था से कितनी क्रुद्धता थी, कितना द्वेष था। स्वतंत्रता के बाद की स्थिति उस समय के अन्य कवियों की दृष्टि से भी नहीं बच सकी थी। कवि रघुवीर सहाय और नागार्जुन की कविताओं में भी देश के प्रति संवेदनशीलता नजर आती है। रघुवीर सहाय की कविताएँ 'रामदास' और 'दो अर्थ का भय' इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। परंतु समाज की विकट स्थिति, गरीबी, सांप्रदायिक दंगे पूँजीवाद और अनेक समस्याओं से जूझता व्यक्ति जिसे धूमिल ने परखा और कोई नहीं परख सका। वे कुछ खास तरह से समकालीन व्यवस्था को देखते हैं। प्रजातंत्र उन्हें मात्र एक ढोंग लगता है इसीलिए प्रजातंत्र की वे साफ-साफ ख़िलाफत करते नजर आते हैं। दरअसल वे प्रजातंत्र के पीछे की तानाशाही और मनमानी को पहचान चुके थे। इसलिए उनकी दृष्टि में प्रजातंत्र क्या है यह उन्होंने अपनी कविता पटकथा में लिखा है-

"न कोई प्रजा है
न कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुला
षड्यंत्र है।
दरअसल अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है"

धूमिल की काव्य कला, उनकी संवेदना तथा सामाजिक पक्षधर्ता को समझने के लिए उनकी कविता 'पटकथा' को पढ़ना बहुत आवश्यक है। यह कविता हिंदी साहित्य की लंबी कविताओं में से एक है। नेमीचंद्र जैन ने पटकथा पर लिखा है कि "देश की और अपनी ऐसी बेरहम तस्वीर इतनी बेबाकी से उतर सकना एक समर्थ सृजनात्मक प्रतिभा द्वारा ही संभव है और उचित ही, यह कविता धूमिल को समकालीन कवियों में एक अलग खास व ऊँचा दर्जा देती है" धूमिल ने केवल काव्य विषय के स्तर पर ही नहीं बल्कि भाषा और शैली के स्तर पर भी अपनी अलग पहचान बनाई है। उन्होंने सपाटबयानी को प्रमुखता दी। उनकी भाषा में आक्रामकता, व्यंग्य एवं तीखापन है जो देश की राजनीति पर करारी चोट करता है। धूमिल ने राजनीति के विषय में लिखा है—

"एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है।
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ—
यह तीसरा आदमी कौन है?
मेरे देश की संसद मौन है

इन पंक्तियों में कवि ने राजनेताओं की ओर इशारा करते हुए कहा है कि एक बेबस गरीब आदमी अपने लिए किसी तरह से खाना जुटाता है। किंतु एक राजनेता गरीबी को हटाने का वादा करके उसका कीमती वोट तो ले लेता है किंतु उसके लिए रोटी की व्यवस्था नहीं करता। यह राजनेता कभी भी सवालों के कटघरे में खड़े नहीं किए जाते। क्योंकि संसद में सभी राजनेता हैं और एक दूसरे की भाषा व कार्य प्रणाली को जानते हैं। यह सरासर आम जनता के साथ खुला षड्यंत्र है।

धूमिल की रचनाओं के नाम भी कुछ इस प्रकार के हैं। वे समय के अग्रदूत हैं, भविष्यवक्ता है, और आम जनता की पीड़ा को जानते हैं। 'संसद से सड़क तक' उनके काव्य संग्रह का नाम है। यह शीर्षक जन सामान्य की अराजकता को दर्शाता है, अवस्था को दर्शाता है। 'कल सुनना मुझे' उनका एक अन्य काव्य संग्रह है जो देश की राजनीति के विषय में भविष्यवाणी करता है और पूरे विश्वास के साथ अपनी रचनाओं को समय के साथ सटीक बताता है। 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' एक अन्य काव्य संग्रह जिसमें वास्तविक प्रजातंत्र की तस्वीर बनाई गई है। उनकी रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है मानो वह भारतीय राजनीति का कोना-कोना झाँक आए हो और उनकी कविताएँ साक्षात राजनीति के घटनाक्रम ही हों। राजनीति सभी बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों द्वारा बनाया गया एक षड्यंत्र है जिसे कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

वे सब के सब तिजोरियों के
दुभाषिए हैं।
वह वकील हैं। वैज्ञानिक हैं।
अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक
हैं। लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।
यानी—
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।

आजादी के बाद भी देश की अवस्था ज्यों की त्यों है। राजनेता कुर्सी की होड़ में लगे हुए हैं। आम जनता के लिए केवल वादे किए जाते हैं, सुनहरे। कवि को यह महसूस होता है कि हम आज भी इस गुलाम भारत में जी रहे हैं। राजनीतिक अवस्था में कवि अप्रतिक्रियाशील व्यक्ति से और भी अधिक क्रुद्ध हैं। हर बार वह अपने शब्दों के माध्यम से उनको झकझोरते हुए दिखाई देते हैं। कि चेतना ही जीवन है पर "बहरे कानों के लिए धमाकों की जरूरत होती है" उनकी कविता बहरे कानों के लिए धमाका ही है। सच को कहने का दंभ उनमें बखूबी था। फिर वह सरकारी दफ्तर में हुए उनके साथ का मतभेद हो या उनकी कविताओं पर फबते कसीदे हो। लेखक ने इन सब का जवाब बखूबी दिया है। समकालीन स्थिति को देखकर जैसी हालत कवि की है वह अपने समय के ऐसे इकलौते कवि हैं जो अपने इसी तेवर के कारण ही जाने जाते हैं। भूख, शिक्षा, गरीबी, स्त्री, अकाल, शहरीकरण आदि हर विषय पर कवि ने कविता लिखी है, जिसमें वह अपना क्रोध शब्दों में पिरो कर कागज पर उतारते दिख जाते हैं। उनकी लेखनी से अंगारे निकलते साफ दिख पड़ते हैं। कविता पढ़ कर पाठक यह समझ जाता है कि इस व्यवस्था का कवि मातृदर्शक ही नहीं भुक्त भोगी भी है और समझता है कि उसकी ही तरह हर व्यक्ति काल के मुँह में ऐसा फंसा हुआ है जो न मरता है न जीता है, बस भयभीत है।

हर तरफ
शब्द भेदी सन्नाटा है।
दरिद्र की व्यथा की तरह
उचाट और कूंथता हुआ। घृणा में
डूबा हुआ सारा का सारा देश
पहले की तरह आज भी
मेरा कारागार है।

स्त्री इस संसार का सबसे बड़ा वरदान है। ईश्वर के बाद बनाने वाला कोई है तो वह स्त्री ही है। जो मानव के रूप में विश्व में मौजूद है। कवि की कविताओं में जहाँ-तहाँ स्त्री के बहुत से रूपों का वर्णन है जिसमें माँ, पत्नी, बेटी, बहन, पड़ोसन सब आते हैं। कवि द्वारा स्त्रियों के लिए किए गए शब्दों का प्रयोग आज की सामाजिक सच्चाई है। स्त्री की स्थिति आज के समाज में एक वस्तु तुल्य ही है। उसके लिए कोई जमीन और आसमान नहीं है। वह पैदा कहीं होती है, रहती कहीं और है, पलती कहीं और है और अधिकार कोई और जताता है। स्त्री की खुद के लिए कोई इच्छा नहीं समझी जाती। वह केवल समाज को पोषित करने के लिए बनी है। आज के इस बाज़ारवाद की दौड़ में अन्य वस्तुओं की भाँति स्त्री का भी मोल-भाव किया जाता है। कवि लिखते हैं—

"औरत आँचल है
जैसा कि लोग कहते हैं—स्नेह है
किंतु मुझे लगता है
इन दोनों से बढ़कर
औरत एक देह है"

दरअसल स्त्री के लिए कवि की चिंता जायज है। आधुनिक युग में स्त्री विज्ञापन के लिए इस्तेमाल की जा रही है। पूँजीवादी समाज में स्त्री एक वस्तु बनकर रह गई है। इस बाज़ारीकरण के दौर में हर प्रोडक्ट का ब्रैंड एंबेसडर महिलाओं को बनाने का यही मतलब है कि मानव मात्र की मानसिकता ही यही बन गई है। शारीरिक प्रदर्शन के माध्यम से पूँजीपति वस्तुओं का विनिमय कर रहे हैं, फिर क्या फर्क पड़ता है कि स्त्री वस्तु है या मानव। कवि धूमिल बाज़ारवाद की दुनिया में स्त्री के बढ़ते इस्तेमाल को देखकर बहुत आहत होते थे। 1960 से 1975 तक का युग महिला लेखन का भी शीर्ष युग था। इस युग में स्त्री विमर्श जोर पकड़ रहा था। स्त्री अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रही थी। वहीं दूसरी ओर कवि धूमिल अनूठे ढंग से स्त्रियों के पक्ष में लिखते नजर आते हैं—

"मुझे पता है
स्त्री-देह के अंधेरे में
बिस्तर की
अराजकता है
स्त्री पूंजी है
बीड़ी से लेकर
बिस्तर तक
विज्ञापन में फैली हुई"

कवि का आशय यह है कि विज्ञापन स्त्री संबंधी उत्पाद का हो या उद्योगपति के उत्पाद का, परफ्यूम का हो या पंखे का, गाड़ी का हो या वाशिंग पाउडर, कॉस्मेटिक का हो या मोबाइल फोन का, हर विज्ञापन में स्त्री द्वारा ही अंग प्रदर्शन करवाया जाता है।

विद्यानिवास मिश्र ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को सकारात्मक रूप से उकेरते हुए अपनी संवेदनाओं को व्यक्त किया है। उनके लिए वह कवि बेबाक कवि थे। विद्यानिवास मिश्र जी धूमिल के बारे में बातें करते हुए कई बार भावुक हो जाते थे। मिश्र जी ने उनकी तुलना कई बार धूमकेतु से करते हुए कहा है कि उनमें इतनी तेजी थी कि मैं उनके साथ ही नहीं दे पाया वह कहते हैं कि "वह जिंदगी से तटस्थ होकर जिंदगी के बारे में सोच सकता है। वह जिंदगी तो जीता ही है दूसरों की जिंदगी भी जी सकता है। धूमिल भी जिंदगी की गहरी ममता के लिए इतने निर्मम है कि कभी-कभी लोग उन्हें गलत समझते हैं। उन्हें नारेबाज समझते हैं, उन्हें एक झपताल बजाने वाला नक्शेबाज कवि समझते हैं" बचपन से लेकर बुढ़ापे तक, लाचारी से लेकर बेसहारा मौत के कगार तक, हर प्रकार की विडंबनाओ पर कविता लिखने वाले कवि हैं धूमिल। राजनीति और राजनेताओं की सच्चाई बाहर लाने के लिए वह अकेले ही काफी थे। वह प्रतिभा के आकाश में चमचमाने वाले ऐसे तारे थे जिसे हम तारा तो नहीं कह सकते। उनके लिए विद्यानिवास जी की दी हुई संज्ञा ही सबसे सटीक प्रतीत होती है कि

"वह समकालीन समाज के आकाश के ऐसे पुच्छल तारे हैं जो तेजी से आके चला तो गया पर अपनी अमित छाप दुनिया में छोड़ गया। आलोचना के दौर से उन्हें भी गुजरना पड़ा, पर आज उनकी कविता पढ़ने वाला हर पाठक उनकी बेबाकी और अदम्य साहस और प्रतिभा का कायल है। ऐसा कवि हर युग की दरकार है।"

संदर्भ सूचीः

1. धूमिल, कल सुनना मुझे, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
2. धूमिल, सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
3. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेंद्र
5. नई कविता स्वरूप और समस्याएं, जगदीश गुप्त, भारतीय ज्ञानपीठ
6. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन

असिस्टेंट प्रोफेसर
मैत्रेयी महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

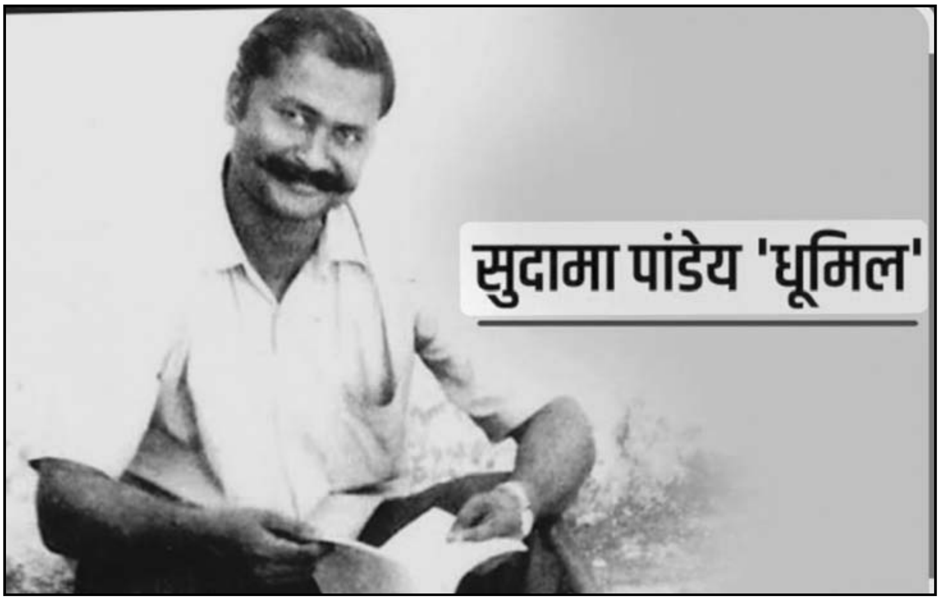

इंटरनेट से साभार

'प्रियप्रवास' की राधा का लोक कल्याणकारी रूप

प्रवीण भारद्वाज

पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने भारतेंदु युग के उत्तरार्ध काल में काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया। इस काल में ब्रज भाषा ही काव्य की मूल भाषा के रूप में अधिकांशतः छाई हुई थी। अतः हरिऔध जी ने श्री कृष्ण शतक नामक अपनी प्रथम रचना में ब्रज भाषा में ही श्री कृष्ण को परब्रह्म के रूप में पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया। इस प्रकार हरिऔध जी की प्रारंभिक रचनाएँ ब्रज भाषा में ही रचित हैं। जब बाद में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने काव्य क्षेत्र में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने का आंदोलन चलाया उस समय हरिऔध जी का 'प्रियप्रवास' नामक महाकाव्य उनका इस क्षेत्र में अद्वितीय योगदान के रूप में प्रदर्शित होता है। द्विवेदी युग से पहले काव्य के क्षेत्र में जो विषय प्रमुख रहे उनमें शृंगार, भगवत भक्ति एवं देशभक्ति की धाराएँ प्रवाहित थी। उस समय प्रमुख रूप से देशकालीन समस्याओं की पूर्ति पर बल दिया जाता रहा है। जिसके लिए कवि गोष्ठियों का आयोजन किया जाता रहा। उस समय गद्य की एकमात्र भाषा खड़ी बोली को स्वीकार करने पर भी भारतेंदु काल में कविता के क्षेत्र में ब्रज भाषा का एक छत्र साम्राज्य बना रहा। यद्यपि खड़ी बोली में भी कुछ एक रचना हुई किंतु उसे काव्य उपयुक्त नहीं समझ गया। ब्रज भाषा की माधुरी पर रचा हुआ इन लोगों का रसिक मन अंत तक खड़ी बोली की काव्य उपयुक्तता में विश्वास करता रहा। 19वीं शताब्दी के अंत में परिस्थितियों बदल चुकी थी। अब जन रुचि में भक्ति एवं शृंगार के अलावा समस्याओं की पूर्ति एवं तुकबंदियों से भी पाठक ऊब गया था। इस समय जनता की रुचि कुछ और ही हो गई थी। 1900 ई. में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी जो जनता की रुचि के पारखी एवं साहित्य के दिशा निर्देश माने जाते हैं, उन्होंने एक कविता शीर्षक में अपनी कविता में जन रुचि को प्रतिनिधित्व दिया तथा ब्रज भाषा के परंपरागत प्रयोग पर दुःख प्रकट किया। इस समय उन्होंने जब 1903 ई. में सरस्वती के संपादक की भूमिका निभाई तो उन्होंने नायिका भेद को त्याग कर अन्य विषयों पर कविता लिखने के लिए लेखकों को परामर्श दिया। सब मिलकर भारतेंदु कालीन कविता के उपादान सीमित तथा अधिकांशतः हैं, इस युग की काव्य भाषा परंपरागत थी। भारतेंदु युग के बाद भी कुछ समय तक यही स्थिति बनी रही।

विभिन्न कवियों द्वारा राधा जी को अलग-अलग रूपों में प्रस्तुत किया गया है। गीत गोविंद की राधा अनुपम सुंदरी हैं जो अपने रूप लावण्य को संभालती हुए अपने प्रियतम कृष्ण को इधर-उधर ढूँढ़ती फिरती हैं। विद्यापति ने राधा को कृष्ण की प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है। उनके द्वारा जिन कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया गया है वह अलौकिक शृंगार के रूप में चित्रित है। रविंद्रनाथ टैगोर विद्यापति की राधा के विषय में लिखते हैं–

'विद्यापति की राधा में प्रेम की अपेक्षा विलास अधिक है। इसमें गंभीरता का अटल स्थैर्य नहीं है केवल नवानुराग की उदभ्रांत लीला और चांचल्य है। विद्यापति की राधा नवीना है, नवस्फुटा है, हृदय की सारी नवीन वासनाएँ पंख फैलाकर उड़ना चाहती है पर अभी रास्ता मालूम नहीं है। कुतूहल और अभिज्ञतावश वह अग्रसर होती है और फिर वापस आ जाती है। कुछ व्याकुल भी है और आशा निराशा का आंदोलन भी है।'

हरिऔध जी द्विवेदी युग के प्रख्यात कवि होने के साथ-साथ आदर्श चरित्र पर प्रबंध काव्य लिखने वाले प्रसिद्ध लेखक भी रहे हैं। उन्होंने स्वार्थ त्याग आत्म गौरव जैसे उच्च आदर्शो को अपनी लेखनी का आधार बनाया। इस काल में कवियों ने प्रेम को भी आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है और हरिऔध का महाकाव्य प्रियप्रवास इसका उत्तम उदाहरण है जिसमें राधा संपूर्ण विश्व में कृष्ण की विश्व सेविका बनकर उभरती। इस समय प्रकृति भी स्वतंत्र रूप से काव्य का विषय रही जो रीतिकालीन प्रकृति वर्णन से भिन्न है। इस समय नायक-नायिका के संदर्भ में केवल परंपरागत ऋतु वर्णन नहीं मिलता बल्कि द्विवेदी युगीन प्रकृति चित्रण में कल्पना वैभव के स्थान पर यथार्थता को सर्वोपरि माना गया। प्रियप्रवास के आरंभ में प्रकृति चित्रण करते हुए कवि हरिऔध जी लिखते हैं–

"दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।"

'प्रियप्रवास' में हरिऔध की राधा का सौंदर्य लावण्य से परिपूर्ण है। वे चंद्रमुखी हैं, मधुर भाषिणी हैं। उनकी मधुर मुस्कान सब का मन मोह लेती है। उनकी माधुर्य से परिपूर्ण वाणी के साथ उनके हावभावपूर्ण विशाल नेत्र, सुनने वाले के मन में हर्ष उत्पन्न कर देते हैं।

'प्रियप्रवास' की राधा का श्री कृष्ण के साथ अनुराग उनके परिवार के मध्य दृढ़ मैत्री के संबंध का ही प्रतिफल है। राधा और कृष्ण अबोध शिशु की आयु में ही एक दूसरे के घर पर आते जाते रहे हैं और उनकी आयु के बढ़ने के साथ-साथ उनका बचपन का स्नेह प्रणय में परिवर्तित हो जाता है।

"युगल का वय साथ सनेह थी
निपट निरवता सह था बढ़ा।
फिर यही वर- बाल सनेह भी
प्रणय में परिवर्तित था हुआ।"

श्री कृष्ण से राधा का विरह पर्याप्त एवं विस्तृत रूप से 'प्रियप्रवास' में दिखाया गया है। जब राधा को यह समाचार मिलता है कि श्री कृष्ण को कंस द्वारा मथुरा बुलाया गया है तो उसके हृदय

में विरह की पीड़ा उभर उठती है। किंतु राधा के हृदय के अंतर्द्वंद और उदासी के उपरांत भी कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। जब दिन पर दिन बीत जाने पर भी श्री कृष्ण मथुरा से नहीं लौटते तब राधा के विरह के स्वरूप को कवि हरिऔध 'प्रियप्रवास' में व्यक्त करते हैं। इस विरह उन्माद को कवि ने राधा के लोक कल्याणकारी रूप में प्रकट किया है। राधा वायु को दूतिका के रूप में श्री कृष्ण के पास मथुरा भेजती हैं। राधा की परम इच्छा है कि हवा अति तीव्र वेग से श्री कृष्ण के पास उसकी विरह व्यथा को सुनाने जाए। साथ ही वह वायु को यह भी समझाती है कि यदि मार्ग में कोई कृषक ललना तेज धूप से दुखी है तो तुम उसे अपनी शीतलता प्रदान करना जिससे उसको शांति प्राप्त हो सके। राधा वायु को समझाती कि लोक कल्याण व्यक्तिगत सुख से पहले है अतः श्रमिकों और दीन दुखियों के कल्याण के समक्ष मेरे संदेश को हे वायु तुम प्राथमिकता नहीं देना।

"जाते-जाते अगर पथ में क्लांत कोई दिखावे
तो जाके सन्निकट उसकी क्लांतियों को मिटाना।

लज्जा शीला पथिक महिला को कहीं जो कहीं दृष्टि आवे होने देना विकृत-वसना तो न तू सुंदरी को।

जो थोड़ी भी श्रमिक वह हो गोद ले श्रांति खोना
होठों की ओ कमल-मुख की म्लानतायें मिटाना।"

'प्रियप्रवास' की राधा शास्त्र में पारंगत है। वह मोह एवं प्रणय में भेद को भली भांति जानती है और व्यक्त भी करती है। राधा कहती है कि मोह में स्वार्थ लिप्सा और वासना की प्रधानता होती है। मोह रूप पर आधारित होता है और जैसे रूप में विकार आना स्वाभाविक है उसी प्रकार मोह भी समय के साथ-साथ विकार ग्रस्त हो जाता है।

"हो जाता है उदित उर में मोह जो रूप द्वारा
व्यापी भू में अधिक जिसकी मंजु कार्यावली है।"

राधा के अनुसार मोह शारीरिक आकर्षण पर आधारित होता है जबकि प्रणय सद्‌गुणों से प्रभावित होता है। जिस प्रकार सद्‌गुण नवीन रूप में निरंतर विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रणय का भाव भी स्थाई होता है क्षणिक नहीं। मोह कुछ ग्रहण करने की आशा रखता है जबकि प्रणय कामना रहित आत्म बलिदान सर्वस्व लुटा देने का भाव रखता है।

"नाना स्वार्थी सरस सुख की वासना मध्य डूबा
आवेगों से बलित ममतावान है मोह होता।
निष्कामी है प्रणय शुचिता मूर्ति है सात्विकी है
होती पूरी प्रमिति उसमें आत्मा उत्सर्ग की है।"

प्रियप्रवास की राधा भक्ति में भी लोकहित एवं विश्व कल्याण की बातों को सर्वोपरि स्थान देती है उनके अनुसार भगवान का कीर्तन करना उनकी पूजा करना उनको याद करने के साथ-साथ हमें सभी की भलाई के कार्य करने चाहिए। मानव कल्याण भी श्री कृष्ण की भक्ति में लीन होना ही होता है।

"जो बातें हैं भाव हितकारी सर्व-भूतोंपकारी
जो चेष्टाऐं मलिन गिरती जातियाँ हैं उठाती।
हो सेवा में निरत उनके अर्थ उत्सर्ग होना
विश्वात्मा भक्ति भव सुखदा संज्ञका है।
कंगालों की विवश विधवा औ अनाथाश्रितों की
उद्विग्नों की सुरती करना औ उन्हें त्राण देना।"

राधा प्रथम श्री कृष्ण को मथुरा से वापस ब्रज को लौटाने को आतुर हैं। वे व्याकुल हैं कि कब श्री कृष्णा पुनः मथुरा से उनके पास आएंगे। जब उन्हें ज्ञात होता है कि उनके श्री कृष्ण तो लोक सेवा के कृत्यों में संलग्न हैं, तब उन्हें लगता है कि भले ही वे वापस ना आए किंतु राधा उनकी आज्ञा का पालन करती रहे और संपूर्ण जीवन श्री कृष्ण की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर उसको पूर्ण करने की चेष्टा करती रहे। प्रियप्रवास की राधा प्राकृतिक उपादानों में लोक कल्याण के भाव को स्थापित करती दृष्टिगोचर होती हैं। उनके लिए निश्चित और शांति से बढ़कर विश्व का सुख है। अभावग्रस्त जन तथा रोगी जनों हेतु प्रकृति का दोहन सर्वोचित होता है यही राधा की विश्व कल्याण की भावना उसे सर्वोच्च स्थान प्रदान करती हैः

"तेरी जैसी मृदु पवन से सर्वथा शांति कामी
कोई रोगी पथिक पथ में जो पड़ा हो कहीं तो।
मेरी सारी दुखमय दशा भूल उत्कंठ होके
खोना सारा कलश उसका शांति सर्वांग होना।
कोई क्लांता कृषक ललना खेत में जो दिखावे
धीरे-धीरे परस उसकी क्लांतियों को मिटाना।"

कवि ने राधा को सद्‌गुणों से परिपूर्ण, समाज कल्याण के भाव से आप्लावित, निश्छल प्रेम से संपोषित गुणों का आगार माना हैः

"सद् वस्त्रा सदलकृता गुणयुता सर्वत्र सम्मानिता
रोगी वृद्ध जानोपकार निरता सच्छास्त्र चिन्तापरा।
सद्‌भावभरिता अनन्यहृदया सत्प्रेम-संपोषिता
राधा थीं सुमना प्रसन्नवदना स्त्री -जाति रत्नोपमा।"

जब राधा को इस सत्य का भान होता है कि उनका प्रियतम जगत हित को सर्वोपरि मानते हैं तब उनकी आत्मा के सदगुण उनसे एकाकार हो जाते हैंः

"जी से प्यारा जगत हित औ लोक सेवा जिसे है
प्यारी सच्चा अवनी-तल में आत्म-त्यागी वही है।"

राधा श्री कृष्ण की मथुरा से आने की प्रतीक्षा में अधीर हुई जा रही है किंतु जब उन्हें उद्धव द्वारा उनका संदेश प्राप्त होता है तो उनका व्याकुल मन प्रण लेता है कि जिस भाँति श्री कृष्ण लोक सेवा के कृत्यों में तत्पर एवं निमग्न हैं उन्हीं की भाँति राधा भी आजीवन उसी मार्ग का चयन करते हुए लोक सेवा करेगी।

"प्यारे आवें सु-बयन कहें प्यार से गोद लेवें
ठंडे होवे नयन दुख हों दूर मैं मोदी पाऊँ।
ये भी हैं भाव मम उर के और"

प्रियप्रवास पर हरिऔध जी को हिंदी का सर्वोत्तम पुरस्कार मंगला प्रसाद पारितोषिक भी प्रदान किया गया इस महाकाव्य की काव्य शैली बहुत ही मार्मिक एवं भावपूर्ण है इसमें केवल राधा जी को ही नहीं बल्कि यशोदा जी के विरह को भी लेखक ने बड़े ही सहृदय पूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया है

"प्रिया पति, वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है।
दुख जल निधि डूबी का सहारा कहाँ है।।
लाख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूं।
वह हृदय हमारा नयनतारा कहाँ है।।

पाल-पाल जिसके मैं पंथ को देखी थी।
निशिदिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।।
और पर जिसके है सोहती मुक्तमाला।
वह नव नलिनी से नैन वाला कहाँ है।।"

राधा जी विश्व के कल्याण में ही सच्चे प्रेम एवं स्नेह के रूप को मानती है। वे लोक कल्याण एवं सेवा भाव को सर्वोपरि मानते हुए विश्व एवं समाज में हर रूप में कण-कण में श्री कृष्ण को ही वास्तविक रूप में मानती हैं। श्री कृष्ण मथुरा से उद्धव को गोपियों एवं राधा को समझाने के लिए भेजते हैं किंतु राधा और गोपियाँ श्री कृष्ण के प्रेम में इतनी अधिक व्याकुल हो जाते हैं कि वह उद्धव की किसी भी बात को नहीं सुनती। उद्धव की बहुत चेष्टाएँ करने पर भी गोपियाँ श्री कृष्ण के प्रेम के समक्ष उत्सव के ज्ञान को व्यर्थ मानती हैं। जब उद्धव उन्हें बताते हैं कि कृष्णा केवल उनके सखा नहीं है बल्कि वे भी एक विशिष्ट लक्ष्य की पूर्ति हेतु इस संसार में आए हैं तो गोपियाँ इस बात को हँसी में उड़ा देती हैं और वह उद्धव की बात को बिल्कुल भी नहीं मानती किंतु जब राधा को इस बात का भान होता है कि कृष्ण लोक सेवा के कार्य के लिए मथुरा में गए हैं तो राधा भी कृष्ण के दिए हुए उस लक्ष्य को पूर्ण करने हेतु अपने पूरे जीवन को लगा देती है। वह अपने निजी प्रेम से अधिक समाज कल्याण के भाव को सर्वोत्कृष्ट बताती हैं।

इस प्रकार अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी द्वारा रचा गया 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली में लिखा गया प्रथम महाकाव्य है जिसमें राधा सामान्य नायिका की तरह ऊपर उठकर विश्व सेवी एवं विश्व प्रेमी के रूप में चित्रित हुई है जिसमें हरिऔध जी ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। हिंदी साहित्य कोश में रविंद्र भ्रमर जी लिखते हैं 'प्रियप्रवास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कृष्ण कथा को आधुनिक कलेवर देने की चेष्टा की गई है और नायक श्री कृष्णा तथा नायिका राधा को विश्व कल्याण की भावना से परिपूर्ण शुद्ध मानव रूप में चित्रित किया गया है'

इस प्रकार गहनता से देखने पर यह ज्ञात होता है कि 'प्रियप्रवास' का मूल कथानक ऊपरी तौर पर प्रवास प्रसंग तक ही सीमित प्रतीत होता है किंतु हरिऔध जी ने इस सीमित क्षेत्र में श्री कृष्ण के जीवन एवं राधा जी के विरह को सामान्य नहीं बल्कि लोक संरक्षण एवं विश्व कल्याण की भावना से परिपूर्ण रूप में व्यक्त किया है।

संदर्भ सूचीः

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेंद्र
2. हिंदी साहित्य कोश (भाग 2), नामवाची शब्दावली, प्रधान संपादक : धीरेंद्र वर्मा
3. प्रियप्रवास : अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
4. मध्यकालीन हिंदी साहित्य और समाज, संपादक : डॉ. रमा, डॉ. विजय कुमार मिश्र, डॉ. महेंद्र प्रजापति

असिस्टेंट प्रोफेसर
शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

'गाँव-गाँव घूमकर दरिद्र की सेवा में जीवन अर्पित कर दो।'
— शिष्यों से विवेकानंद

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श: अस्मिता, संघर्ष और स्वीकार्यता

पवन कुमार

शोध सार : किन्नर विमर्श समकालीन हिंदी साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण अस्मितामूलक विमर्श के रूप में उभर रहा है। यह विमर्श किन्नर समुदाय की सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक उपस्थिति, उनके संघर्षों और अधिकारों को केंद्र में रखता है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में किन्नरों का उल्लेख तृतीय प्रकृति (कामसूत्र) और क्लीव (अथर्ववेद) के रूप में मिलता है। महाभारत में 'शिखंडी' और 'बृहन्नला' तथा रामायण में किन्नरों के मिथकीय संदर्भ मिलते हैं। मध्यकाल में यह समुदाय प्रशासनिक भूमिकाओं में दिखता है, लेकिन ब्रिटिश शासन के दौरान इन्हें हाशिए पर धकेल दिया गया। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 2014 में किन्नरों को तृतीय लिंग के रूप में मान्यता दी, और 2019 में ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम पारित हुआ, जिससे उन्हें कानूनी अधिकार मिले। हिंदी साहित्य में किन्नरों का उल्लेख सीमित रहा, लेकिन 1980 में सुभाष अखिल की 'दरमियाना' पहली कहानी के रूप में सामने आई। नीरजा माधव का यमदीप (2002), चित्रा मुद्गल का पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा (2016), महेंद्र भीष्म के मैं पायल (2016) और किन्नर कथा (2020), तथा भगवंत अनमोल का जिंदगी 50-50 (2017) किन्नरों की व्यथा और संघर्षों को उजागर करते हैं। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की आत्मकथा मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी! (2015) किन्नर समुदाय की आत्म-अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। रमा पांडेय के नाटक लल्लन मिस (2021) में किन्नरों के अस्तित्व से जुड़े प्रश्न उठाए गए हैं। हालांकि, किन्नर विमर्श हिंदी साहित्य में अपनी जगह बना रहा है, लेकिन इसे अभी भी व्यापक स्वीकृति और गहन अध्ययन की आवश्यकता है। यह विमर्श न केवल साहित्यिक बल्कि सामाजिक बदलाव लाने में भी सहायक हो सकता है।

बीजशब्दः किन्नर विमर्श, अस्मितामूलक साहित्य, सामाजिक बहिष्कार, संवैधानिक अधिकार, समकालीन हिंदी साहित्य, लैंगिक पहचान, अधिकारों का संरक्षण, न्यायालय का निर्णय, ब्रिटिश शासन और प्रभाव, संस्कृति और परंपरा, शोषण और संघर्ष स्वीकृति और समानता, साहित्यिक अभिव्यक्ति।

मूल आलेख : 'क्वीर विमर्श' पुस्तक में के. बनजा लिखती हैं- "साहित्य का मूल उद्देश्य पाठक की भावनाओं को झंकृत करना है, ताकि समाज के अंधेरे कोनों को प्रकाश से परिपूर्ण किया जा सके तथा जो स्थितियाँ या मुद्दे अनछुए रह गये हैं, उन पर संवेदनशील ढंग से विचार किया जा सके। ... ट्रांसजेंडर होकर जन्म लेना किसी भी व्यक्ति का स्वयं का चुनाव नहीं होता। इसलिए वह किसी भी तरह से पारिवारिक एवं सामाजिक लज्जा का कारण नहीं है, बहिष्कार का भी।"

विमर्श का अर्थ है- किसी मुद्दे या विषय की हर ओर से सारे पहलुओं को समेटे हुए, समुचित विवेचन, समीक्षा व पर्यावलोचन। विमर्श में किसी सुनिश्चित विषय का तथ्यानुसंधान कर उसके गुण-दोष आदि की उचित आलोचना की जाती है। पिछले कुछ समय में कला, संस्कृति, साहित्य, समाजशास्त्र और ज्ञान-विज्ञान के अनुशासनों में जो विमर्श उभरकर सामने आये हैं, उनमें स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श व आदिवासी-विमर्श प्रमुख हैं। परन्तु हिंदी साहित्य व उसके पाठकों को समसामयिक हालातों में जिस अस्मितामूलक विमर्श की निर्विवाद रूप से आवश्यकता है वह है किन्नर विमर्श। अभी तक हिंदी साहित्य में किन्नरों और उससे जुड़े विमर्श लुप्त प्रायः हैं। किन्नरों की कई श्रेणियाँ मानी जाती हैं। डॉ. पुनीत विसारिया के अनुसार हिंदी में किन्नरों के चार वर्ग देखने को मुख्य रूप से मिलते हैं—बुचरा, नीलिमा, मनसा व हंसा।

प्रो. मेराज अहमद लिखते हैं कि "हिजड़ा शब्द से हमारे मस्तिष्क में ऐसे लोगों की छवि बनती है, जिनके जननांग पूरी तरह विकसित न हो पाये हों अर्थात् वह न ही पूर्ण पुरुष हो न ही पूर्ण स्त्री। कुछ लोग पुरुष होकर भी स्वभाव से स्त्रैण होते हैं, उन्हें पुरुषों के बजाय स्त्रियों के बीच रहने में सहजता महसूस होती है।"

इस समुदाय के लिए अनेक प्रकार के संबोधन देखने को मिलते हैं जिसमें से कई संबोधन तो उनकी अस्मिता के लिए गाली या नकारात्मकता के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं जैसे- हिजड़ा, छक्का, खोजा व मौसी आदि। परंतु अध्ययन के क्षेत्र में इनके लिये दो प्रकार के संबोधन विशेष रूप से प्रचलित हैं—ट्रांसजेंडर व किन्नर।

1910 में जर्मन सेक्सोलॉजिस्ट मैग्नस हिर्चफील्ड 'ट्रांसवेस्टेट' शब्द का प्रयोग करते हैं। सन् 1949 में 'ट्रांससेक्सुअल' शब्द सामने आता है। 1970 में 'सूजन स्टैंकर' (ट्रांसजेंडर) 19वीं शताब्दी के मध्य से 2000 के समय अमेरिकी ट्रांसजेंडरों का इतिहास लिखते हैं तथा यह 2008 में प्रकाशित होता है। स्टैकर ट्रांसजेंडर की परिभाषा कुछ इस प्रकार देते हैं- "People who move away from the gender they were assigned at birth, People who cross over (trans) the boundaries who constructed by their culture to define and contain their geader."

(जो लोग अपने जन्म के समय लिंग से अलग हो जाते हैं और जो उनके लिंग में निहित और उनकी संस्कृति द्वारा परिभाषित सीमाओं

को पार करते हैं वे हैं ट्रांसजेंडर।)"

प्राचीन भारतीय साहित्य में किन्नर शब्द के स्थान पर तृतीया प्रकृति (वात्स्यायन के कामसूत्र में) व 'क्लीव' (अथर्ववेद में बैल के बंध्याकरण के अर्थ में) शब्द विशेष रूप से देखने को मिलता है। वर्तमान समय में भारतीय व हिंदी समाज में मुख्य रूप से किन्नर शब्द का प्रयोग अधिकार से किया जा रहा है। 'अमरकोश' में किन्नरों को देवयोनियों में स्थान दिया गया है।

"विद्याधरोऽप्सरो यक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः"

अर्थात गंधर्व व किन्नर नृत्य व गायन में प्रवीण थे। वहीं किन्नर शब्द का प्रयोग शतपथ ब्राह्मण, बौद्धसाहित्य, मानसार आदि में भी मिलता है।

किन्नर समाज का वर्णन हमें अपने ऐतिहासिक ग्रंथों में मुख्य कथा के साथ देखने को मिलता है। 'रामायण' में हमें मिथक के रूप में किन्नरों का प्रसंग प्राप्त होता है। 'महाभारत' में 'बृहन्नला' एवं 'शिखंडी' का प्रसंग व 'अरावन' किन्नरों के ईश्वर (पति) का प्रसंग मुख्य कथा के रूप में मिलता है। 'पाणिनी के व्याकरण' ग्रंथ में भी हमें तृतीय प्रकृति, तृतीयलिंग, नपुंसकलिंग आदि का वर्णन सामान्य रूप में देखने को मिलता है। 'वात्स्यायन' के 'कामसूत्र के साम्प्रयोगिक अधिकरण के नवम् अध्याय तृतीय प्रकृति की मैथुनिक क्रिया का वर्णन है। 'आयुर्वेद' में कुत्सित नर के रूप में इस शब्द का वर्णन मिलता है। 'शिवपुराण' में किन्नरों की उत्पत्ति का श्रेय भगवान शिव को है। 'पौराणिक भूगोल' में भी इनका वर्णन है। 'मनुस्मृति' में इनके विषय में सकारात्मक व्यवहार व मत प्राप्त नहीं होता है। संस्कृत के महाकवि 'कालिदास' की रचनाएँ मेघदूत, रघुवंश व कुमारसंभवम् में किन्नरों का वर्णन यक्ष व गंधर्व के साथ तथा 'महाकवि माघ' के महाकाव्य 'शिशुपाल वध' में किन्नरों को 'घोड़े के मुख' वाला कहा गया है।

इतिहास में अलाउद्दीन खिलजी के समय में 'किन्नर नुसरत खान' जहाँगीर के समय में 'किन्नर इफ्फितखान' गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर के समय में 'किन्नर मुमिन उल्मुक' का वर्णन प्रशासनिक अधिकारी के रूप में मिलता है।

आधुनिक समय तक आते-आते हम पाते हैं कि 'मनुस्मृति' में किन्नर समुदाय के प्रति फैलायी नकारात्मकता को ब्रिटिशों के बनाये कानूनों द्वारा विशेष बल मिला। तृतीय लिंग के रूप में उनकी सामाजिक स्वीकार्यता नगण्य है। प्रायः हाशिए पर रहता आया यह वर्ग मुख्यधारा से और भी कटता चला गया। परन्तु आधुनिकता अपने साथ तार्किकता व वस्तुनिष्ठता लेकर आयी। लोग अपने अधिकारों के प्रति और भी सजग हुए और नियमित रूप से घोर संघर्ष के बाद किन्नरों की आवाज समाज व सत्ता तक पहुँची। इसी संदर्भ में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 15 अप्रैल 2014 को एक ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए कहा- किन्नरों को तृतीय लिंग के रूप में स्वीकृति दी जायेगी। अनुच्छेद 14, 16 व 21 का हवाला देते हुए कहा- देश के नागरिक होने के नाते किन्नरों को रोजगार, कार्यालयों, सार्वजनिक स्थलों, तथा रोजमर्रा की जिंदगी में स्वीकार्यता मिलेगी। इसके बाद 2016 में संसद ने भी लोकसभा में ट्रांसजेंडर व्यक्ति का अधिकार विधेयक प्रस्तुत किया और 2019 में ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम पारित किया।

दुविधा यह उत्पन्न होती है कि जिस समाज में इस वर्ग को सम्मान की दृष्टि से देखा जा रहा था वहाँ इनकी यह दुर्दशा कैसे? "हिजड़ों की खराब स्थिति का कारण सीधे-सीधे ब्रिटिश शासन को माना जाना चाहिए क्योंकि उससे पहले के भारतीय साहित्य में कहीं हिजड़ों के पृथक् समाज का उल्लेख नहीं मिलता। "

समकालीन हिंदी साहित्य में हमें आरंभ में किन्नरों का वर्णन 'लौंडेबाज, पतलीकमर वाले लड़के के रूप में मिलता है। किन्नर समुदाय पर प्रथम कहानी 'सुभाष अखिल' दरमियाना (1980) लिखते हैं। वहीं नीरजा माधव इस समुदाय पर प्रथम उपन्यास 'यमदीप' (2002) में लिखती हैं जिसमें उन्होंने इस समुदाय के मार्मिक पक्षों को हमारे समक्ष उजागर किया है। पगली प्रसव पीड़ा से तड़प रही है, हमारे समाज का मानवीय पक्ष देखिए। वे इसकी पीड़ा का आस्वादन ले रहे हैं, उसके दर्शक बने हुए हैं। इस समय यही किन्नर समुदाय इसकी पीड़ा को समझते हैं। नाजबीबी कहती हैं—"अब कोई पूछनहार नहीं इसका तो क्या हम भी छोड़ जाएंगे? अरे हम हिंजडे हैं, ...हिंजडे.. इंसान हैं क्या जो मुँह फेर लें। " 'चित्रा मुद्गल' का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' (2016) में आता है। यह उपन्यास इस विमर्श में एक नया आयाम स्थापित करता है। ये उपन्यास बताता है कि किन्नर समुदाय की समस्या सामाजिक तो है ही, साथ ही साथ राजनीतिक प्रतिनिधियों ने भी इस समुदाय का शोषण किया है। बिन्नी माँ से चिट्ठियों के माध्यम से अपनी पीड़ा अभिव्यक्त करता है। उसे अपने माता—पिता से शिकायत है। "तूने, मेरी बा तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथों मासूम बकरी सा सौंप दिया। मेरी सुरक्षा के लिए कानूनी कार्यवाही क्यों नहीं की? मनसुख भाई जैसे पुलिस अधीक्षक पापा के गहरे दोस्त के रहते हुए? जो अपने आप मुझे बचाने के लिए आ तो नहीं सकते थे। मेरे आंगिक दोष की बात पप्पा ने उनसे बांटी जो नहीं होगी वरना यह मुझे बचाने जरूर आ जाते। बाऽऽ... बाऽऽ बाऽऽ क्यों वह अनर्थ हो जाने दिया तूने जिसके लिए मैं दोषी नहीं था।" महेंद्र भीष्म 'मैं पायल' (2016) में, व 'किन्नर कथा' (2020) में, निर्मला भुराड़िया 'गुलाममंडी' (2016) में, सुभाष अखिल 'दरमियाना' (2018) में, प्रदीप सौरम 'तीसरी ताली (2018) में, भगवंत अनमोल 'जिंदगी 50-50 (2017) में किन्नर समुदाय की दयनीय स्थिति का वर्णन हमारे समक्ष करते हैं। चित्रा मुद्गल इनकी पीड़ा को रेखांकित करते हुए कहती हैं कि "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वहीं निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो। तुम्हारे हाथ पैर नहीं हैं। हैं, हैं, हैं, सब वैसा ही है, जैसे औरों के हैं। यौनसुख लेने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं! सोचो।"

इसके साथ ही डॉ. राही मासूम रजा की 'खलीक अहमद बुआ', सलाम बिन रजाक की 'बीच के लोग', कुसुम अंसल की 'ईमुर्दन का गाँव, महेंद्र भीष्म की 'त्रासदी', श्रीकृष्ण सैनी की 'हिजड़ा', किरन सिंह की 'संझा' कहानी किन्नर समाज की त्रासदी को सामने लाती है। वाङ्मय पत्रिका ने जनवरी-मार्च, 2017 में किन्नरों पर लिखित हिंदी कहानियों का विशेषांक निकाला। कुछ कविताएँ भी लिखी गयी सपना मांगलिक की 'हिजड़े की व्यथा, गीतिका वेदिका की 'अधूरी देह',

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी को 'यदि होता किन्नर नरेश में' आदि। हिंदी साहित्य में किन्नर समाज की पहली आत्मकथा कित्रर लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी 'मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी!" (2015) द्वारा प्रकाश में लायी गयी। यहाँ लक्ष्मी अपने समुदाय को प्रगतिशील बनाने का आह्वान करती है वह कहती है- "मुझे प्रोग्रेसिव हिजड़ा होना है... और सिर्फ मैं ही नहीं अपनी पूरी कम्युनिटी को मुझे प्रोग्रेसिव बनाना है......। "

वहीं 2021 में रमा पांडेय ने 'लल्लन मिस' नाम से नाटक लिखा। यहाँ रमा पांडेय जी किन्नरों के विषय में वहीं प्रश्न उठाती हैं जिस प्रश्न को हम बार-बार उठा रहे हैं अस्तित्व का प्रश्न। इसी अस्तित्व के प्रश्न को रेखांकित करते हुए रमा पांडेय लिखती हैं—"हिजड़ों में जुबान की नफासत या शालीन संस्कार होना आज आपको अटपटी बात लगती है लेकिन एक जमाने में हिजड़ों या किन्नरों को संस्कृति का गढ़ कहा जाता था। स्वयं ऋग्वेद की ऋचा में ऐसा कहा गया है कि ये शिव के गणों में से एक थे। फिर ये किन्नर से हिजड़े कैसे होते चले गये, खुसरे कैसे कहलाये जाने लगे। "

हिंदी साहित्य में किन्नर समाज अब धीरे-धीरे प्रकाश में आ रहा है परन्तु अभी भी उसे उस रूप में स्वीकार्यता नहीं मिली, जिस रूप में मिलनी चाहिए। चित्रा मुद्गल कहती हैं—"निर्मला' की तरह उन पर लिखा गया होता तो आज थर्ड जेंडर की स्थिति बहुत अलग होती। यहाँ साहित्यकारों ने अपने कर्त्तव्य को समझा ही नहीं। अभी भी दोनों मुद्दों पर जमीनी काम बाकी है। सिर्फ लिखकर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं मान लेना चाहिए, जमीन पर उतरिए।"

निष्कर्ष : किन्नर विमर्श हिंदी साहित्य में धीरे-धीरे अपनी पहचान बना रहा है, लेकिन अभी भी इसे व्यापक स्वीकृति और गहन अध्ययन की आवश्यकता है। ऐतिहासिक रूप से किन्नर समुदाय को भारतीय संस्कृति और ग्रंथों में स्थान मिला था, लेकिन औपनिवेशिक काल में उनके प्रति नकारात्मक धारणाएँ बढ़ीं। हाल के वर्षों में संवैधानिक सुधारों और साहित्यिक अभिव्यक्तियों के माध्यम से उनकी अस्मिता को पुनः स्वीकार्यता मिलने लगी है।

समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नरों की पीड़ा, संघर्ष और अधिकारों को उजागर करने वाले उपन्यास, कहानियाँ, आत्मकथाएँ और नाटक सामने आए हैं, जो समाज को इस विषय पर सोचने और बदलाव लाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। हालाँकि, साहित्यकार चित्रा मुद्गल का मत सही प्रतीत होता है कि केवल लेखन पर्याप्त नहीं है इस विमर्श को सामाजिक स्तर पर भी अपनाने की आवश्यकता है। जब तक किन्नर समुदाय को समान अधिकार, सम्मान और सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती, तब तक यह विमर्श अधूरा रहेगा।

संदर्भ सूचीः

1. के. वनजा, क्वीर विमर्शः वाणी प्रकाशन, पृ. 150
2. पुनीत विसारिया, किन्नर विमर्श
3. प्रो. मेराज अहमद, किन्नर, थर्ड जेंडर अनुदित कहानियाँ, सं. डॉ. एम. फीरोज खान, अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ. 8
4. Susan Stryker; Transgender hisotry, Da Capa Press, 2009.
5. शीला डागा, किन्नरगाथा, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2020, पृ. 32
6. नीरजा माधव, यमदीप, पृ. 12
7. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बाक्स नं. 203, नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2019, पृ. 13
8. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203, नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ. 50
9. लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी!, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण 2021, पृ. 15
10. रमा पांडेय, लल्लन मिश्र, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2021
11. चित्रा मुद्गल से साक्षात्कार, प्रियंका नारायण, किन्नर सेक्स और सामाजिक स्वीकार्यता, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2021

शोधार्थी
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

संत काव्य की क्रांति-चेतना और तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य

सोनाली

शोध सार : भक्ति साहित्य का उद्‌भव दक्षिण भारत में हुआ। भक्ति साहित्य से ही संत साहित्य का उद्‌भव हुआ। संत कवियों की वैचारिकी में हिंदू धर्म के अहिंसावाद, मुस्लिम धर्म के एकेश्वरवाद, बौद्ध, सिद्ध, और नाथ आदि के मतों का मिश्रण दिखाई पड़ता है। संतों ने जो सामाजिक क्रांति की, उसका प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ा, जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान समय में भी विद्यमान है। तत्कालीन समाज में जो बुराईयाँ थीं, उसकी आलोचना करके इन निर्गुण संतों ने समाज में निर्गुण भक्ति के मार्ग का संदेश दिया। भक्तिकालीन निर्गुण संत समाज अपने सीमित संसाधनों में जीवन-यापन करता रहा, कोई कपड़ा बुनता रहा, तो कोई जूतियाँ गाँठता रहा, कोई बाल काटकर अपनी जीविका चलाता रहा। किन्तु किसी ने भी राजनीतिक प्रश्रय स्वीकार नहीं किया और न ही राजनीतिक सत्ता के समक्ष नतमस्तक हुए। जबकि संतों का यह आंदोलन नैसर्गिक रूप से अखिल भारतीय स्तर पर संचालित हो रहा था। मध्य भारत में संत रैदास, कबीर, पंजाब में गुरु नानक, महाराष्ट्र में नामदेव इत्यादि सामाजिक परिवर्तन की इस मशाल को उठाये हुए थे। वर्ण व्यवस्था आधारित समाज में केवल सत्ताधारी और उच्च वर्ग के समाज को ही भक्ति का अधिकार था, किन्तु निर्गुण भक्त संतों ने समाज के अंतिम व्यक्ति को भी यह अधिकार प्रदान करने का प्रयास किया। कुरीतियों, आडंबरों के शोधन और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में निर्गुण संत कवियों का बड़ा योगदान है।

बीजशब्द : आध्यात्मिकता, भारतीय समाज, राष्ट्रीय चेतना, निर्गुण काव्यधारा, सामाजिक चेतना।

मूल आलेख : भक्ति साहित्य का उद्‌भव दक्षिण भारत में हुआ। भक्ति साहित्य से ही संत साहित्य का उद्‌भव माना जाता है। संत कवियों की वैचारिकी में हिंदू धर्म के अहिंसावाद, मुस्लिम धर्म के एकेश्वरवाद, बौद्ध, सिद्ध और नाथ आदि के मतों का मिश्रण दिखाई पड़ता है। संतों ने जो सामाजिक क्रांति की उसका प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ा, जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान समय में भी विद्यमान है। तत्कालीन समाज में जो बुराइयाँ थीं, उसकी आलोचना करके इन निर्गुण संतों ने समाज में निर्गुण भक्ति के मार्ग को जन-जन के लिए सुलभ कर दिया। भक्तिकालीन निर्गुण संत समाज अपने सीमित संसाधनों में ही जीवन-यापन करता रहा, अधिक से अधिक लेने की चाह उनके भीतर कभी नहीं रही, वे अपनी मेहनत पर विश्वास करते रहे। कोई कपड़ा बुनता रहा, तो कोई जूतियाँ गाँठता रहा। कोई बाल काटकर अपनी जीविका चलाता रहा। इसी प्रकार भारतीय संत परंपरा के अधिकांश संत गृहस्थ जीवन के दायित्व का निर्वाह करते हुए ईश्वर की भक्ति कर मोक्ष पद के अधिकारी बने। श्री वियोगी हरि के शब्दों में–''भारतीय संत परंपरा ने बार-बार इस भ्रांति का निवारण किया है कि आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी केवल गृह त्यागी का है। गृहस्थ धर्मी तत्वज्ञान प्राप्त करने का किसी भी अंश में कम अधिकारी नहीं है। गृहस्थाश्रम को तीनों आश्रमों का 'आश्रय स्थान' कहा गया है। स्वधर्म का यथोचित पालन करता हुआ गृहस्थधर्मी, बिना संन्यास लिए परम पद प्राप्त कर सकता है।'' उस समय राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए किसी भी संत कवि ने राजनीतिक प्रश्रय स्वीकार नहीं किया और न ही राजनीतिक सत्ता के समक्ष नतमस्तक ही हुए। जबकि संतों का यह आंदोलन नैसर्गिक रूप से अखिल भारतीय स्तर पर संचालित हो रहा था। मध्य भारत में संत कवि रैदास, कबीरदास, पंजाब में गुरु नानक, महाराष्ट्र में नामदेव, दादू, सुंदरदास, रविदास, संत पीपा, संत चरणदास, रज्जब इत्यादि सामाजिक परिवर्तन की इस मशाल को उठाये हुए आगे बढ़ते रहे। उस समय वर्ण व्यवस्था आधारित समाज में केवल सत्ताधारी और उच्च वर्ग के समाज को ही भक्ति का अधिकार था, किंतु निर्गुण भक्त संतों ने समाज के अंतिम व्यक्ति को भी यह अधिकार प्रदान कराने का भरसक प्रयास किया। इस प्रकार कुरीतियों, आडंबरों के शोधन और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में निर्गुण संत कवियों का विशेष योगदान है।

भारतीय समाज और साहित्य में संतों की सत्ता और शक्ति 'हरिकथा' के अनुरूप ही अनंत, अनुपम और अकथ मानी जा सकती है। संतों ने अपने समय में मनुष्य को महानता के दर्शन कराए, उन्होंने जन समाज को आत्मा की सुंदरता को देखने-परखने का मार्ग दिखाया और समाज को निरंतर नयी चेतना से स्फुरित करते रहे। इस कारण से संत कवियों को भारतीय संस्कृति का रक्षक, प्रहरी और जीवंत प्रतिनिधि माना जा सकता है।

संत काव्य भारतीय साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विचारधारा मानी जा सकती है। जिसमें राजनीतिक, समाज सुधार, आध्यात्मिकता और सामाजिक चेतना का संगम मिलता है, संत काव्य में क्रांति-चेतना विशेष रूप से दिखाई देती है, जो अपने समय के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक ढाँचे के विरोध में उठने वाली आवाज के रूप में उभरती है। यह चेतना केवल भक्ति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि एक नए समाज की स्थापना की आधारशिला रखती है।

संत काव्यधारा के राजनीतिक, सामाजिक परिदृश्य को निम्न रूप से समझा जा सकता है–

इस समय हिंदू और मुसलमान धर्म के अनुयायियों के बीच टकराव और वैमनस्य का माहौल चारों ओर विद्यमान हो गया था। इस्लाम के प्रचार और हिंदू धर्म की परंपराओं के बीच संघर्ष ने धार्मिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा दिया। समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पाखंडियों का संत कवियों ने खंडन किया। हिंदुओं और मुसलमानों को फटकारते हुए कबीरदास ने कहा—

अरे इन दोहुन राह न पाई।
हिंदू अपनी करें बड़ाई, गागर छुअन न देंई।
वेश्या के पांयन तर सोवैं, यह देखौ हिन्दुआई।।
मुसलमान के पीर औलिया, मुर्गा-मुर्गी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं, घर ही में करें सगाई।।

उसी प्रकार से संत दादू की दृष्टि में भी हिंदू और मुसलमान दो नहीं हैं, क्योंकि दोनों को एक ही तत्त्व ने बनाया है इस एक तत्त्व को पहचानना आवश्यक है, जाति और धर्म को नहीं। कवि कहते हैं—

हिंदू तुर्क न जाणों दोई।
साँई सबनि का सोई है रे, और न दूजा देखौं कोई।।

संत दादू अहंकार त्याग और सबसे प्रेम में व्यवहार करने का उपदेश देते हैं। उनका यह उपदेश हिंदू-मुसलमान आदि सभी के लिए समान रूप से है—

वाद-विवाद काहु सो नाहीं, मांहि जगत थे न्यारा
समदृष्टी सुभाइ सहाम में, आपहि आप बिचारा॥

संत कबीरदास ने मूर्ति पूजा, माला, तिलक, छापा, तीर्थयात्रा, गंगा स्नान, व्रत-उपवास, हिंसा, जाति-प्रथा, ऊँच-नीच की भावना आदि का खुलकर खंडन किया है। जैसे—

1. *माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर।*
   कर का मनका डारि के, मन का मनका फेर।।
2. *ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊंच न होय।*
   सुबरन कलश सुरा भरा, साधू निन्दत सोय।।
3. *पाहन पूजे हरि मिलें, तौ मैं पूजूं पहार।*
   ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार।।
4. *कंकड़-पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय,*
   ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।

कबीरदास की भाँति संत दरिया साहिब कहते हैं—

पाखंड सै प्रभु मिलै न काहू।
कहौं सुभाव साँच पतिआहू।।

कवि के विचारानुसार जब तक हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं होता और विरह की पीड़ा नहीं उभरती, तब तक केवल विविध बहुमुखी धर्म-कार्य तथा नियमों और व्रतों का पालन करने से परमात्मा नहीं मिल सकता—

जब लगि बिरहू ने उपजे, हिये न उपजे प्रेम।
तब लगि हाथ न आवहीं, धर्म किये व्रत नेम॥

कवि कबीरदास शास्त्र पर नहीं, आँखों देखी बात पर विश्वास करते हैं—

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राखा उरझोय रे।।

इसी प्रकार से संत रज्जब भी पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा विवेक, जागृति का समर्थन करते हैं। उन्होंने कागजों पर लिखी पुस्तकों से प्रेरणा नहीं लेकर स्वयं से स्व-चिंतन करने की प्रेरणा दी है। वे कहते हैं समूची पृथ्वी ही पुस्तक बनकर हमारे समक्ष है। कवि रज्जब मानते हैं कि आत्मानुभव से उस परमानुभूति को जो प्राप्त कर लेता है, उसके लिए फिर शास्त्र आदि की मर्यादा शेष नहीं रह जाती ---

कागद मसि के आषिरौं, पाठिक प्रान अनेक।
रज्जब पुस्तग प्यंड का, कोई पढेंगा एक।।

जीव-हत्या का विरोध—कबीरदास ने धर्म के नाम पर व्याप्त हिंसा का विरोध किया है। उन्होंने अपने जीवन अनुभव के माध्यम से सामाजिक विषमता और हिंसक प्रवृत्तियों पर अत्यंत साहस एवं निर्भीकता से प्रहार करते हुए कहा है—

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात हैं, तिनके कौन हवाल।।

संत कबीरदास धर्मगुरु थे, किंतु उनकी प्रतिष्ठा एक समाज सुधारक के रूप में अधिक है। कबीर का संत-मन चाहे कितना ही निर्गुणपरक है, पर उनका आत्मनिष्ठ मन सामाजिक स्थितियों, जन-जीवन की दुर्दशाओं, शोषण, आतंक, पाखंड, रूढ़िवाद, मिथ्यावाद जैसी प्रवृत्तियों के विरोध में खड़ा है। उनमें सामाजिक चेतना, जनवादी चेतना-सी प्रतिभासित होती है।

देश की राजनीतिक सत्ता, समाज की सामाजिक अवस्था को बहुत गहराई के साथ प्रभावित करती है। जब राजनीतिक स्थिति संतुलित नहीं होती है, तब सामाजिक व्यवस्था भी व्यवस्थित नहीं रह पाती। उस समय के समाज को दो वर्गों में बँटा हुआ देखा जा सकता है—एक वर्ग था हिंदुओं का और दूसरा वर्ग मुसलमानों का। हिंदुओं के मन में एक हारी हुई जाति की निराशा निहित थी। क्योंकि मुगलों का आधिपत्य चारों तरफ फैल गया था। हिंदुओं को किसी प्रकार के सामाजिक और राजनीतिक अधिकार नहीं प्राप्त थे। इस कारण अधिकारहीन हिंदू जाति में साहस और शक्ति की समाप्ति हो चुकी थी।

जिसके पास थोड़ी-सी सेना एकत्रित हो जाती, वही शासक बन जाता था। उसे सामान्य जन की कोई चिंता नहीं रहती थी। प्रजा की गाढ़ी कमाई को वह शासक अपनी विलासिता पर, पानी की तरह खर्च करता था। कवि जायसी ने लिखा है—

बरनौ राज मंदिर रनिवासू। अछरिन्ह भरा जानु कबिलासू।।
सोरह सहस पदुमिनी रानी। एक-एक ते रूप बखानी।।
अति सुरूप औ अति सुकुवारा। पान फूल के रहहिं अधारा॥

जनता का जीवन कष्टमय था। आम जनता का जीवन शासक वर्ग की सेवा में समर्पित होता था। इनसे पूरी की पूरी बेगार ली जाती थी। कर लेने में भी किसी प्रकार की उदारता का व्यवहार नहीं होता था। परिवार के सारे सदस्यों द्वारा रोजी-रोटी कमाने के बावजूद भी पूरे परिवार का पेट नहीं भर पाता था। संत कवियों ने तत्कालीन सत्ता और शोषणकारी व्यवस्थाओं के खिलाफ अपनी आवाज उठाई और जनमानस को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से जागृत किया। तत्कालीन समाज की राजनीतिक व्यवस्था की भयंकर स्थिति को देखकर संत कवि गुरु नानक जी ने मुगल राजा बाबर के आक्रमण और अत्याचार को दर्शाने के लिए स्पष्ट घोषणा की—

खुरासान खसमाना किया, हिंदुस्तान डराया।

इस कविता में संत कवि ने राष्ट्रीय चेतना और अस्मिता की अभिव्यक्ति की है और बाबर के जुल्म के विरुद्ध लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगाई। गुरु नानक ने स्पष्ट कहा—'बाबर तू जाबर'। गुरु नानक ने तत्कालीन भारतीयों की पीड़ा को दर्शाते हुए लिखा है कि बाबर ने हिंदुस्तान में अपना डर फैलाया और सामूहिक नरसंहार किया, भारत की बेटियों का अपहरण कर उनका दूसरी जगह विवाह करा दिया। इस प्रकार बाबर ने भारत में व्यापक विनाश किया। कवि ने ऐतिहासिक घटनाओं को साक्षी कर अपनी प्रतिक्रिया कविताओं में अभिव्यक्त की। संत कवि गुरुनानक ने अपने सामाजिक दायित्व को समझते हुए क्रूर राजा बाबर के अन्यायों के विरुद्ध आवाज उठाई और सामाजिक चेतना को जगाया। साथ में एक सामाजिक चेतावनी भी दी कि इस प्रकार की अमानवीयता और अत्याचार अंततः विनाशकारी ही होते हैं। क्रूर बाबर के विनाश को देखते हुए, गुरु नानक देव कहते हैं—तेंकी दर्द ना आया—हे ईश्वर! जालिम बाबर ने इतने भयंकर अत्याचार किए, तुझे दर्द महसूस नहीं हुआ।

गुरु नानक जी की यह कविता मात्र एक ऐतिहासिक अभिलेख नहीं, बल्कि उस समय की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का एक जीवंत चित्रण भी प्रस्तुत करती है। एक विद्वान रमेश चंद्र मिश्र के शब्दों में—''गुरु नानक ने प्रवृत्ति मार्ग में निवृत्ति तत्त्व की प्राण प्रतिष्ठा करके जीवन के लिए उपयोगी बनाया है। इसीलिए वे जीवन भर अपनी निवृत्ति चेतना को प्रवृत्ति मूलकता में समाहित करते रहे। गुरु नानक ने दृढ़ आस्था और विश्वास का जीवन जीना सिखाया है। इसी विश्वास के बल पर उन्होंने क्रूर वृत्ति वाले बाबर जैसे आक्रमणकारी के अत्याचारों की पुरजोर निंदा की और जाति-पाति की संकीर्णता को तोड़ा।'' संत कवियों के अनुसार राम-रहीम में कोई भेद नहीं है। अतः हिंदू-मुसलमान भी एक दूसरे के भाई-भाई हैं, शत्रु नहीं। कवि के शब्द हैं—एकै आत्मा एक रंग सभ महि एकइ कोई। समाज को वर्ग-संघर्ष, वर्ग-शोषण, प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा की भावना से ऊपर उठकर समता एवं एकता का उपदेश दिया।

मुगलकाल में जो इतिहास लिखा गया वह प्रमुख रूप से युद्ध और विजयों का इतिहास है। क्योंकि उस समय व्यक्तिगत जीवन का कोई महत्व नहीं था। मुगलकालीन समाज में अनेक बुराइयाँ प्रचलित थीं—सती प्रथा, बहु विवाह, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, पर्दा प्रथा, कन्या जन्म को अशुभ मानना आदि। इन प्रथाओं ने प्रमुख रूप से स्त्रियों की दशा को दयनीय बना दिया। क्योंकि हमारे पुरुष प्रधान समाज ने स्त्री के लिए कुछ ऐसे विधान बनाए जिससे स्वयं पुरुष के अधिकारों में बढ़ोतरी हो सके। अपने समाज को कवि रहीमदास ने बड़े गौर से देखा और समय की सभी विसंगतियों का वर्णन अपने दोहों के माध्यम से किया है। उन्होंने समय के महत्त्व को स्थापित करते हुए लिखा—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करेगा कब।।

इस दोहे का अर्थ है समाज में चाहे एकजुटता लाने की बात हो, चाहे अन्याय के विरुध्द लड़ने की चाह हो, उसके लिये हमें अपना कर्म आज ही करना होगा, वरना हम पिछड़ जायेंगे। रहीमदास मानते हैं कि समय रहते व्यक्ति को सचेत हो जाना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक क्षण मूल्यवान है जिस प्रकार कुल्हाड़ी काठ को काटकर दो टुकड़ों में बाँट देती है, उसी प्रकार समय की चूक जीवन की सफलता को खंडित कर देती है और उसके बाद केवल पश्चाताप ही हाथ लगता है। व्यर्थ समय गंवाने की गलती से उत्पन्न गहरी वेदना सदैव व्यक्ति को दुखी करती रहती है—

समय-लाभ सम लाभ नहि, समय-चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय-चुक की हूक।।

रहीमदास मनुष्य को कर्म करते रहने की प्रेरणा देते हैं और कहते हैं कि कर्म करते समय फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए—

निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाव न अपने हाथ।।

उसी प्रकार से प्रेम और अखंडता को स्वीकार करते हुए रहीम ने लिखा है कि—

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे पे फिर ना जुरे, जुरे गाँठ परी जाय।।

रहीम के दोहे मानवीय मूल्यों को प्रोत्साहित करते हैं, पारस्परिक संबंधों के महत्त्व को दर्शाते हैं और सामाजिक एकता को बढ़ावा देते हैं। कठिन परिस्थितियों में धैर्य रखने का संदेश देती रहीमजी की ये पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं—

रहिमन चुप हो बैठिये, देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं देर।।

इस दोहे से कवि ने एक मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शक की भूमिका निभाई है। कवि में सामाजिक संवेदनशीलता है। उनकी पंक्तियाँ हैं—

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार।।

इसमें संबंधों को पुनः जीवित करने का संदेश है। कवि आपसी मतभेदों को सुलझाने का परामर्श देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी कविताओं में समाज को मजबूत करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। रहीम की कविता पाठक को आत्मचिंतन, आत्मविश्वास और नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूक करती है और समाज को शिष्टाचार का पाठ पढ़ाती है। कवि के विचार में सज्जन द्वारा दोषरहित व्यवहार ही शिष्टाचार है, शिष्टाचार-परिपालन द्वारा समाज हित संभव है। शिष्ट व्यक्ति कभी भी अपनी महानता की प्रशंसा नहीं करता और न कभी अपने महत्व की शेखी बघारता है। कवि रहीम कहते हैं कि ---

बड़े-बड़ाई ना करैं, बडो़ न बोलें बोल।
रहिमन हीरा कब कहैं, लाख टका मेरो मोल।।

निष्कर्ष : संत काव्यधारा उस युग की राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक अन्याय और सांप्रदायिक टकराव के बीच उभरी। यह धारा जनता के बीच शांति, समानता और आध्यात्मिकता का संदेश लेकर आई और तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के प्रति एक वैचारिक प्रतिक्रिया थी।

संदर्भ सूचीः

1. कबीर आधुनिक संदर्भ में; डॉ. राहुल, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

2. कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना; डॉ. सुनील कुलकर्णी, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2009
3. कबीर वाणी में काव्य रूढ़ियां; डॉ. राकेश कुमार बब्बर, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011
4. संत कवि कबीर का समाज दर्शन; डॉ. रजनी बाला अग्रवाल, खामा पब्लिशर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007
5. हिंदी साहित्य का इतिहास; डॉ. कमल नारायण टंडन/डॉ. श्रीमती पल्लवी टंडन, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
6. रहीम के काव्य में समाज बोध; डॉ. विनीता रानी, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015
7. पंजाब में रचित हिंदी साहित्य का इतिहास; डॉ. मनमोहन सहगल, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
8. मध्यकालीन संत कवि; डॉ. नवीन नंदवाना, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, प्रथम संस्करण 2023
9. संत-परंपरा का भविष्य; आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय भंडार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1985
10. मध्यकालीन संत साहित्य में सामाजिक समरसता का स्वर; डॉ. विनीता कुमारी, साहित्य सहकार, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013

शोधार्थी
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

इंटरनेट से साभार

आदिकालीन और मध्यकालीन हिंदी काव्य में अभिव्यक्त मानवीय मूल्य

मनीष कुमार

मानव मूल्य का स्वरूप

मानव मूल्य किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र के चित्रांकन का प्रमुख आधार होते हैं। मूल्य अच्छे या बुरे नहीं होते बल्कि वे किसी व्यक्ति, वर्ग या समुदाय के हितार्थ हैं उन्हीं से मूल्यों का भी मूल्य निर्धारण होता है। इस दृष्टि से मूल्य शाश्वत व सनातन होते हैं। बस, देशकालगत परिस्थितियों के अनुसार उपयोगी और अनुपयोगी होने के चलते समाज में लुप्त या प्रकट होते रहते है क्योंकि ''मूल्य वैयक्तिक एवं वर्गीय मान्यताओं, आवश्यकताओं एवं रुचियों के अनुरूप महत्त्वपूर्ण होते हैं।''[1] मूल्यों के अभाव में मनुष्य, ''मनुष्य की काया में होकर भी मनुष्य नहीं है—वह पशु है। दनुज से मनुज के भेद का आधार मानव-मूल्यों पर आश्रित है। अतः मानव मूल्य ही मनुष्य की पहचान है।''[2] इसलिए कोई भी मानव मनुष्यता को ग्रहण करने के लिए व कोई भी राष्ट्र सद्चरित्रवान नागरिकों के निर्माण के लिए उन व्यक्तिगत, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देता है जो राष्ट्र के विकास के अनुकूल हो। यह कार्य कभी धर्म या अध्यात्म के सहारे होता था तो कभी कला और साहित्य के माध्यम से। आधुनिक समाज यह कार्य शिक्षा नीति के माध्यम से करता है।

मानव मूल्यों का सृजक स्वयं मनुष्य ही है। यह उसके चिंतन-मनन का परिणाम है। मूल्यों की सृजना करके वह अपने उद्देश्य, लक्ष्यों और आवश्यकतों की पूर्ति करता था। परंतु, पारम्परिक भाव भूमि का चिंतक धर्म परायण होता था। इसलिए 'अहं की भावना' का लोप कहें या राजनीति जागरूकता अपने द्वारा निर्मित मूल्यों का सृजक कौन है? इसके संदर्भ में यही मत रखता था कि ''निखिल सृष्टि और इतिहास-क्रम का नियंता किसी मानवोपरि अलौकिक सत्ता को माना जाता था। समस्त मूल्यों का स्रोत वही था और मनुष्य की एकमात्र सार्थकता यही थी कि वह अधिक से अधिक उस सत्ता से तादात्मय स्थापित करने की चेष्टा करे।''[3] इस तादात्मय करने की चेष्टा में नर में नारायणत्त्व होने की भी चेष्टा शामिल होती थी। सफलता नर में नारायणत्त्व को स्थापित करती थी तो प्रयास भर से मनुष्य मनुष्यित को ग्रहण अवश्य करता था। इस पूरी प्रक्रिया में अनादिकाल से मूल्यों का सृजन होता आ रहा है, जिनको विद्वानों ने वर्गीकृत करने का प्रयास किया। जिसमें मूल्यों का वर्गीकरण प्राकृतिक मूल्य, विस्तारक मूल्य, सत्यं शिवं सुंदरम् अर्थात् कल्याण परक मूल्य, उदात्त मूल्य और आधुनिक मूल्य किया गया है।

असंख्य मूल्यों के व्याप्त होने पर भी समाज उन्हीं मूल्यों को स्वीकृत करता था, जो उसके व्यक्तिगत, चारित्रिक और नैतिक विकास में सहायक सिद्ध होते थे। चाहे वह मूल्य किसी भी व्यक्ति, समाज, वर्ग या राष्ट्र से संबंध क्यों न रखता हो। मूल्यों के ग्रहण के संदर्भ में मुख्यतः भारतीय समाज उदार रहा है।

साहित्य और मानव मूल्यों का अंतर्संबंध

साहित्य मानव मूल्यों का सृजक और प्रचारक दोनों रहा है। आधुनिक युग में मूल्यों के संदर्भ में परिवर्तित दृष्टिकोण होने लगा था, क्योंकि आधुनिक दृष्टि के अनुसार मानव यह जानने लगा था कि मूल्यों का सृजक मनुष्य ही है और ''मानववाद के उदयकाल में ईश्वर जैसी किसी मानवोपरि सत्ता या उसके प्रतिनिधि धर्माचार्यों को नैतिक मूल्यों का अधिनायक न मानकर मनुष्य को ही इन मूल्यों का विधायक मानने की प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी।''[4] जिसके पश्चात् यह अवधारणा निर्मित होने लगी थी कि मूल्यों का सृजन विशेष जाति, धर्म, लिंग या वर्ग के हितार्थ के लिए होता था और सत्ता वर्ग इन मूल्यों को लोक कल्याण के लिए उपयोगी बताकर अलग-अलग माध्यमों से प्रचारित करवाता था, जिसमें साहित्य भी एक माध्यम था। इस अवधारणा के कारण साहित्य और मूल्यों का अंतर्संबंध क्या है? इस पर चिंतन-मनन होने लगा। इलियट, रिचर्ड्सन, मैथ्यू ऑर्नल्ड और धर्मवीर भारती ने इस संदर्भ में प्रकाश डाला है।

मूल्यों के प्रेरक सृजक तत्त्व धर्म, दर्शन और आधुनिक युग में विज्ञान रहे हैं। साहित्य भी इन तत्त्वों से प्रभावित होता रहा है। किंतु, प्रभावित होते हुए भी अपना अस्तित्व भिन्न बनाये रखा है। क्योंकि, विज्ञान जीवन के एकांगी ऐंद्रिय पक्ष को ही प्रभावित करता है। इसलिए भौतिक मूल्यों का अधिकांश सृजन होता है। परंतु, मानव जीवन के दूसरे पक्ष ''सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों से संबंधित है। इस दूसरे पक्ष की पुष्टि विज्ञान के द्वारा नहीं, अपितु कला और काव्य के द्वारा ही संभव है।''[5] इसलिए प्रत्येक युग का साहित्य असंख्य मूल्यों के मध्य नैतिक, व्यक्तिगत और सांस्कृतिक मूल्यों का अनुसंधान करता है। क्योंकि, ''उच्च सांस्कृतिक मूल्यों के अभाव में मनुष्य पशुता की ओर अग्रसर होता है। जिसके फलस्वरूप मानव समाज में पारस्परिक द्वंद्व, संघर्ष, युद्ध एवं हिंसा की स्थितियों का प्रादुर्भाव होगा।''[6] इसलिए मैथ्यू ऑर्नल्ड का यह कहना सत्य है कि ''पुनः सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना की जाये।''[7] यह दायित्व कौन ग्रहण करेगा? इसके संदर्भ में भी स्पष्ट मत रखते हैं कि ''कविता ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की जा सकती है।''[8]

इस चिंतन को इलियट आगे बढ़ाते हैं और कहते हैं कि ''परंपरा में, किसी भी युग की सांस्कृतिक चेतना में, दो प्रकार के तत्त्व होते हैं। एक वे जो देश और काल की सीमाओं से आबद्ध होते हैं, उन्हीं सीमाओं द्वारा निर्धारित होते है तथा वे शाश्वत एवं सनातन होते हैं।''[9] यही दृष्टि साहित्यकार के पास होती है। वह युगानुरूप मूल्यों का ग्रहण और विस्तार भी करता है। जिसके चलते युग परिवर्तन के पश्चात् युगानुरूप सृजित मूल्य विलुप्त हो जाते हैं तो शाश्वत् मूल्य विस्तार के कारण अगली पीढ़ी को विरासत के रूप में मिल जाते हैं। क्योंकि ''कलाकार का काम तो उन अनुभूतियों को अंकित कर देना एवं चिर स्थायी बना देना होता है, जिन्हें वह सबसे अधिक मूल्यवान समझता।''[10] तथा साहित्यकार की दृष्टि में वही मूल्यवान होता है जो व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक दृष्टि से उन्नति करता है। इसलिए साहित्यकार अधिक मूल्यवान मूल्यों को ही अपने पाठकों और अगली पीढ़ी को संप्रेषित करता है। इसलिए, डॉ. धर्मवीर भारती की हिंदी समीक्षकों के ऊपर की गई टिप्पणी सारगर्भित है जिसमें वे कहते हैं कि ''आज तक सांस्कृतिक इतिहास में कौन-से मानवीय मूल्य ऐसे हैं जो अपेक्षाकृत स्थायी और चिरमर्मस्पर्शी है और सामयिक समस्याओं के समाधान की सापेक्षता में उनका क्या महत्त्व है—इन समस्त प्रश्नों पर या तो हिंदी-समीक्षक ने विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी, या उसने इनके विषय में कुछ एकांगी, अधूरी और अपरिपक्व मान्यताओं को ही समीक्षा के वैज्ञानिक मापदंड समझने की भूल कर डाली।''[11]

उपरोक्त चिंतन-मनन के पश्चात् कह सकते हैं कि मूल्यों के संदर्भ में साहित्य की भूमिका निर्माणकर्त्ता, अनुसंधानतकर्ता, संशोधन, विस्तारक और समाज विरोधी मूल्यों का विरोध करना इत्यादि रही है। क्योंकि, साहित्यकार युगानुरूप मूल्यों का निर्माण करता है और आवश्यक नैतिक, सांस्कृतिक व व्यक्तिगत उन्नति से संबंधित मूल्यों का अनुसंधान भी करता है। युग और समय की द्रूत गति में समाज पीछे न छूट जाये इसके लिए शाश्वत-सनातन मूल्यों से इत्तर पारम्परिक मूल्यों को संशोधित व परिवर्तित करता है। यही नहीं इन मूल्यों का विस्तार भी करता है।

हिंदी कवियों ने इन भूमिकाओं को आदिकाल से ही आत्मसात किया। जब-जब समाज को आदर्शों की आवश्यकता हुई तब-तब ऐतिहासिक और पौराणिक आदर्शों का चित्रांकन महाकाव्यों के माध्यम से करके आदर्शों की स्थापना की और प्रकारांतर से मूल्यों की भी। इस तथ्य का दिग्दर्शन आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकालीन काव्य के माध्यम से कर सकते हैं।

हिंदी काव्य में परिवर्तित मानव मूल्य

हिंदी काव्य लगभग एक हजार वर्षो से निरंतर विकसित होता आ रहा है। इस विकसित होने की परंपरा में हिंदी काव्य ने निम्नलिखित मूल्यों और मान्यताओं को आत्मसात किया है। निम्न प्रेरक तत्त्वों, शासकों और संस्कृतियों से संघर्ष और सम्मिश्रण की यात्रा में मूल्यों का निर्माण, संशोधन, अनुसंधान, विस्तार और विरोध किया है। इस पूरी प्रक्रिया के पश्चात् हिंदी काव्य अविरल रूप से बह रहा है।

आदिकालीन हिंदी काव्य और मानव मूल्य

आदिकालीन काव्य किसी एक निश्चित क्षेत्र में नहीं रचा गया है। बल्कि, पूर्वी क्षेत्र में सिद्ध साहित्य, पश्चिम में जैन साहित्य, उत्तरोत्तर मुख्यतः पंजाब और राजपूताना में नाथ साहित्य और देश के राजस्थानी क्षेत्र में रासो साहित्य रचा गया। क्षेत्र, परिस्थितियाँ और प्रत्येक का सामाजिक आधार भिन्न होने के चलते प्रत्येक साहित्य ने अपनी-अपनी क्षेत्रीय, परिस्थितिगत और सामाजिक आधारानुकूल मूल्यों का सृजन किया।

भारतीय इतिहास के प्राचीन और मध्यकालीन संधि स्थल पर बौद्ध धर्म, जैनों और ब्राह्मणों से संघर्ष, हूणों और अरबों के हमलों से जर्जर हो रहा था एवं आंतरिक कलह के पश्चात् शनैः-शनैः पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। संघर्ष और हमलों के मध्य देश के पूर्वी भाग में वज्रयानी शाखा के रूप में विकसित हो रहा था। इसके समानांतर वेद निंदा, उपवास, व्रत, तीर्थ यात्रा और बाह्य विधि-विधान के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि का निर्माण कर रहा था।

पूर्वी कबीलाई समाजों से सम्मिश्रण और जीवन-मरण के सवाल से संघर्ष करते हुए पंच मकार की साधना पर जोर दे रहा था। अपने आपको सिद्ध घोषित करता था तो अपने द्वारा रचित सिद्ध साहित्य के माध्यम से अपने मत का प्रचार कर रहा था।

देश की गैर ब्राह्मण सामान्य जनता इनका आधार थी। इनके मध्य वेद निंदा, व्रत, तीर्थ यात्रा, गंगा स्नान आदि की निस्सारता का मूल्य सृजित कर रहे थे। डोंभिपा और कण्हपा कहते थे कि—

''गंगा जउना माझेरे बहर नाइ।
ताँहि बुड़िली मातंगि पोइआली ले पार करई।''[12]
''आगम वेउ पुराणे, पण्डित मान बहंति।''[13]

जैसे उपदेश देते थे। पंच मकार (मांस, मदिरा, मैथून, मत्स्य और मुद्रा) की साधना पर जोर देते थे। इतना ही नहीं ''निर्वाण के तीन अवयव ठहराये गये—शून्य, विज्ञान और महासुख। उपनिषद् में तो ब्रह्मानंद के सुख के परिणाम का अंदाजा करने के लिए उसे सहवास सुख से सौगुना कहा था पर वज्रयान में निर्वाण के सुख का स्वरूप ही सहवास सुख के समान बताया गया।''[14] इत्यादि उपदेशों के माध्यम से सामाजिक एवं परिस्थितियों के अनुकूल क्रांतिकारी मूल्य सृजित किये। युग और परिस्थितियों के परिवर्तित होने के पश्चात् अधिकांश मूल्य अवनति के मार्ग पर अग्रसर करने के मूल्य माने जाने लगे थे। जिसके परिणामस्वरूप ''कापालिक जोगियों से बचे रहने का उपदेश घर में सास, ननद ही देती रहती थी।''[15] इन परिवर्तित परिस्थितियों का ही परिणाम था कि नाथों ने सिद्धों के अधिकांश मूल्यों का विरोध किया।

नाथ पंच मकार की साधना और अन्य पद्धतियों के विरोध में हठयोग, संयम, शाकाहार, अंतःसाधना, ब्रह्मचर्य और संन्यास पर जोर देते हैं। जातिभेद और अंधविश्वासों का प्रतिकार करते। ये सभी मूल्य समाज के सामान्य हिंदुओं और मुसलमानों की उन्नति में सहयोगी थे। इसलिए नाथों ने ''दोनों के विद्वेषभाव को दूर करके साधना का एक सामान्य मार्ग निकालने की संभावना समझी थी और वे उसका संस्कार अपनी शिष्य परंपरा में छोड़ गये थे। नाथ संप्रदाय के सिद्धांतों, ग्रंथों में ईश्वरोपासना के वाह्य विधानों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई।

घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। वेदशास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराकर विद्वानों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई, तीर्थाटन आदि निष्फल कहे गए हैं।''[16] इत्यादि मूल्य सिद्धों से भी ग्रहण किये। सामान्य हिंदुओं और मुसलमानों दोनों तबकों को आकर्षित करने के लिए मूर्तिपूजा और बहुदेवोपासना को व्यर्थ ठहराते हुए इनकी रुचि, अभिरुचियों और इनकी आर्थिक स्थितिनुसार नवीन मूल्यों और साधना पद्धति का प्रतिपादन किया। इसके इतर जैनों के पास सिद्धों की तरह न जीवन-मरण का सवाल था न ही सामान्य हिंदुओं और मुसलमानों को एकता के सूत्र में बाँधने का नाथों जैसा प्रयास। बल्कि, जैनों का सामाजिक आश्रय सामाजार्थिक दोनों स्थितियों से संपन्न था।

जैनों द्वारा उपवास, ब्रह्मचर्य, संन्यास, अहिंसा, सदाचरण, पंचशील का पालन इत्यादि मूल्यों को पुनः समाज में स्वीकृति दिलाई।

रासो काव्य के केंद्र में राजा, राजसभा, विवाह, युद्धस्थल, रानियाँ और उनका यौवन प्रमुखतः होते थे। ये राजाओं से आश्रय प्राप्त करते थे। ये ''राजाश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन अनूठी उक्तियों के साथ किया करते थे और अपनी वीरोल्लासभरी कविताओं से वीरों को उत्साहित किया करते थे।''[17] ताकि युद्ध क्षेत्र में जाने से सैनिक घबराएँ नहीं। इससे सैनिक निडर, निर्भय आत्मविश्वासी बनता था। वीरता और रोमांच का माहौल पैदा करने के लिए उल्लाासभरी उक्तियाँ कही जाती थी जैसे कि-

''बारह वर्ष ले कूकर जीएें,
और तेरह लै जिएें सियार।
बरिस अठारह छत्री जीएें,
आगे जीवन को धिक्कार।''[18]

'परमाल रासो' के इस उद्धरण के अलावा 'खुमान रासो', 'बीसलदेव रासो', 'पृथ्वीराज रासो' और हम्मीर रासो इत्यादि रासो ग्रंथों में दानशीलता, पराक्रम शत्रुकन्या हरण, वीरता, कांति और यौवन जैसे चित्र अंकित है। 'पृथ्वीराज रासो' शरणार्थी और स्त्री के आत्मसम्मान की रक्षा एवं वचनबद्धता जैसे पारम्परिक क्षत्रिय धर्म के कर्त्तव्यों का निर्वहन भी करता है। क्योंकि, 'पृथ्वीराज रासो' में शाहबुद्दीन और पृथ्वीराज चौहान के बैर का कारण ही यही बताया गया कि ''शहाबुद्दीन अपने यहाँ की एक सुंदरी पर आसक्त था, जो एक दूसरे पठान सरदार हुसैनशाह को चाहती थी। जब ये दोनों शाहबुद्दीन से तंग हुए तब हारकर पृथ्वीराज के पास भाग आए। शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज के यहाँ कहला भेजा कि उन दोनों को अपने यहाँ से निकाल दे। पृथ्वीराज ने उत्तर दिया कि शरणागत की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है, अतः इन दोनों की हम बराबर रक्षा करेंगे।''[19] इस प्रतिउत्तर ने पारम्परिक क्षत्रियों के नैतिक मूल्यों का पुर्नस्थापन किया।

सिद्धों, नाथों, जैनों और रासो ग्रंथकारों ने भिन्न-भिन्न परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार मूल्यों का सृजन किया जिससे मूल्यों में वृद्धि हुई। परन्तु, अपनी देशकालगत परिस्थितियों और सामाजिक आधारानुकूल विशिष्ट मूल्यों का भी सृजन किया जो कि इनकी वर्गीय प्रतिबद्धता और संकुचित राष्ट्रीयता का परिचायक था। आदिकाल की सीमाओं से इतर भक्तिकालीन काव्य एक अखिल भारतीय दृष्टि का निर्माता उभरकर सामने आता है।

भक्तिकाव्य में अभिव्यक्त मानवीय मूल्य : सृजन और प्रतिकार

भक्तिकाल के कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, रहीम, रसखान और दादूदयाल इत्यादि भक्त कवियों का जीवन संघर्ष और देश की दशा और दिशा को परिवर्तित करने की क्षमता ने ही इस युग को 'स्वर्णकाल' की संज्ञा से विभूषित किया है। भक्तिकाव्य मुख्यतः मुगलकालीन परिस्थितियों में पल्लवित व प्रोषित हुआ है। उन विकट परिस्थितियों में शाश्वत मानवीय मूल्यों का सृजन भक्त कवि करते हैं जब ''देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे।''[20] इस सांस्कृतिक संघर्ष और सम्मिश्रण के परिणाममस्वरूप लोकजागरण का उदय हुआ। भिन्न-भिन्न वर्गो का प्रतिनिधित्व करने वाले कवियों का उद्भव हुआ। जिसके संदर्भ में रामविलाश शर्मा कहते भी हैं कि ''कबीर शरीर कारीगरों, सुर पशु-पालकों के, तुलसी किसानों के जीवन से जुड़े हैं।''[21] इसलिए इनके काव्य में प्रतिनिधि वर्गो के मूल्य प्रतिपादित है। जिसके कारण इन भक्तिकालीन कवियों के काव्य में आत्मकल्याण, लोककल्याण, भक्ति, प्रेम, समरसता, निर्भयता, कर्मण्यता, दया, करुणा, निष्पाप, सत्य, अहिंसा, मानवता, आत्मविश्वास, आचरण की शुद्धता, परोपकार, सद्चरित्र का निर्माण, सत्यनिष्ठा, अनुशासनात्मकता, सहिष्णुता, नैतिकता, त्याग, संयम, ममता, विवेक बुद्धि, संकल्प शक्ति, समानता, भातृत्वता, उदारता, ज्ञान, आस्था और जिजीविषा इत्यादि मूल्यों का सृजन किया। संगति के प्रभाव का वर्णन करते हुए कबीर और तुलसीदास कहते भी हैं कि–

'कबीर तन पंषी भया, जहाँ मन वहाँ उडि जाइ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ।। –कबीर
'झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने।
जेहि जाने जग जाई हेराई जथा सपन भ्रम जाई।। –तुलसीदास

कुंभनदास तो इस भौतिक जीवन की चकाचौंध और राजपाट की सुख-सुविधाओं से बेहतर भक्ति को मानते हैं और निर्भयता का परिचय देते हुए कहते हैं कि–

''संतन को कहा सीकरी सो काम?
आवत जात पनहियाँ टूटी,
बिसरि करिबे गयो हरि नाम।
जिनकों मुख देते दुख उपजत,
तिनको करिबे परी सलाम।।''[22]

ऐसी निर्भयता और साहस का परिचय भक्तिकालीन के कवि ही दे सकता था।

भक्तिकालीन कवियों ने मूल्यों का सृजन ही नहीं किया बल्कि मानव विरोधी मूल्यों का प्रतिकार भी किया। इसलिए जब भक्तिकालीन कवियों पर सरसरी दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि ''नामदेव, कबीर, नानक, रैदास, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई आदि कवियों

ने जिन मानवतावादी मूल्यों को अपने साहित्य (वाणी) का आधार बताया, वे शाश्वत है। स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व जैसे मूल्यों को आधार बनाकर जीवन यापन करने वाले इन कवियों की प्रगतिशील विचारधारा ही मानवतावादी संस्कृति की पोषक और उन्नायक बनी है। ये कवि अपने समाज में पनपते अन्याय, अत्याचार, ईष्या-द्वेष, सांप्रदायिकता, अनास्था, अनैतिकता संबंधों में विघटन, शोषण आदि विकृतियों को देखकर विचलित नहीं होते हैं।''[23] बल्कि इस स्थिति के कारकों की खोज भी करते हैं और उनका विरोध भी।

यह सब इनकी साधना, तपस्या और नवीन दृष्टि का ही परिणाम है कि नवीन मूल्यों का सृजन और मानव विरोधी मूल्यों का प्रतिकार कर पाये। परंतु, इस परंपरा को आगे बढ़ाने की जगह रीतिकालीन कवियों ने अवरोध उत्पन्न कर दिया। तत्पश्चात् राज्याश्रय में कवि और कविता विकसित हुई। परिणामस्वरूप हिंदी काव्य की दिशा परिवर्तित हो गई।

रीतिकालीन काव्य और मानव मूल्य

रीतिकालीन नीतिपरक कवियों को छोड़ दें तो अधिकांश कवियों ने छल, कपट, वाक् चातुरता, धन अर्जन, भ्रम, संदेह और विस्मय आदि का ही बोलबाला है। इसलिए हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का कहना सही है कि ''बिहारी से लेकर ग्वाल और पजनेस तक सभी कवियों के चित्त में नायिका की ऐसी ऐश्वर्यदीप्त शोभा का भान था जिनमें कटाक्ष विक्षोभ की क्षमता न हो।''[24] इसलिए रीतिकालीन कवियों ने राधा और सीता को भी एक सामान्य नायिका के तौर पर प्रस्तुत किया। इनके केंद्र में नगर और नगरीय महिलाओं का अधिकांश चित्र है। इनका काव्य मुख्यतः नगरीय धनी सामंतों और राजाओं की इच्छा-अनिच्छा से निर्मित होता था। इनका काव्य नख-शिख वर्णन, बारहमासा, नायक-नायिका भेद, काव्य, लक्षय, निरूपण इत्यादि विषयों तक ही सीमित रह गया। लेकिन, बिहारी राष्ट्र के प्रति चिंतित भी होते दिखाई देते हैं। जब देखते हैं कि जयपुर के राजा जयशाह (महाराज जयसिंह) अपनी छोटी रानी के प्रेम में लीन होकर राजकाज और राज्य पर आने वाली विपत्ति से अनभिज्ञ है तो बिहारी सरदारों की सलाह से एक दोहा लिख भेजते हैं कि–

''नहिं पराग नहिं मधुर मधु,
नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यो,
आगे कौन हवाल।।''[25]

जिसके परिणामस्वरूप महाराज जयसिंह जागते हैं और बिहारी को सम्मानित भी करते हैं। भूषण छत्रसाल और शिवाजी की वीरता, शौर्य और पराक्रम का वर्णन करते है।, परंतु, ''श्रृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि थी जिनके लिये कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।''[26] तत्पश्चात् कर्मण्यता, वीरता, शौर्य, पराक्रम, निर्भयता और आध्यात्मिकता जैसे मूल्यों का दिग्दर्शन रीतिबद्ध कवियों में नहीं मिलता है। लेकिन, इस रिक्तता को कुछ हद तक रीतिकालीन नीतिपरक कवि संतुलित करने का प्रयास करते हैं।

गिरिधर कविराय, बैताल, वृंद, सम्मन, दीनदयाल और रामसहाय दास इत्यादि रीतिकालीन कवियों ने जाति, गाँव, परिवार, घरबार और राजदरबार में क्या नीति अपनानी चाहिए और किन-किन नैतिकता का पालन करना चाहिए इसका उपदेश देते हैं। लोक स्वार्थ, गर्व, ईर्ष्या, अभिमान आदि मूल्यों को समाज के लिए अहितकारी बताते हैं। इनका काव्य भक्तिकालीन कवियों का स्मरण कराता है। इन नीतिपरक कवियों ने सामाजिक और व्यवहारिक शिक्षा भी दी। कबीर और तुलसी की भाँति संगति के प्रभाव का वर्णन करते हुए वृंद कहते हैं–

'होत सुसंगति सहत सुख दुख कुसंग के थान।
गंदी और लुहार की देखहु बैठि दुकान।।'

मिष्ट भाषण के संबंध में सम्मत कहते हैं कि–

''सम्मत मीठी बात सों,
होत सबै सुख पूरु।
जेहि नहिं सीखो बोलिवो,
तेहि सीखो सब धूर।।''[27]

रीतिपरक कवियों ने सामान्य जनमानस को सामाजिक और नैतिक शिक्षा का उपदेश दिया तो घाघ ने किसानों को किसानी के गुर अपनी कहावतों के माध्यम से सिखाये। इनसे इत्तर रीतिमुक्त कवि घनानंद प्रेम के मार्ग का वर्णन करते हैं और प्रेम तत्त्व को जायसी की भाँति अमरत्व प्राप्त कराते हैं और कहते हैं कि–

''अति सूधो सनेह को मारग है,
जहं नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहं साँचे चलै तजि आपनपौ,
झिझके कपटी जो निसाँक नहीं।''[28]

आदिकालीन सिद्धों से लेकर रीतिकालीन घनानंद तक हिंदी काव्य में अनवरत नवीन मूल्यों का सृजन, अनुसंधान, परिवर्तन, संशोधन और विस्तार होता आ रहा है। काव्य के प्रेरक तत्त्व परिवर्तित होते ही मूल्य भी परिवर्तित होते रहे। हिंदी काव्य निम्नलिखित प्रेरक तत्त्वों, शासकों, आंदोलनों, परिस्थितियों और विशेष जाति, धर्म, वर्ग आदि से संचालित भी होता रहा। जिसके कारण भी विशेष जाति, धर्म और वर्ग से संबंधित मूल्य सृजित हुए। आदि से अंत तक काव्य के प्रेरक तत्त्व बदलते रहते हैं जिसके संदर्भ में शुक्लजी सही कहते हैं कि ''प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्रवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्रवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।''[29] इसी प्रकार साहित्य में भी युग परिवर्तन के पश्चात् मूल्य परिवर्तित होते रहते हैं। यह प्रक्रिया आधुनिक काल तक चलती आ रही है। आधुनिक काल में देखते हैं कि आधुनिकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप नवीन जीवन मूल्यों का सृजन होता है। हिंदी साहित्य आधुनिकता से प्रभावित होने लगता है। साहित्य में ईश्वर, राजा, धर्म और दर्शन का स्थान मनुष्य, तर्क और विज्ञान लेने लगता है।

औपनिवेशिक सत्ता से भारत का मजदूर, किसान, छात्र, शिक्षक, स्त्री, पुरुष, ग्रामीण, शहरी, सवर्ण, अवर्ण, अमीर और गरीब सभी संघर्ष करते दिखाई देते हैं। तत्पश्चात् भारत स्वतंत्रता प्राप्त करता है और विशेष जाति धर्म को लाभ पहुँचाने वाले मूल्यों की अपेक्षा राष्ट्र को और उसके प्रत्येक नागरिक के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा और कर्त्तव्यों का बोध कराने वाले मूल्यों को सृजित करता है।

संदर्भ सूचीः

1. मानव मूल्य व्याख्या कोश, भाग 1, संपादन : धर्मपाल मैनी, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 7
2. वही, पृ. 8
3. मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण 1999, भूमिका
4. वही, पृ. 14
5. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्त, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2009, पृ. 180
6. वही, पृ. 180
7. वही, पृ. 180
8. वही, पृ. 180
9. पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ. तारकनाथ बाली, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ. 199
10. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धांत, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2009, पृ. 195
11. मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण 1999, पृ. 102-103
12. हिंदी साहित्य का इतिहास, (सं.) डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृ. 59
13. वही, पृ. 60
14. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चालीसवाँ संस्करण 2001, पृ. 7
15. वही, पृ. 7
16. वही, पृ. 10
17. वही, पृ. 17
18. वही, पृ. 29
19. वही, पृ. 22
20. वही, पृ. 34
21. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 334
22. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, चालीसवाँ संस्करण 2001, पृ. 97
23. भक्तिकालीन साहित्य में मानववाद, डॉ. संध्या गौतम, पृ. 355-356
24. हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. 182
25. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चालीसवाँ संस्करण 2001, पृ. 97
26. वही, पृ. 133
27. हिंदी साहित्य का इतिहास, (सं.) डॉ नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृ. 368
28. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चालीसवाँ संस्करण 2001, पृ. 181
29. वही, काल विभाग, पृ. 1

शोधार्थी
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

'सभ्यता की प्रगति केवल बौद्धिक सृजनशीलता पर ही नहीं बल्कि उदारता और सहानुभूति जैसे नैतिक गुणों पर भी निर्भर होती है।'

— डॉ. राधाकृष्णन

हिंदी भाषा का विकास और वर्तमान परिस्थिति

राहुल सिंह

शोध सार : हिंदी, भारत देश की प्रमुख भाषा है। 28 राज्यों में से 12 राज्यों की प्राथमिक भाषा हिंदी मानी जाती है। किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए वहाँ की भाषा का सम्मान और वहाँ के लोगों के मन में उसके प्रति आदर होना आवश्यक होता है। हिंदी भाषा का इतिहास से लेकर वर्तमान में भी उसकी सार्थकता हमें उसी ओर ले जाती है। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु भाषाई क्षमता का विकास अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम है। हिंदी भाषा की प्रगतिशीलता पूरे विश्व में हिंदी की मजबूत स्थिति को प्रदर्शित करती है व भारत के एकीकरण का सशक्त माध्यम बन अपने उद्देश्य में कार्यशील है

बीज शब्द : हिंदी भाषा, भाषाई इतिहास, विविधता, बहुभाषिकता, संविधान, डिजिटल शिक्षा।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अपितु वह जन्म से ही सामाजिक नहीं होता है। ऐसी क्या परिस्थितियाँ या संभावनाएँ रहती हैं जो मनुष्य को सामाजिकता की और प्रगतिशील रखती है? सोचने और विचारने पर परिणाम सदैव एक पाया गया—उसकी भाषा। भाषा में वह विशेष गुण विद्यमान है जो मनुष्य को अन्य जीवित जीवों से भिन्न पहचान देती है व सजीव की श्रेणी में शीर्ष स्थान पर बैठाती है। विश्व में लगभग 5000 से कुछ अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं जिसमें से एक तिहाई अर्थात 1600 भाषाओं का व्यवहार भारत में पाया जाता है। इन्हीं भाषाओं में से एक महत्त्वपूर्ण भाषा हिंदी है। हिंदी भाषा बोलने वालों की संख्या संपूर्ण विश्व में तीसरे स्थान पर उपस्थित है; विश्व जनसंख्या का लगभग 8-9 प्रतिशत से कुछ अधिक जनसंख्या हिंदी भाषा बोल, लिख और समझ सकती है, जिसकी प्रथमिक भाषा हिंदी है।

वर्तमान हिंदी के स्वरूप प्रारंभ से ही एक सा नहीं था इसके पीछे लगभग 3500 वर्षों का भाषाई इतिहास और संस्कृति उपस्थित रही। हिंदी भाषा की प्रगतिशीलता ही थी जो इतना लंबा इतिहास समाएँ वर्तमान में भी गर्व से प्रयोगशील है। हिंदी का विकास विभिन्न भाषाओं से संबंधित रहा है जिसकी सूची व विकासक्रम निम्न प्रदर्शित है—

हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तर पर मजबूत स्थिति बनाएँ हुए है जिसके बारे में हम जानेंगे—

वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार भारत देश संपूर्ण विश्व में अतुलनीय स्थिति बनाए हुए है। 'भारत को विविधताओं में एकता' का देश कहा जाता है, यहाँ विविधताओं के विभिन्न आधार पाए जाते हैं जिसमें भाषाई विविधता अपना अलग स्थान बनाएँ हुई है। इस भाषाई विविधता में हिंदी भाषा अपना प्रसार और महत्त्व बनाने में प्रारंभ से ही तत्पर है। 2011 की भारतीय जनगणना की माने तो 121 करोड़ की विशाल जनसंख्या में से 43.68% अर्थात लगभग 53 करोड़ लोगों प्राथमिक भाषा हिंदी है, जो 11 से 12 राज्यों की प्रमुख भाषा हिंदी है। हिंदी भाषा वैश्विक स्तर पर तीसरे स्थान पर सबसे अधिक मात्रा में बोली जाने वाली भाषा के रूप में विद्यमान है, जो विश्व में लगभग 65 से 70 करोड़ जनसंख्या द्वारा प्रयोग की जाती है जो विश्व की कुल जनसंख्या की लगभग 8% के समान है। एक अकड़ा यह भी देखें कि विश्व में लगभग 132 देशों में जा बसे भारतीय मूल के लगभग 4-5 करोड़ से अधिक लोग हिंदी का प्रयोग कुशलतापूर्वक कर रहे हैं। हिंदी भाषा के अंतरराष्ट्रीय कारण की प्रक्रिया निरंतर जारी है जिसमें भारतीय सरकार के प्रयास सराहनीय है। हिंदी भाषा में वो क्षमता है जो न केवल देश के राज्यों को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य करती है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी देशों के मध्य संवाद, सामंजस्य, विचारने व चिंतन-मनन करने की प्रक्रिया के प्रबल साधन के रूप में प्रयोग की जाती है। हिंदी को जनतांत्रिक आधार पर विश्व भाषा माना जाता है। हिंदी एशियाई संस्कृति में भी अपनी भूमिका सर्वस्व निभाती आई है। जिस प्रकार भारत विश्व में अपना अलग स्थान बना रहा है और विकासशील से विकसित होने की ओर अग्रसर है उसी प्रकार हिंदी भाषा अपने प्रौढ़ रूप प्राप्त कर विभिन्न देशों में भारत का प्रतिनिधित्व सफलतापूर्वक कर रही है।

विभिन्न शोध व अनुसंधान के माध्यम से यह जानना सफल रहा है कि बहुभाषिकता एक समस्या न होकर संसाधन के रूप में कार्य करती है यह मानवीय बौद्धिक विकास का सूचक है। परिणामस्वरूप हमें एक से अधिक भाषा सीखने में निरंतर प्रयासरत होना चाहिए, जिसकी एवज में विश्व, अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त हिंदी सीखने की और प्रगतिशील है। वर्तमान समय में विभिन्न देश जैसे; नेपाल, बांग्लादेश, म्यांमार, सिंगापुर, चीन, जापान दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, फिजी, संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन जैसे बड़े देशों के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा का शिक्षण सफलतापूर्वक किया जा रहा है। विश्व हिंदी की धरोहर को सम्माननीय रूप से आत्मसात किया जा रहा है।

हिंदी भाषा अपने इतिहास के साथ-साथ वर्तमान की दुनिया में भी अद्यतन है। विश्व प्रौद्योगिकी की दुनिया में निरंतर प्रगति कर रहा है जिसका एक सशक्त माध्यम बन हिंदी अपनी भूमिका निभा रही है। डिजिटल दुनिया व वैश्वीकरण के दौर में हिंदी अपना ज़ोर लगाए हुए है, फिर वह चाहे इंटरनेट, सूचना प्रोद्योगिकी व अन्य सभी क्षेत्रों के विकास में प्रयोगशील है। सूचना क्रांति का आधार आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस हो या चैट जीपीटी सभी हिंदी का अनुसरण कर उसी भाषा

में परिणाम उपलब्ध करने में सक्षम है।

हिंदी भाषा और उसकी संवैधानिक स्थिति को समझें तो हिंदी संविधान का भाग 17; भाषा से संबंधित हैं जिसके अनुच्छेद 343 से 351 तक हिंदी भाषा और उसके उपबंध शामिल है। अनुच्छेद 343 में शामिल है कि, "संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी, संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा" अर्थात हिंदी भाषा को 14 सितंबर 1949 को राजभाषा का दर्जा दिया गया। अनुच्छेद 351 में यह कहा गया है कि भारत सरकार और राज्य सरकारें हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में अपनी भूमिका निभाएगी, जिसके परिणामस्वरूप भाषाई आयोग, समिति, नियम और अधिनियम लाए गए हैं। जिनकी सूची इस प्रकार है; राजभाषा संबंधित राष्ट्रपति का आदेश, संसदीय राजभाषा समिति, राजभाषा अधिनियम, राजभाषा संकल्प, कोठारी आयोग, राजभाषा नियम आदि है।

आदरणीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी व वर्तमान सरकार द्वारा भी हिंदी भाषा विकास व उसमें रोजगार प्रबंधन हेतु सराहनीय कार्य किया जा रहा है। वर्ष 2022 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा निर्देश जारी किया गया कि वर्ष 2022 से ही मेडिकल और अभियांत्रिकी की पढ़ाई हिंदी में भी संभव होगी, उसके लिए केंद्र सरकार की सहायता से हिंदी में संपूर्ण पाठ्यक्रम व्यवस्थित किया गया और उसी के अनुसार अनेक विद्यार्थी अपनी मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। विगत वर्ष जून 2022 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा प्रस्ताव पारित किया गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ अपने सभी महत्त्वपूर्ण परिपत्र अन्य भाषाओं के साथ हिंदी में भी प्रकाशित करेगा।

प्रधानमंत्री मोदी और सरकार का ध्येय हिंदी की धरोहर और उसके विकास को लेकर सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों रूपों में प्रयासरत है। हिंदी वर्तमान में राजभाषा के रूप में कार्यशील है अपितु व्यावहारिक रूप से संपूर्ण देश में संपर्क भाषा के रूप में भी प्रचलित है। हिंदी का संवैधानिक रूप राजभाषा से अब राष्ट्रभाषा की ओर बढ़ना चाहिए जिसमें पूरे देश का संकल्प प्रदर्शित है व हिंदी के प्रसार को देखकर यह कल्पना करना एकदम सार्थक प्रतीत हो रहा है।

हिंदी भाषा भारत की पहचान, संस्कृति और संप्रेषण का एक प्रमुख माध्यम है। यह न केवल भारत की राजभाषा है, बल्कि करोड़ों लोगों की मातृभाषा व संपर्क भाषा भी है। वर्तमान समय में हिंदी का महत्व और भी बढ़ गया है, हालांकि, हिंदी भाषा को लेकर कुछ चुनौतियाँ भी हैं। अंग्रेज़ी का बढ़ता प्रभाव, विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के प्रति उपेक्षा, और कई स्थानों पर क्षेत्रीय भाषाओं के साथ इसका संतुलन बनाए रखना एक जटिल विषय है। फिर भी, सरकारी प्रयासों, नई शिक्षा नीति, और तकनीकी विकास के कारण हिंदी निरंतर आगे बढ़ रही है। हिंदी भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक एकता का प्रतीक है। इसे और अधिक समृद्ध बनाने के लिए आधुनिक तकनीकों और शिक्षा प्रणाली में इसे अधिक मजबूत स्थान देने की आवश्यकता है, ताकि यह देश और विश्व स्तर पर अपनी सशक्त पहचान बनाए रखे।

संदर्भ सूचीः

1. भारत के संविधान में राजभाषा से संबंधित भाग-17, राजभाषा विभाग, सेंट्रल कोल्डफिल्ड लिमिटेड।
2. दृष्टि The Vision, झारखंड लोक सेवा आयोग, हिंदी भाषा और इसका इतिहास।
3. डॉ. विनायक खरटमल, रोजगारपरक हिंदी भाषा, शोध प्रभा, श्रीलाल बहादुर शास्त्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय।

शोधार्थी

यूजीसी नेट (हिंदी)

●

'हिंदी हमारे देश और भाषा की प्रभावशाली विरासत है।'

— माखनलाल चतुर्वेदी

संस्कृत से हिंदी तक : भाषाई संक्रमण और परंपरा का प्रवाह

अनुराग सिंह

संस्कृत से हिंदी तक की भाषिक यात्रा भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना का प्रतिबिंब है। यह केवल भाषाओं का रूपांतरण नहीं, अपितु एक गहन सांस्कृतिक संवाद की प्रक्रिया है, जिसमें संस्कृत की दार्शनिक गहराई, प्राकृत और अपभ्रंश की जनसंपृक्ति, तथा अवधी, ब्रज और खड़ी बोली की भावनात्मक और सामाजिक अभिव्यक्ति समाहित है। हिंदी भारत की प्रमुख भारतीय भाषाओं में से एक है, अपनी प्रमुखता का दृढ़ आधार इसका राजभाषा के साथ-साथ संपर्क भाषा के रूप में प्रमुख योगदान है। यह न केवल संचार का माध्यम है, बल्कि भारतीय संस्कृति और परंपरा की वाहक भी है। हिंदी भाषा का विकास हजारों वर्षों की यात्रा का परिणाम है, जिसमें संस्कृत, पालि, प्राक् अपभ्रंश आदि...का योगदान समाहित है। भाषा का उद्भव कब और कैसे हुआ होगा, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका सर्वस्वीकृत उत्तर पा सकना लगभग असम्भव है। पिछली दो शताब्दियों में पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वानों ने इस संबंध में पर्याप्त बौद्धिक व्यायाम करके अनेक संभाव्य सिद्धांतों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, किंतु उन्हें कपोल कल्पनाओं से अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता है।

भाषा की उत्पत्ति चाहे किसी भी प्रक्रिया से हुई हो, व्यावहारिक क्षेत्र में उसका प्रत्यक्षीकरण हमें जिन दो प्रतीकात्मक रूपों में होता है उन्हें हम ध्वनि प्रतीक या लिपि प्रतीक कह सकते हैं। प्रतीक किसी भी रूप में हो चाहे वह ध्वन्यात्मक हो या लिप्यात्मक वह हमेशा यादृच्छिक ही होते हैं, इसीलिए भाषा के स्वरूप को परिभाषित करने वाले सभी भाषा शास्त्रियों ने अपनी परिभाषाओं में भाषा की इस विशेषता को आवश्यक रूप में समाहित किया है, उदाहरणार्थ–'भाषा उन यादृच्छिक ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था हैं जिनके माध्यम से किसी सामाजिक (भाषाई) समूह के सदस्य परस्पर अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।' लगभग 1200 वर्ष पूर्व भारतीय आचार्य भामह ने अपने ग्रंथ काव्यालंकार में भाषा की जो परिभाषा दी है उसकी प्रतिध्वनि उपर्युक्त परिभाषा में सुनाई पड़ती है, वे कहते हैं–

"इयन्तः ईदृशाः शब्दाः ईदृगर्थाभिधायिनः।
व्यवहाराय लोकस्य प्रागित्थं समयः कृतः॥"[1]

अर्थात् लोक व्यवहार की आधारभूत भाषा की शब्दावली की संरचना सुनिर्धारित वर्णनात्मक प्रतीकों तथा उनमें निहित अर्थों के द्वारा की जाती है। व्याकरण दर्शन के विद्वान आचार्य भर्तृहरि का कथन है 'इति कर्तव्यता लोके सर्व शब्द व्यपाश्रया' अर्थात् एक समाजिक प्राणी के रूप में क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए इत्यादि की निर्भरता हमारे शाब्दिक व्यवहार पर ही होती है। वे कहते हैं–

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।"[2]

इस दृश्यमान जगत् का कोई ऐसा कार्यकलाप नहीं जो कि भाषा के बिना संभव हो। इस जगत् का समस्त ज्ञान शब्द (भाषा) से ओतप्रोत प्रतीत होता है। संस्कृत भाषा भारत की भाषाई विरासत की मूलाधार रही है। इसकी जड़ें वैदिक काल से जुड़ी हैं। वैदिक संस्कृत का प्रयोग विशेषकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में मिलता है। इन ग्रंथों में भाषा का उपयोग केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए नहीं, बल्कि दार्शनिक, वैज्ञानिक, और सामाजिक विषयों के लिए भी किया गया। संस्कृत की वैज्ञानिकता और व्याकरणिक स्पष्टता का मुख्य श्रेय अष्टाध्यायी के रचयिता पाणिनि को जाता है। यह विश्व का सबसे प्राचीन और सुव्यवस्थित व्याकरण ग्रंथ है, जिसमें लगभग 4000 सूत्रों के माध्यम से भाषा की संरचना को विश्लेषित किया गया है। जिसमें अष्टाध्यायी में पाणिनि भाषा की आत्मा को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि, "शब्दों का वैज्ञानिक रूप में निर्माण और संयोजन ही भाषा की आत्मा है।"[3] संस्कृत को 'देववाणी' का दर्जा इसलिए मिला क्योंकि इसे ईश्वर की वाणी या श्रुति माना गया। महाभारत, रामायण, उपनिषद् और नाट्यशास्त्र जैसे ग्रंथों ने संस्कृत को सांस्कृतिक, नैतिक और सामाजिक विमर्श की भाषा बना दिया। संस्कृत के एक प्रसिद्ध मंत्र–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।"[4]

इस मंत्र में निहित भाव संपूर्ण मानवता की मंगलकामना है। यह मंत्र केवल धार्मिक नहीं बल्कि मानवीय करुणा और सामाजिक समरसता की अभिव्यक्ति है। संस्कृत साहित्य आत्मा और समाज दोनों के कल्याण की बात करता है। कालिदास जैसे कवियों ने अभिज्ञानशाकुंतलम् और मेघदूतम् जैसी रचनाओं में प्रेम, प्रकृति और मानव भावनाओं को गहराई से चित्रित किया। उदाहरणस्वरूप–

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुंतला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्रश्लोकचतुष्टयम्॥"[5]

संस्कृत केवल उच्च वर्ग की भाषा नहीं रही, बल्कि इसकी विविध शाखाओं ने और कथा साहित्य ने जनजीवन को भी प्रभावित किया।

"तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।
आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥"[6]

जो ज्ञान मुक्त करता है वही विद्या है। संस्कृत की इस परिभाषा में ज्ञान, नैतिकता और मोक्ष का समन्वय है। संस्कृत के दार्शनिक विचार आधुनिक हिंदी लेखकों को भी प्रभावित करते हैं। संस्कृत भाषा

की यह विशेषता रही है कि वह 'संवेदना' को 'सत्य' के साथ जोड़कर प्रस्तुत करती है। इसीलिए संस्कृत साहित्य में 'श्रुति' (जो सुनी जाए) और 'स्मृति' (जो याद रखी जाए) का विशेष महत्त्व रहा है। इसके अतिरिक्त, संस्कृत में जो छंदबद्धता, अलंकारिता और उच्चारण की स्पष्टता है, वह इसे भाषाओं की रचनात्मकता में अद्वितीय बनाती है। इस प्रकार, संस्कृत भारतीय भाषाई परंपरा की आधारशिला है, जिसके ऊपर हिंदी सहित अनेक भाषाओं का ढाँचा खड़ा हुआ। यह परंपरा न केवल शब्दों की, बल्कि विचारों की, संस्कृति की और जीवन-दर्शन की भी संवाहक रही है। संस्कृत के शुद्ध और औपचारिक स्वरूप के समानांतर जनसामान्य की भाषा के रूप में कई बोलियाँ विकसित हुई जिन्हें 'प्राकृत' कहा गया। 'प्राकृत' का अर्थ है 'प्राकृतिक' यानी जो कृत्रिम न हो। प्राकृत की विभिन्न शाखाओं जिनमें पालि, अर्धमागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री ने बौद्ध और जैन धर्मों के विस्तार में योगदान दिया। पालि भाषा में रचित त्रिपिटक बौद्ध धर्म का आधार ग्रंथ है, जिसमें बुद्ध के उपदेश जनभाषा में दिए गए। "अप्प दीपो भव"[7] स्वयं अपने दीपक बनो। यह उपदेश भाषा की उस प्रवृत्ति को दर्शाता है जहाँ ज्ञान, बोध और मार्गदर्शन जनसाधारण के लिए सुलभ बनाया गया। यही उद्देश्य प्राकृत भाषाओं ने भी निभाया। जैन ग्रंथ आचारांग सूत्र, सूतकृतांग, और उत्तराध्ययन सूत्र आदि अर्धमागधी प्राकृत में लिखे गए। इनमें नीतिशास्त्र, आत्मसंयम और अहिंसा जैसे विषयों को आम बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत किया गया। इसका उदाहरण अचारांग सूत्र में देते हुए कहा गया है कि—"णाणं तहा दंता च व सव्वेसिं सुक्खस्स मूलं" अर्थात् ज्ञान और संयम सभी सुखों की जड़ हैं। कालांतर में जब प्राकृत और भी अधिक लोकजीवन से जुड़ी, तो उसमें और अधिक सरलता और स्थानीयता उत्पन्न हुई जिससे 'अपभ्रंश भाषा का उदय हुआ। अपभ्रंश का तात्पर्य है 'विकृत' या 'परिवर्तित रूप' है। यह भाषाई संक्रमण 6वीं से 12वीं शताब्दी के बीच हुआ। अपभ्रंश साहित्य में सरहपा, हेमचंद्र, पुष्पदंत, हरिपालदेव जैसे कवियों ने काव्य की ऐसी परंपरा को जन्म दिया जो समाज, दर्शन, और भक्ति से जुड़ी थी। अपभ्रंश में जैन कवियों हेमचंद्र, पुष्पदंत और हरसेन ने महत्त्वपूर्ण साहित्य की रचना की। हेमचंद्राचार्य ने दैसिनाममाला में लिखा है—

"जो साहसहि न चढइ, जो निज वचन तजइ।
जो परनिंदा करइ, वीर कहाइ नहि जाइ॥"[9]

यह शैली आधुनिक हिंदी की तरफ पहला कदम था, जिसमें जनमानस की आवाज स्पष्ट सुनाई देती है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार, "अपभ्रंश वह सेतु है जो संस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच स्थित है।"[10] अपभ्रंश में रची कविताओं और धार्मिक ग्रंथों ने हिंदी की नींव रखी। यह भाषाई परत हिंदी के सामाजिक, धार्मिक और काव्यात्मक भावों की मूलभूत संरचना बन गई। अपभ्रंश में कविता लय, तुक, और भाव के समन्वय से बनी होती थी। इसकी भाषा अपेक्षाकृत सरल, जनसुलभ और भावनात्मक थी जिसमें संक्षिप्तता, रूपकों का प्रयोग और जीवन की गूढ़ सच्चाइयों की प्रस्तुति होती थी, जो हिंदी साहित्य की आगामी परंपरा में दिखाई देती है। अपभ्रंश भाषा का प्रभाव इतना व्यापक था कि ब्रज, अवधी, मैथिली जैसी बोलियों की रचना में उसका विशेष योगदान रहा। प्राकृत और अपभ्रंश ने संस्कृत की सख्त संरचना को लचीला बनाकर विचारों को जनसामान्य तक पहुँचाया। प्राकृत और अपभ्रंश केवल भाषाई संक्रमण की कड़ियाँ ही न होकर हिंदी साहित्य के मुख्य आधार थे, जिनसे आगे चलकर भक्ति काल और आधुनिक हिंदी का वृक्ष विकसित हुआ।

मध्यकाल में जब अपभ्रंश भाषाएँ विकसित होकर बोलियों के रूप में सामने आने लगीं, तब हिंदी की दो प्रमुख शाखाएँ अवधी और ब्रज उभरीं। ये दोनों भाषिक रूप केवल संवाद के माध्यम नहीं थे, बल्कि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के शक्तिशाली उपकरण बन गए। अवधी क्षेत्र (वर्तमान पूर्वी उत्तर प्रदेश) में गोस्वामी तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी, कबीर आदि ने साहित्य की समृद्ध परंपरा का निर्माण किया। ब्रज क्षेत्र (मथुरा-वृंदावन, पश्चिमी उत्तर प्रदेश) में सूरदास, मीरा, रसखान जैसे भक्त कवियों ने भक्ति और श्रृंगार को काव्य मैं ढालने का कार्य किया।

तुलसीदास की रामचरितमानस अवधी में लिखी गई है, जो संस्कृत ग्रंथ वाल्मीकि रामायण का लोकप्रचलित संस्करण बन गई। तुलसीदास ने रामकथा को जनभाषा में प्रस्तुत करके धार्मिक साहित्य को जनसुलभ बना दिया। उदाहरणस्परूप—

"तुलसी साथी विपति के, विद्या, विनय, विवेक।
साहस, सुकृत, सुसत्य व्रत, राम भरोसो एक॥"[11]

तुलसीदास ने भाषा को समाज के लिए धर्म, नीति और भक्ति के प्रचार का माध्यम बनाया। उनके लेखन ने यह सिद्ध किया कि जनभाषा में भी उच्च कोटि का साहित्य रचा जा सकता है। मलिक मुहम्मद जायसी की रचना पद्मावत अवधी में लिखी गई एक अनुपम काव्यकृति है।

पद्मावत स्तुती खंड में जायसी लिखते है कि—

"अलउद्दीन देहली सुलतानू। राघौ चेतन कीन्ह बखानू॥
आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै॥[12]

कबीर के दोहे हिंदी की नींव के पत्थर हैं। वे ब्रजभाषा, अवधी, और खड़ी बोली के मिश्रित रूप में लिखे गए, जिनमें सरलता और तत्वज्ञान दोनों का भंडार है। उनकी कवीर ग्रंथावली उनका मुख्य आधार ग्रंथ है। उदाहरणस्वरूप—

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥"[13]

ब्रजभाषा में रचित सूरसागर में सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का मनोहारी वर्णन किया। उनकी कविता में न केवल भक्ति है, बल्कि भाषा की मधुरता और भावों की गहराई लिये हुई है।

"मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ॥"[14]

मीराबाई जो भक्तिकाल की वीर प्रेमिका के रूप में जानी जाती हैं, उन्होंने भी ब्रज भाषा में अपने आध्यात्मिक प्रेम को अभिव्यक्त किया है। उदाहरणस्वरूप—

"पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा करि अपनायो॥"[15]

रसखान एक ऐसे मुस्लिम कवि हैं, जिन्होंने ब्रज भाषा में श्रीकृष्ण की भक्ति में डूबकर लिखा है कि—

"मानुष हौं तो वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी-कूल-कदंब की डारन॥"[16]

अवधी और ब्रज जैसी बोलियाँ केवल संवाद की भाषा नहीं रहीं, बल्कि उन्होंने धार्मिक, सांस्कृतिक और भावात्मक विचारों को जनमानस तक पहुँचाने का कार्य किया। इन भाषाओं में लिखे गए काव्य और पदों ने हिंदी साहित्य की आधारशिला रखी। भक्ति आंदोलन ने जनभाषा को आत्मा की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इसने हिंदी भाषा को न केवल साहित्यिक मान्यता दी, बल्कि उसे सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का वाहक भी बनाया।

18वीं और 19वीं शताब्दी में हिंदी भाषा के विकास में एक निर्णायक मोड़ आया जब खड़ी बोली को साहित्यिक और प्रशासनिक भाषा के रूप में अपनाया गया। खड़ी बोली, जो दिल्ली, पश्चिम उत्तर प्रदेश और हरियाणा क्षेत्र में बोली जाती थी, धीरे-धीरे हिंदी साहित्य की मुख्यधारा बन गई। भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिंदी का जनक माना जाता है। उन्होंने हिंदी को गद्य और नाटक के माध्यम से एक नई पहचान दी। उनका प्रसिद्ध कथन है—

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय के सूल॥"[17]

भारतेंदु ने हिंदी में पत्रकारिता, नाटक और निबंध के माध्यम से नवजागरण की भावना को जन्म दिया। उनके बाद बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि ने खड़ी बोली हिंदी को समृद्ध प्रदान की है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में सरस्वती पत्रिका ने खड़ी बोली हिंदी को साहित्यिक मंच प्रदान किया। उन्होंने भाषा को संस्कृतनिष्ठ रूप देने का प्रयास किया और खड़ी बोली को गद्य लेखन की मानक भाषा के रूप प्रतिष्ठित किया। प्रेमचंद ने खड़ी बोली को यथार्थवादी कथा साहित्य में प्रतिष्ठा दिलाई। उनकी रचनाएँ जैसे गोदान, निर्मला, कफ़न आदि ने खड़ी बोली को जनजीवन की सजीव भाषा बना दिया।

20वीं शताब्दी में महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंश राय बच्चन, अज्ञेय जैसे कवियों और लेखकों ने खड़ी बोली को भाव, सौंदर्य और वैचारिक गहराई से समृद्ध किया। दिनकर की संस्कृति के चार अध्याय और रश्मिरथी जैसी कृतियाँ राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बनीं।

जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत जैसे छायावादी कवियों ने खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उदाहरणस्वरूप महादेवी जी की इस पथ से आना की पंक्तियाँ—

"तुम दुख बन इस पथ से आना!
शूलों में नित मृदु पाटल-सा;
खिलने देना मेरा जीवन;
क्या हार बनेगा वह जिसने
खान हृदय को बिंधवाना!"[18]

रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी कविताओं में भाषा के महत्त्व पर ज़ोर दिया है, विशेषकर उन्होंने हिंदी भाषा के गौरव और उसकी शक्ति पर अधिक बल दिया है। उनकी कविताओं में भाषा को राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक गौरव का प्रतीक माना गया है। उन्होंने हिंदी को ओजस्तविता प्रदान की है। उदाहरणस्वरूप—

"फावड़े और हल राजदण्ड बनने को हैं
धूसरता सोने से शृंगार सजाती है
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है॥"[19]

खड़ी बोली केवल साहित्यिक भाषा न होकर राष्ट्रीय आंदोलनों और प्रशासनिक कार्यों की भाषा भी बनी। स्वतंत्रता संग्राम में यह भाषा लोगों को एकता के सूत्र में पिरोने का माध्यम बनी। 1950 में संविधान द्वारा हिंदी को भारत की राजभाषा घोषित किया गया। उसके बाद शिक्षा, प्रशासन और मीडिया में खड़ी बोली आधारित मानक हिंदी का प्रयोग बढ़ता गया। आज यह भाषा भारत की पहचान बन चुकी है। खड़ी बोली के माध्यम से हिंदी न केवल साहित्यिक और सांस्कृतिक समृद्धि की संवाहिका बनी, बल्कि यह ज्ञान-विज्ञान और तकनीक की भाषा बनकर वैश्विक मंच पर भी स्थापित हो रही है। हिंदी भाषा का सांस्कृतिक चेतना से गहरा संबंध रहा है। यह केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि विचार, भावना, और राष्ट्रीय अस्मिता की संवाहक भी है। संस्कृत से प्रारंभ होकर हिंदी तक की भाषाई यात्रा केवल भाषिक परिवर्तन की कहानी नहीं है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, समाज और चेतना के विकास की भी कहानी है। हिंदी ने भारत की विविधता को एकता में पिरोने का कार्य किया है। वर्तमान संदर्भ में हिंदी वैश्विक मंच पर भी अपनी पहचान बना रही है। संयुक्त राष्ट्र, गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, यूट्यूब जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में सामग्री की उपस्थिति बढ़ती जा रही है। हिंदी अब केवल भारत तक सीमित नहीं, बल्कि विश्वभर में फैले प्रवासी भारतीयों के माध्यम से विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। भारत सरकार की एक भारत श्रेष्ठ भारत, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जैसी योजनाओं में भी हिंदी के संवर्धन और उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है। हिंदी के माध्यम से आज शिक्षा, प्रशासन, विज्ञान, तकनीक और मीडिया में व्यापक संवाद संभव हुआ है।

हिंदी भाषा आज केवल अतीत की गौरवशाली परंपरा की वाहक नहीं, बल्कि भविष्य की संभावनाओं का सेतु भी है। यह भाषा भारत की आत्मा है, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करती है। इसकी जीवंतता, व्यापकता और लचीलापन ही इसकी सबसे बड़ी ताकत है। संस्कृत से हिंदी तक की भाषा यात्रा भारत की सांस्कृतिक चेतना की दर्पण है। संस्कृत ने वैचारिक गहराई दी, प्राकृत और अपभ्रंश ने उसे जनभाषा बनाया, और हिंदी ने उसे आधुनिकता और वैश्विक स्तर तक पहुँचाया। यह संक्रमण भाषा की जीवंतता और समाज से उसके गहरे संबंध को दर्शाता है। हिंदी आज केवल संवाद की भाषा नहीं, बल्कि भारत की आत्मा और सांस्कृतिक पहचान की वाहक बन चुकी है।

संदर्भ सूचीः

1. आचार्य भामह : काव्यालंकार
2. भर्तृहरिः वाक्यपदीय, खंड 1-3, संपादक : रवींद्र वर्मा, भारती विद्याभवन
3. पाणिनिः अष्टाध्यायी, संपादक : श्रीराम शर्मा, चौखंभा संस्कृत सीरीज
4. ऋग्वेद भाग 10 पृष्ठ 191

5. कालिदास : अभिज्ञान शाकुंतलम्, संपादक : डॉ. गोपालदत्त शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास
6. श्रीविष्णुपुराण 1-1949
7. त्रिपिटकैः अभिधम्मपिटक महात्मा बुद्ध
8. अचारांग सूत्र : जैन धर्म
9. हेमचंद्राचार्य, देसिनाममाला, पृष्ठ 118, संस्करण 1961, प्रकाशक : जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं 10. डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, Languages and Literatures of Modern India, पृष्ठ 42, मूल संस्करण 1963, पब्लिशर : Bengal Publishers)
11. पुष्प-पराग (पृष्ठ 82), संपादक : टेकचंद शास्त्री, तुलसीदास, भारती सदन, दिल्ली, संस्करण 1955
12. मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत, स्तुती खंड
13. कबीर ग्रंथावली, संपादक : श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
14. सूर दोहावली (पृष्ठ 128), रचनाकार : आबिद रिज़वी, रजत प्रकाशन
15. मीरा वाणी (पृष्ठ 112), रचनाकार : मीरा, राजकमल प्रकाशन संस्करण : 2004
16. रसखान ग्रंथावली सटीक (पृष्ठ 155), रचनाकार : प्रो. देशराजसिंह भाटी प्रकाशन, अशोक प्रकाशन, संस्करण 1966
17. भारतेंदु रचनावली, निज भाषा, नवलकिशोर प्रेस संस्करण
18. आत्मिका (पृष्ठ 38), रचनाकार : महादेवी वर्मा, राजपाल प्रकाशन संस्करण 2015
19. रामधारी सिंह 'दिनकर' : कुछ प्रतिनिधि रचनाएँ, लोकभारती प्रकाशन

शोधार्थी
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

'अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन,
पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत दीन के हीन।'

— भारतेंदु हरिश्चंद्र

मानव और कृत्रिम बुद्धिमत्ता: सहयोग या प्रतिस्पर्धा?

श्री प्रवेश

मानव मस्तिष्क की उपज कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने गत वर्षों में तकनीक और समाज दोनों के परिदृश्य को बदलकर रख दिया है। यह महज एक तकनीकी प्रगति नहीं है, बल्कि एक ऐसी क्रांति है, जो हमारी सोच, काम करने के तरीके और सामाजिक संरचनाओं को प्रभावित कर रही है। लेकिन इसके साथ ही एक मूल प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि—क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव बुद्धिमत्ता की सहयोगी है, या फिर यह तकनीक मानव एवं समाज के लिए चुनौती बनकर उभरेगी?

यदि हम मानव एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता में अंतर समझकर आगे बढ़ेंगे तो हम मानव एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अन्विति को सरलता से समझ सकेंगे—

मानव मस्तिष्क एवं बुद्धिमत्ता उसकी तार्किकता, रचनात्मकता, अनुभव और संवेदनशीलता का मिश्रण है। यह न केवल डेटा के आधार पर निर्णय लेता है, बल्कि सामाजिक और नैतिक मूल्यों को भी ध्यान में रखती है। दूसरी ओर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव मस्तिष्क की उपज तकनीकि या कहें मशीनों द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली बुद्धिमत्ता है, जो डेटा और एल्गोरिदम के माध्यम से पैटर्न को समझकर अपनी प्रतिक्रिया प्रस्तुत करती है, समस्याओं का समाधान करती है और मानव की निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाने में सहायता करती है।

दोनों के बीच एक मूल अंतर यह है कि मानव बुद्धिमत्ता अनुभव और भावनाओं पर आधारित है, जबकि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का आधार उसका एल्गोरिदम एवं डेटा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता तेज गति से डेटा का विश्लेषण कर सकती है, लेकिन उसमें मानवीय संवेदनाओं एवं सहानुभूति का अभाव है।

लेकिन वैश्विक परिदृश्य को देखें तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रत्येक राष्ट्र की जरूरत बन गई है, जिसे हम कृत्रिम बुद्धिमत्ता के अनुप्रयोग के आधार पर समझ सकते हैं जिसके माध्यम से इस तकनीक ने विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय परिवर्तन किए हैं—

स्वास्थ्य क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग ब्रेन ट्यूमर, कैंसर जैसी घातक बीमारियों का शीघ्र पता लगाने, दवाओं के विकास और सर्जरी में सहायता के लिए किया जा रहा है। IBM वास्टन जैसे AI मॉडल डॉक्टरों को मरीजों की रिपोर्ट्स का सटीक विश्लेषण करने में मदद करते हैं।

यदि हम वित्तीय सेवाओं के देखें तो बैंकिंग और वित्त क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता फ्रॉड डिटेक्शन, जोखिम प्रबंधन और ग्राहक सेवा को सरल एवं सुगम बनाया है।

शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर आधारित व्यक्तिगत लर्निंग प्लेटफॉर्म छात्रों को उनकी गति और जरूरतों के अनुसार पढ़ाई करने में मदद कर रहे हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का सदुपयोग छात्रों को करियर योजना को सुव्यवस्थित बनाने एवं निर्णय क्षमता को बेहतर बनाकर उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर देश के लिए अमूल्य संपत्ति के रूप में तैयार करने का बेहतर विकल्प है।

परिवहन के क्षेत्र में सेल्फ-ड्राइविंग कारें और ट्रैफिक मैनेजमेंट सिस्टम कृत्रिम बुद्धिमत्ता की बेहतरीन उपलब्धि का उदाहरण है, जो परिवहन व्यवस्था को सुरक्षित और कुशल बनाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

चैटबॉट्स और रोबोटिक प्रोसेस ऑटोमेशन (RPA) ने सेवाओं को अधिक कुशल बनाया है।

लेकिन कृत्रिम बुद्धिमत्ता की उपलब्धियों को देखते हुए हम मानव के समक्ष इसके द्वारा खड़ी की गई चुनौतियों को नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता; जो अपने साथ नैतिक प्रश्न उठाती हैं—

निजी डाटा और निजता का दुरुपयोग Al सिस्टम्स पर बड़ा प्रश्न चिह्न अंकित करता है क्योंकि Al सिस्टम को प्रशिक्षित करने के लिए डेटा की जरूरत होती है। कई बार, व्यक्तिगत जानकारी का दुरुपयोग होता है, जिससे निजता का उल्लंघन होता है। डेटा बायस (Data Bias) के कारण भी गलत निर्णय लिए जा सकते हैं, जो समाज में असमानता को बढ़ा सकते हैं।

रोजगार के क्षेत्र में भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने श्रम श्रेणी के लिए नकारात्मक पहलू के रूप में अपनी भूमिका निभाई है; क्योंकि ऑटोमेशन के कारण पारंपरिक नौकरियाँ खत्म हो रही हैं। फैक्ट्रियों, बैंकिंग और ग्राहक सेवा जैसे क्षेत्रों में रोबोट और चैटबॉट्स ने मानव श्रम की जगह ले रहे हैं। यदि हम आँकड़ों की बात करें तो वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम की रिपोर्ट के अनुसार, कृत्रिम बुद्धिमत्त के कारण लाखों नौकरियाँ प्रभावित हो सकती हैं, जिससे वैश्विक स्तर पर असमानता बढ़ने का खतरा है।

नैतिकता और जवाबदेही : जब AI कोई गलत निर्णय लेता है—जैसे कि एक सेल्फ-ड्राइविंग कार दुर्घटना कर देती है—तब सवाल उठता है; इसके लिए जवाबदेह कौन होगा? क्या यह गलती कोड लिखने वाले इंजीनियर की है, या मशीन की?

AI के उपयुर्क्त नकारात्मक पहलू मानव के लिए मानसिक तनाव का कारण के रूप में भी उभरे हैं।

इस चर्चा के क्रम में, अब प्रश्न उठता है कि क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव को प्रतिस्पर्धी के रूप में पीछे छोड़ सकती है?

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की क्षमताएँ तेजी से विकसित होकर बढ़ रही हैं, लेकिन यह मान लेना कि AI मानव बुद्धिमत्ता को पूरी तरह पछाड़ देगा, यह एक अधूरा तर्क है। यह तकनीक डेटा प्रोसेसिंग और तर्क क्षमता में मानव से आगे हो सकता है, लेकिन वर्तमान कृत्रिम बुद्धिमत्ता में मानवीय संवेदनाएँ, नैतिक निर्णय और रचनात्मकता का अभाव है।

मानव बुद्धिमत्ता केवल तथ्यात्मक ज्ञान तक सीमित नहीं है;

यह कल्पना, सहानुभूति और संवेदनशीलता पर भी आधारित है। एक कवि की रचनात्मकता, एक डॉक्टर की संवेदनशीलता, और एक नेता की नैतिकता—ये सभी मानव की अनूठी विशेषताएँ हैं, जिन्हें अभी AI दोहराने में असमर्थ है।

मानव और कृत्रिम बुद्धिमत्ता : एक सहयोगी भविष्य या चुनौती?

इस प्रश्न को लेकर विद्वानों में भी मतभेद है, लेरी पेज, अमित रे, सबाइन हॉअर्ट जैसे विद्वानों का मानना है कि आने वाले समय में, मानव और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बीच का संबंध प्रतिस्पर्धा का नहीं, वरन सहयोग का होगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता दक्षता और गति लाएगा, जबकि मानव संवेदनशीलता और नैतिकता के आधार पर उसे दिशा दिखाएगा। लेकिन कुछ विद्वान इसे संस्कृति एवं समाज के समक्ष चुनौती के रूप में भी देखते हैं।

हालांकि सरकारों और संस्थाओं को चाहिए कि वे कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक उपयोग के लिए स्पष्ट नीतियाँ बनाएँ, ताकि तकनीक और मानवता के बीच संतुलन बना रहे। इसके साथ ही, शिक्षा व्यवस्था को भी इस ओर उन्मुख करना होगा, ताकि अगली पीढ़ी इस तकनीक के साथ सह-अस्तित्व के लिए तैयार हो सके।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव का प्रतिस्पर्धी नहीं, वरन सहयोगी है। इसका प्रयोजन मानव क्षमताओं को खत्म करना नहीं, बल्कि उन्हें बढ़ाना है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता सिस्टम को सही दिशा देने की जिम्मेदारी मानव पर है। यह वक्त तकनीक के अंधानुकरण का नहीं, वरन उसके विवेकपूर्ण और जवाबदेह प्रयोग का है। मानव बुद्धिमत्ता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बीच संतुलन ही एक समावेशी और प्रगतिशील भविष्य की नींव है।

स्वतंत्र लेखक

●

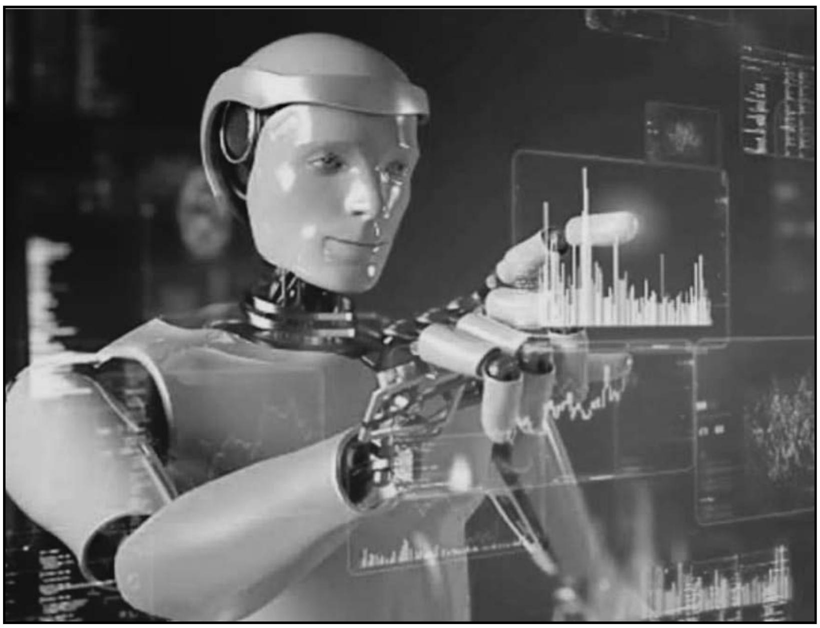

इंटरनेट से साभार

अज्जो : बेटी इंडिया की

कुसुम लता

भारत जैसे विशालकाय देश में जब भी महिलाओं से संबंधित समस्याओं पर बात की जाती है तो ज्यादातर भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, लैंगिक भेदभाव, शारीरिक असुरक्षा, यौन प्रताड़ना, एसिड अटैक जैसे मुद्दों को सामने लाया जाता है। यह देश का दुर्भाग्य है कि आज भी भारत जैसे देश में महिलाएँ कहीं न कहीं ऐसी समस्याओं से जूझ रही हैं। ऐसी ही एक महत्त्वपूर्ण समस्या है—गर्भवती महिला का घर पर प्रसव पीड़ा से जूझना और कई बार नवजात शिशु का जन्म से पहले ही मृत हो जाना। राम जी बाली ने फिल्म 'अज्जो' के द्वारा हिंदी फिल्म निर्देशन के क्षेत्र में ऐसे ही महत्त्वपूर्ण विषय पर अपना पहला सफल प्रयास किया है। फिल्म के पहले दृश्य से लेकर आखिरी दृश्य तक इसमें इस बात पर जोर दिया है कि किसी भी प्रकार की अनहोनी से बचने के लिए महिलाओं के सुरक्षित प्रसव के लिए उन्हें अस्पताल ले जाना चाहिए। भारत के अनेक ग्रामीण इलाकों में आज भी इस बात की हँसी उड़ाई जाती है कि प्रसव के लिए अस्पताल की क्या जरूरत है? जब घर की बुजुर्ग महिलाएँ और दाई बखूबी इस कार्य को घर पर ही संपन्न करवा रही हैं। ऐसे में वे भूल जाती हैं कि कितने ऐसे नवजात शिशु या माताएँ ऐसी स्थिति में दम तोड़ देते हैं। घर पर प्रसव के दौरान अनेक समस्याएँ सामने आती हैं जैसे-ज्यादा रक्तस्राव होना, आहार नाल से संबंधित समस्या, बच्चे का पेट में उल्टा हो जाना, माँ और बच्चे को सही साफ-सफाई के अभाव में संक्रमण का खतरा होना आदि।

'अज्जो' फिल्म में प्रसव के दौरान जन्म से पहले ही नवजात शिशु के मृत होने की समस्या को बड़ी गंभीरता से प्रदर्शित किया है। यह फिल्म स्टेज एप पर देखी जा सकती है। फिल्म के निर्माता निर्देशक प्रदीप मोहंती हैं। फिल्म के निर्देशक राम जी बाली, बिटिया अज्जो की भूमिका में प्रदीप्ता मोहंती, मुख्य सहायक निर्देशक अमन कुमार, सहायक निर्देशक पुनीत कौशल हैं। पटकथा, स्क्रीनप्ले, संवाद लेखन राम जी बाली ने किया है। वेशभूषा चीया जोशी, कोरियोग्राफर नम्रता माली, ध्वनिकार मोहित, संगीतकार स्नेहा गुप्ता हैं। इस फिल्म के गाने स्वानंद किरकिरे, अंतरा मित्रा, महिमा शर्मा, स्नेया गुप्ता की आवाज में हैं। गीत लेखन स्वयं राम जी बाली ने किया है। अज्जो के पिता मोहन की भूमिका में फिल्म के निर्देशक राम जी बाली, दादी का किरदार डॉली अहलूवालियां, अज्जो की माँ लाजवंती का किरदार नीरू डोगरा, पत्रकार का किरदार प्रवीण मोहंती, उपायुक्त की भूमिका में यशपाल शर्मा, डॉ. की भूमिका में आशा हैं।

फिल्म का पहला दृश्य घर पर अज्जो की गर्भवती माँ की प्रसव पीड़ा से संबंधित है। माँ प्रसव पीड़ा में छटपटाती रहती है। बाहर खड़ी सास पोते के होने की प्रार्थना करती है। बिटिया का जन्म होता है लेकिन नवजात शिशु जन्म से पहले ही दम तोड़ देता है। उसकी एक झलक देखे या दिखाए बिना उसे धरती माँ की गोद में सुला दिया जाता है। बेटी अज्जो के बार-बार जिद करने पर भी उसे उसकी छोटी बहन का मुँह नहीं दिखाया जाता है। इस बात से परेशान अज्जो कई बार सरकारी अस्पताल की महिला डॉक्टर से भी मिलकर आती है। माँ के दूसरी बार गर्भवती होने पर वह पूरा प्रयास करती है कि डिलीवरी अस्पताल में हो लेकिन फिर से उसकी एक नहीं सुनी जाती है। फिल्म के अंत में माँ के पेट में बच्चे के उल्टा हो जाने पर अज्जो के प्रयास से डॉ. की टीम द्वारा माँ का सुरक्षित प्रसव कराया जाता है। नवजात बच्ची की जान भी बच जाती है। गाँव के डीसी साहब द्वारा अज्जो को सम्मानित करने के साथ फिल्म समाप्त हो जाती है। बाली जी ने महिलाओं से संबंधित उस समस्या को उठाया है जिसके बारे में अभी तक समाज में ज्यादा जागरूकता नहीं फैली है। घर पर जच्चगी माँ और नवजात शिशु दोनों के लिए घातक होती है। आशा वर्करस इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। जिनका सहयोग सभी ग्रामीण परिवारों को करना चाहिए। अस्पताल हर घर तक नहीं पहुँच सकता है लेकिन हर घर द्वारा अस्पताल पहुंचकर माँ और नवजात शिशु के स्वास्थ्य को बनाए रखा जा सकता है। इस फिल्म के सभी दृश्य गाँव में फिल्माए गए हैं। देशकाल-वातावरण का इसमें पूरा ध्यान रखा गया है। हारे पर रखी पतीली, गोबर पाथती दादी, खेत-खलिहानों के बीच से साइकिल पर जाना, उगते सूरज के सामने ट्यूबवेल के पानी में छलांग लगाना, सरकारी अस्पताल का आँगन, सुबह-सवेरे भैंस को नहलाना, गेंहूँ की फसल की कटाई आदि अनेक ऐसे दृश्य हैं जो गाँव की पृष्ठभूमि से दर्शकों का परिचय करवाते हैं। सभी किरदारों की वेशभूषा उनके चरित्र एवं परिवेश के अनुरूप है। पूरी फिल्म में संवादों के माध्यम से राम जी बाली जो संदेश देना चाहते हैं वह स्पष्ट उजागर हुआ है। किसी भी फिल्म में गीत-संगीत की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। फिल्म पटकथा को और अधिक रोचक और मनोरंजक बनाने के लिए विभिन्न घटनाओं एवं प्रसंगों से संबंधित गीतों की योजना की जाती है। अज्जो अपनी माँ के लिए बेहद फिक्रमंद हैं। वह भले ही उम्र में छोटी है लेकिन वह इस बात को समझती है कि माँ का होना किसी बच्चे के जीवन की सबसे बड़ी जरूरत है। छोटी-सी बच्ची अज्जो अपनी माँ के स्वास्थ्य को लेकर भी चिंतित दिखाई देती है। एक गीत के माध्यम से माँ की महत्ता को उजागर किया गया है—

हे माँ री मेरी, तुझ बिन मेरा न कोई,
जब से जुड़ी मैं सांसों से तेरी, आँख ना तेरी सोई।

'ए माँ री मेरी' गीत की धुन बीच-बीच में पार्श्वसंगीत के रूप में दृश्य को और अधिक मार्मिक बना देता है। इस फिल्म का प्रत्येक गीत संदेश से भरा है। गीत लेखन के समय राम जी बाली ने अपनी फिल्म के उद्देश्य के साथ पूरा न्याय किया है। फिल्म के सभी दृश्य

बहुत ही संवेदनशील, रोचक और जीवंत हैं। फिल्म में पटकथा, पात्रों, घटनाओं, दृश्यों, गीत-संगीत के साथ पूरा न्याय किया गया है। राम जी बाली द्वारा निर्देशित पहली, फिल्म काबिले तारीफ़ है। इस फिल्म में 'बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ' का संदेश भी दिया गया है। राम जी बाली ने बहुत अच्छा संदेश दिया है कि समाज को स्वयं हम सब मिलकर ही बदल सकते हैं और अनेक माताओं एवं नवजात शिशुओं की जिंदगी को बचाकर हम एक स्वस्थ शरीर, स्वस्थ समाज और स्वस्थ हिंदुस्तान का नव-निर्माण कर सकते हैं। सामाजिक विषयों पर बनी इस तरह की फ़िल्में केवल मनोरंजन नहीं करती हैं बल्कि समाज को जागरूक करके उसमें बदलाव लाती हैं।

असिस्टेंट प्रोफेसर
दौलत राम महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

इंटरनेट से साभार

ओटीटी प्लेटफॉर्म : वेब सीरीज और हिंदी फिल्मों का बदलता स्वरूप

संदीप सो. लोटलीकर

इक्कीसवीं सदी में इंटरनेट और डिजिटल तकनीक के प्रसार ने मनोरंजन की दुनिया में क्रांतिकारी बदलाव किए हैं। इसी परिवर्तन का सबसे बड़ा उदाहरण ओटीटी (ओवर-द-टॉप) प्लेटफॉर्म है, जिन्होंने पारंपरिक टेलीविजन और सिनेमा के विकल्प के रूप में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। ओटीटी प्लेटफॉर्म वे डिजिटल स्ट्रीमिंग सेवाएँ हैं, जो इंटरनेट के माध्यम से वीडियो, फिल्में, वेब सीरीज़, टीवी शो और अन्य प्रकार की सामग्री प्रदान करती हैं। ये पारंपरिक केबल या सैटेलाइट टेलीविजन सेवाओं की आवश्यकता के बिना सीधे उपभोक्ताओं तक पहुँचती हैं। उदाहरण के लिए नेटफ्लिक्स, अमेज़न प्राइम, डिज़्नी-हॉटस्टार, सोनीलिव, ज़ी 5, वूट, जियो सिनेमा आदि प्रमुख ओटीटी प्लेटफॉर्म हैं। नेटफ्लिक्स ने 2007 में वीडियो स्ट्रीमिंग सेवा शुरू करके इस क्षेत्र में क्रांति ला दी, जबकि भारत में ओटीटी सेवाओं का तेजी से विस्तार 2010 के बाद हुआ।

भारत में ओटीटी सेवाओं की शुरुआत धीमी गति से हुई थी, लेकिन 2013 में डिट्टो टीवी और 2015 में हॉटस्टार के लॉन्च के साथ यह क्षेत्र विकसित होने लगा। हालाँकि, 2016 में रिलायंस जियो के आने से भारत में डिजिटल क्रांति तेज़ हो गई। सस्ते इंटरनेट और स्मार्टफोन की व्यापक उपलब्धता के कारण भारत में ओटीटी प्लेटफॉर्म का बाजार तेजी से बढ़ा और आज यह देशभर में मनोरंजन का प्रमुख माध्यम बन चुका है। 2016 में जियो के आने से पहले, मोबाइल डेटा काफी महंगा था और इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या भी सीमित थी। लेकिन जियो के सस्ते डेटा प्लान ने आम जनता तक इंटरनेट पहुँचाया, जिससे ओटीटी सेवाओं को व्यापक दर्शक वर्ग मिला। आज, स्मार्टफोन और किफायती डेटा की बदौलत कोई भी व्यक्ति कहीं भी ऑनलाइन कंटेंट देख सकता है।

ओटीटी प्लेटफॉर्म का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह पारंपरिक टेलीविजन की तरह समयबद्ध नहीं है। दर्शक अपनी सुविधा के अनुसार किसी भी समय, किसी भी स्थान पर मोबाइल, लैपटॉप या स्मार्ट टीवी के माध्यम से मनचाहा कंटेंट देख सकते हैं। चाहे वह यात्रा के दौरान हो, घर पर आराम करते हुए हो या किसी भी खाली समय में, ओटीटी प्लेटफॉर्म का लचीलापन इसे बेहद लोकप्रिय बनाता है। इससे पारंपरिक टेलीविजन और सिनेमाघरों पर निर्भरता कम हुई है। ओटीटी प्लेटफॉर्म न केवल मनोरंजन का भविष्य हैं, बल्कि यह दर्शकों के देखने के अनुभव को भी नया आयाम देने वाले हैं।

ओटीटी प्लेटफॉर्म सिर्फ मनोरंजन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि यह विभिन्न प्रकार के कंटेंट प्रदान करते हैं, जैसे कि वेब सीरीज़—जो विभिन्न भाषाओं और शैलियों में उपलब्ध है, नई और पुरानी दोनों प्रकार की फ़िल्में। इस तरह, ओटीटी प्लेटफॉर्म हर उम्र और हर रुचि के लोगों के लिए कुछ न कुछ पेश करते हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डेटा विश्लेषण के माध्यम से उपयोगकर्ताओं की पसंद को समझते हैं और उनके देखने के इतिहास के आधार पर नए शो और फ़िल्मों की अनुशंसा करते हैं। यह पर्सनलाइजेशन दर्शकों के अनुभव को बेहतर बनाता है और उन्हें वही कंटेंट देखने का अवसर देता है, जिसमें उनकी रुचि होती है। इसीलिए संभावना यह है कि ओटीटी सेवाएँ भविष्य में और भी अधिक विकसित होंगी। 5G नेटवर्क, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और वर्चुअल रियलिटी जैसी तकनीकों के कारण ओटीटी प्लेटफॉर्म और अधिक इंटरैक्टिव और उन्नत हो जाएंगे। इसके अलावा, भारतीय भाषाओं में बढ़ते कंटेंट और क्षेत्रीय सिनेमा की बढ़ती माँग के कारण ओटीटी का बाजार और विस्तृत होगा।

वर्तमान समय में ओटीटी प्लेटफॉर्म ने मनोरंजन की दुनिया में एक नई क्रांति ला दी है। क्योंकि यह दर्शकों को उनकी सुविधा, रुचि और समय के अनुसार मनोरंजन प्रदान कर रहा है, जिससे इसकी लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है। भारत में सस्ते इंटरनेट, स्मार्टफोन की उपलब्धता और विभिन्न भाषाओं में कंटेंट की बढ़ती संख्या के कारण यह उद्योग दिन-ब-दिन उन्नति कर रहा है। ओटीटी प्लेटफॉर्म न केवल मनोरंजन का भविष्य है, बल्कि यह दर्शकों के देखने के अनुभव को भी नया आयाम देने वाले हैं। यह दर्शकों को पारंपरिक टेलीविजन से अधिक स्वतंत्रता और विविधता प्रदान करते हैं। अब बड़े फ़िल्म प्रोडक्शन हाउस भी ओटीटी के लिए विशेष कंटेंट बना रहे हैं, जिससे इसकी लोकप्रियता और बढ़ती जा रही है।

ओटीटी प्लेटफॉर्म की सबसे बड़ी विशेषता उनकी विषयवस्तु की विविधता है। इन प्लेटफॉर्म्स पर हर वर्ग के दर्शकों के लिए कंटेंट उपलब्ध है, जिसमें क्राइम, थ्रिलर, ड्रामा, हॉरर, रोमांस, साइंस-फिक्शन, कॉमेडी और बायोपिक जैसी शैलियाँ शामिल हैं। उदाहरण के लिए, 'स्कैम 1992' वेब सीरीज़ भारतीय स्टॉक मार्केट घोटाले पर आधारित थी और अत्यधिक लोकप्रिय रही। इसी तरह, 'कोटा फैक्ट्री' शिक्षा प्रणाली और छात्रों की चुनौतियों को प्रस्तुत करती है, जो पारंपरिक हिंदी फिल्मों में कम देखा गया था। 'पाताल लोक' जातिगत भेदभाव और सामाजिक अन्याय को दर्शाती है। हिंदी वेब सीरीज में द फैमिली मैन, मिर्जापुर, पाताल लोक, सैक्रेड गेम्स, ज्युबली, पंचायत, क्रिमिनल जस्टिस, असुर, मुंबई डायरीज, अरण्यक, दहाड़, दिल्ली क्राइम्स, स्पेशल ऑप्स के अलावा भी ऐसी अनेक वेब सीरीज हैं जो लोगों द्वारा खूब पसंद की गईं।

ओटीटी ने नए कलाकारों को भी एक सशक्त मंच प्रदान किया

है। प्रतीक गाँधी (स्कैम 1992), पंकज त्रिपाठी, दिव्येंदु शर्मा (मिर्जापुर), जितेंद्र कुमार (पंचायत), जयदीप अहलावत(पाताल लोक) के अलावा श्वेता त्रिपाठी, रसिका दुग्गल, अभिषेक बैनर्जी, अली फजल, शरद केळकर, विक्रांत मेस्सी, गुलशन देवैया जैसे अनेकानेक कलाकार हैं जो ओटीटी प्लेटफार्म के कारण चर्चा में आए हैं। यह प्लेटफॉर्म न केवल स्वतंत्र फिल्म निर्माताओं के लिए अवसर लेकर आया है, बल्कि इसने बड़े सितारों के वर्चस्व को भी चुनौती दी है। ओटीटी ने भारतीय फ़िल्मों और वेब सीरीज को अंतरराष्ट्रीय दर्शकों तक पहुँचाया है। पहले भारतीय फ़िल्में केवल विदेशी सिनेमाघरों तक सीमित रहती थीं, लेकिन अब दुनिया भर में लोग अपने घर में बैठकर भारतीय कंटेंट देख सकते हैं।

इसके अलावा ओटीटी ने भारतीय दर्शकों को अंतरराष्ट्रीय वेब सीरीज और फिल्मों से भी जोड़ा है। मनी हीस्ट, स्ट्रेंजर थिंग्स, द नाइट एजेंट, मेनीफेस्ट, प्रिजन ब्रेक, डेयरडेविल, फूल मी वन्स, कैरी वन्स, इनविजिबल, थ्रोंस और गेम ऑफ थ्रोंस जैसी अंतरराष्ट्रीय वेब सीरीज भारतीय दर्शकों के बीच लोकप्रिय हुईं। इससे हिंदी सिनेमा को वैश्विक मानकों के अनुरूप खुद को विकसित करने की चुनौती मिली है। अब भारतीय फिल्म निर्माता भी अधिक यथार्थवादी और प्रभावशाली कहानियों पर ध्यान देने लगे हैं।

गौरतलब है कि ओटीटी प्लेटफॉर्म पर सेंसरशिप उतनी सख्त नहीं होती, जिससे विषयों को खुले तौर पर प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ सेंसरशिप के नियम टेलीविजन और सिनेमाघरों की तुलना में अधिक उदार हैं। वेब सीरीज के माध्यम से गाली-गलौज, हिंसा, सेक्स, राजनीतिक मुद्दे और समाज के संवेदनशील विषयों को बेझिझक दिखाया जाता है। इस पर फिल्मकारों को ज्यादा क्रिएटिव फ्रीडम मिलती है, क्योंकि यहाँ सेंसर बोर्ड की बाधाएँ नहीं होतीं। इससे बोल्ड और वास्तविक विषयों पर काम करना आसान हुआ है। यही वजह है कि मिर्जापुर, पाताल लोक, आश्रम, सैक्रेड गेम्स, दहाड, दिल्ली क्राइम्स, त्रिभुवन मिश्रा सीए टॉपर, जैसी वेब सीरीज में बिना सेंसर की बंदिशों के असली और प्रभावशाली कहानियाँ देखने को मिलीं। 'मिर्जापुर' और 'आश्रम' जैसी वेब सीरीज में हिंसा, राजनीति और सामाजिक मुद्दों को बेझिझक दिखाया गया है। 'त्रिभुवन मिश्रा सीए टॉपर' महिला ग्राहकों को सेवाएँ प्रदान करने वाले एक पुरुष सेक्स वर्कर की कहानी है। 'द फैमिली मैन' आतंकवाद और राष्ट्रीय सुरक्षा पर केंद्रित थी और इसे दर्शकों ने खूब सराहा। सेंसरशिप की कम बाधाओं के कारण इन विषयों को और अधिक सजीवता से प्रस्तुत किया जा सका। इनमें हिंसा और बोल्ड विषयों को खुलकर दिखाया गया है। ओटीटी पर सफल वेब सीरीज का फॉर्मूला अब केवल बड़े सितारों और मसाला फिल्मों तक सीमित नहीं रह गया है। दर्शक अब थ्रिलर, रियलिस्टिक ड्रामा, डॉक्यूमेंट्री, बायोपिक, साइंस फिक्शन जैसी नई शैलियों में रुचि ले रहे हैं। इसीलिए रॉकेट बॉयज़, एस्पिरेंट्स, कोटा फैक्टरी, पंचायत जैसी वेब सीरीज दर्शकों को बहुत पसंद आईं। अच्छी कहानी, दमदार संवाद और लोकल टच वाली वेब सीरीज अधिक चर्चित हो रही हैं। अपराध, राजनीति, इतिहास, शिक्षा, और सामाजिक मुद्दों को लेकर बनी वेब सीरीज को लोग खासा पसंद कर रहे हैं।

ओटीटी वेब सीरीज ने हिंदी सिनेमा के पूरे ढाँचे को बदलकर रख दिया है। पहले हिंदी फिल्मों की सफलता बॉक्स ऑफिस कलेक्शन पर निर्भर थी, लेकिन अब कई फिल्में सिनेमाघरों में रिलीज़ होने के बजाय सीधे ओटीटी पर रिलीज़ की जा रही हैं। ओटीटी के कारण सिनेमाघरों की दर्शक संख्या घटी है, खासकर कोविड-19 महामारी के बाद। अब लोग घर बैठे नई फ़िल्में और वेब सीरीज देखना पसंद करते हैं, जिससे थिएटर व्यवसाय प्रभावित हुआ है। उदाहरण के लिए बड़े बजट की कई फिल्में जैसे गुलाबो सिताबो, लक्ष्मी और शेरशाह सीधे ओटीटी पर रिलीज़ हुईं। कोविड के दौरान कई फ़िल्मों को डिजिटल रिलीज़ मिली, जिससे थिएटर को भारी नुकसान हुआ।

इसके साथ ही, ओटीटी ने कंटेंट-आधारित सिनेमा को बढ़ावा दिया है। पहले बॉलीवुड में स्टार-ड्रिवन सिनेमा का दबदबा था, लेकिन अब कंटेंट-ड्रिवन फिल्मों और वेब सीरीज को अधिक प्राथमिकता दी जा रही है। दर्शकों की प्राथमिकताएँ बदल रही हैं—वे केवल बड़े सितारों पर निर्भर नहीं हैं, बल्कि अच्छी कहानियों और दमदार अभिनय को महत्त्व दे रहे हैं। बॉलीवुड अब केवल थिएटर-केंद्रित नहीं रह गया है, बल्कि ओटीटी के साथ तालमेल बिठाने पर ध्यान दे रहा है।

हिंदी में ऐसी अनेकानेक वेब सीरीज बनी हैं जो बड़े बजट की बॉलीवुड फिल्मों से अधिक चर्चित रहीं। इसके अतिरिक्त, ओटीटी ने बिंज-वॉचिंग संस्कृति को जन्म दिया है, जिसमें दर्शक लगातार कई घंटे तक वेब सीरीज देख सकते हैं। इसका प्रभाव फिल्मों पर भी पड़ा है और अब निर्माता 'बाहुबली', 'पुष्पा' और 'ब्रह्मास्त्र' जैसी बड़े बजट की फिल्में बना रहे हैं।

इसके अलावा, छोटे बजट की फिल्मों को भी ओटीटी के कारण एक नया मंच मिला है। पहले छोटी फिल्मों को सिनेमाघरों में जगह नहीं मिलती थी, लेकिन अब वे सीधे ओटीटी पर रिलीज़ होकर दर्शकों तक पहुँच रही हैं। 'लूटकेस', 'राज़ी' और 'थप्पड़' जैसी फिल्मों की सफलता इसका प्रमाण है। ओटीटी प्लेटफॉर्म्स ने हिंदी फिल्मों के वितरण और कमाई के तरीकों को भी बदला है। अब फिल्मों के लिए डायरेक्ट-टू-डिजिटल मॉडल अपनाया जा रहा है, जिससे निर्माता बॉक्स ऑफिस कलेक्शन पर निर्भर नहीं रहते। हालाँकि, इससे सिनेमाघरों में दर्शकों की संख्या घटी है, जिससे कई मिड-बजट की फिल्में फ्लॉप हो रही हैं। अब निर्माता बड़ी फिल्मों को सिनेमाघरों में और छोटी फिल्मों को ओटीटी पर रिलीज़ करने की रणनीति अपना रहे हैं।

दरअसल ओटीटी ने छोटे बजट की फिल्मों को नई जिंदगी दी और इन फ़िल्मों के लिए नई संभावनाएँ खोली है। पहले जिन फिल्मों का सिनेमाघरों में चलना मुश्किल समझा जाता था अब बिना ज्यादा प्रमोशन खर्च किए, अच्छी कहानी और निर्देशन वाली फ़िल्में भी हिट हो सकती हैं। बुलबुल, सर, लूडो जैसी फ़िल्में थिएटर में नहीं, बल्कि सीधे ओटीटी पर रिलीज़ हुईं और हिट रहीं। ये फ़िल्में इस बात का सबूत हैं कि बड़ी स्टारकास्ट और हाई बजट के बिना भी फिल्में सुपरहिट हो सकती हैं, बशर्ते उनमें दमदार कहानी और बेहतर प्रस्तुति हो।

ओटीटी ने सिनेमा उद्योग के हर पहलू को प्रभावित किया है - बॉक्स ऑफिस, कंटेंट का स्तर, दर्शकों की पसंद और फिल्म निर्माण की शैली। हालाँकि, थिएटर का आकर्षण अभी भी बड़े बजट की फिल्मों के लिए बना हुआ है, लेकिन डिजिटल प्लेटफॉर्म का भविष्य और विस्तार निश्चित रूप से फिल्म इंडस्ट्री के लिए नए अवसर लेकर आ रहा है।

ओटीटी प्लेटफॉर्म पर कई ऐसी फ़िल्में हैं जो कम बजट में बनीं, लेकिन अपनी अनूठी कहानी और दमदार अभिनय के कारण बेहद लोकप्रिय हुईं। इनमें से कुछ फ़िल्में थिएटर में रिलीज़ न होकर ओटीटी पर रिलीज़ हुई। ओटीटी के कारण छोटे बजट की फिल्मों को अवसर मिला है कि वे भी अपनी बात असरदार ढंग से कह सकते हैं। उदाहरण के लिए न्यूटन, लापता लेडीज़, नील बटे सन्नाटा, लंचबॉक्स ये सभी फिल्में समाज की विभिन्न समस्याओं और पहलुओं को उजागर करती हैं। इनके अलावा, हिंदी में कई फ़िल्में हैं जो गंभीर सामाजिक मुद्दों पर आधारित हैं। इन फ़िल्मों ने समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है, जिससे दर्शकों में जागरूकता और संवेदनशीलता बढ़ी है। ओटीटी के कारण हिंदी फिल्मों को न केवल भारतीय भाषाओं की फिल्मों से बल्कि कोरियन, चाइनीज, हॉलीवुड और स्पेनिश वेब सीरीज से भी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है। अब दर्शकों की प्राथमिकताएँ बदल रही हैं—वे केवल बड़े सितारों की बजाय अच्छी कहानियों और मजबूत स्क्रिप्ट को महत्त्व दे रहे हैं।

वर्तमान दौर में हिंदी में कई ऐसी फ़िल्में बनी हैं जो समाज की गंभीर समस्याओं को दर्शाती हैं। जिसमें विविध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विषयों को लेकर फिल्में बनाई जा रही हैं। पहले फिल्मों में इतनी विविधता नहीं थी क्योंकि फिल्में केवल सिनेमाघरों में रिलीज होती थीं। लेकिन अब फिल्मों को देखने वाला दर्शक विभिन्न वर्गों से आता है और उसकी रुचियाँ भी अलग-अलग हैं। इसीलिए फिल्मों के विषयों में विविधता आयी है। उदाहरण के लिए 'आर्टिकल 15', 'मुल्क', 'कड़वी हवा', 'मट्टो की साइकिल', 'मसान' 'थप्पड़', 'अनारकली ऑफ आरा' इन फिल्मों के अलावा भी ऐसी अनेकानेक फिल्में ओटीटी पर उपलब्ध है जिनमें सामाजिक पहलुओं को दर्शाया गया है। इन फ़िल्मों ने समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है, जिससे दर्शकों में जागरूकता और संवेदनशीलता बढ़ी है।

अतः ओटीटी प्लेटफॉर्म्स ने न केवल मनोरंजन की दुनिया को नई दिशा दी है, बल्कि दर्शकों की सोच, रुचि और देखने के तरीके में भी व्यापक बदलाव किया है। यह माध्यम एक ओर परंपरागत सिनेमा को चुनौती दे रहा है, तो दूसरी ओर नए सृजनात्मक आयामों को जन्म दे रहा है। विषयवस्तु की विविधता, नए कलाकारों को अवसर और दर्शकों की पसंद के अनुरूप कंटेंट की उपलब्धता ने इसे अभूतपूर्व लोकप्रियता दिलाई है।

आज जब डिजिटल युग अपने चरम पर है, ओटीटी न केवल एक तकनीकी क्रांति का प्रतीक है, बल्कि यह उस सांस्कृतिक बदलाव का भी संकेतक है, जिसमें दर्शक अपनी स्वतंत्रता के साथ वह देख सकते हैं जो वे चाहते हैं। यह माध्यम कल्पनाओं को नये पंख देता है, सामाजिक विमर्श को नई धार प्रदान करता है और सिनेमा को उसकी जड़ों से जोड़ते हुए भविष्य की संभावनाओं की राह दिखाता है। ओटीटी प्लेटफॉर्म्स के इस युग में, सिनेमा अब केवल बड़े पर्दे का मोहताज़ नहीं रहा। यह अपनी नई पहचान के साथ, समय और स्थान की सीमाओं से परे, हर दर्शक तक अपनी पहुँच बना रहा है। ऐसे में, यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि ओटीटी केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक आंदोलन है, जो समाज की सोच को नया रूप देने की क्षमता रखता है।

एसोसिएट प्रोफेसर
पीईएस महाविद्यालय
फर्मागुडी, फोंडा, गोवा

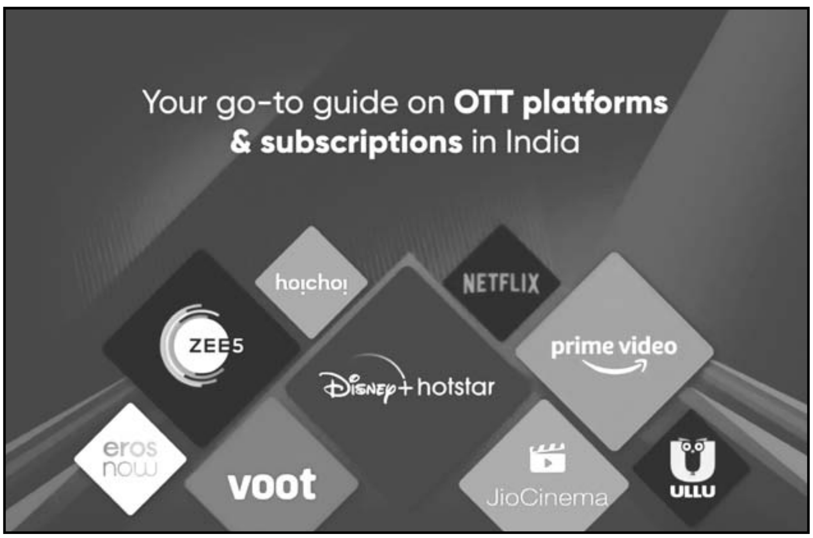

इंटरनेट से साभार

ओटीटी प्लेटफॉर्म द्वारा उत्पन्न सांस्कृतिक प्रभाव और वैश्विक कंटेंट का स्थानीयकरण

पूजा द्विवेदी

ओटीटी (OTT) प्लेटफार्म का मतलब "ओवर-द-टॉप" प्लेटफार्म होता है, जो इंटरनेट के माध्यम से कंटेंट जैसे कि वीडियो, ऑडियो, और मीडिया सेवाएँ प्रदान करता है। ओटीटी प्लेटफार्मों का उपयोग बिना पारंपरिक केबल या सैटेलाइट नेटवर्क के किया जाता है, जिससे उपयोगकर्ताओं को अपनी पसंद के कंटेंट को कहीं भी और किसी भी समय स्ट्रीम करने की स्वतंत्रता मिलती है।

ओटीटी (Over-the-Top) प्लेटफॉर्म्स जैसे नेटफ्लिक्स, अमेज़न प्राइम, डिज़्नी+हॉटस्टार, और अन्य, ने पिछले कुछ वर्षों में वैश्विक स्तर पर कंटेंट की खपत के तरीके को बदल दिया है। इसने न केवल दर्शकों को उनकी पसंदीदा सामग्री ऑन-डिमांड देखने की सुविधा प्रदान की है, बल्कि यह वैश्विक कंटेंट को विभिन्न संस्कृतियों और भाषाओं में प्रसारित करने का एक प्रभावी माध्यम भी बन गया है। इस लेख में हम ओटीटी प्लेटफॉर्म्स के द्वारा उत्पन्न सांस्कृतिक प्रभाव और वैश्विक कंटेंट के स्थानीयकरण के पहलुओं का विश्लेषण करेंगे, विशेष रूप से भारतीय संदर्भ में।

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स और सांस्कृतिक प्रभाव

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स की उपस्थिति ने वैश्विक सांस्कृतिक आदान-प्रदान को एक नई दिशा दी है। इन प्लेटफॉर्म्स पर वैश्विक कंटेंट का उपयोग और वितरण केवल मनोरंजन के स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक परिवर्तन का कारण भी बन रहा है। उदाहरण के लिए, अमेरिकी और यूरोपीय फिल्मों, वेब सीरीज़ और शोज़ का भारत में प्रसार, स्थानीय संस्कृतियों के लिए एक नई चुनौती प्रस्तुत करता है।

ओटीटी (ओवर-द-टॉप) प्लेटफार्म ने पिछले कुछ वर्षों में मनोरंजन और मीडिया उद्योग को एक नए रूप में बदल दिया है। इन प्लेटफार्मों ने फिल्म, टेलीविजन और वेब सीरीज जैसी सामग्री को इंटरनेट के माध्यम से सीधे दर्शकों तक पहुँचाया है, जिससे पारंपरिक टीवी चैनल्स और सिनेमा हॉल की भूमिका में बदलाव आया है।

सामग्री की विविधता : ओटीटी प्लेटफार्म पर विभिन्न प्रकार की सामग्री उपलब्ध है, जिससे लोग अपनी पसंद के हिसाब से शो और फिल्में देख सकते हैं। यह प्लेटफार्म विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, और शैलियों को बढ़ावा देता है, जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान में मदद मिलती है।

नए विचारों का प्रसार : ओटीटी प्लेटफार्म ने नए और अनकहे विचारों को प्रोत्साहित किया है। यह प्लेटफार्म स्वतंत्र फिल्म निर्माताओं और लेखक को अपनी कहानी कहने का मौका देता है, जिससे समाज में महत्त्वपूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर चर्चा होती है।

सामाजिक सशक्तिकरण : ओटीटी प्लेटफार्म पर महिलाओं, LGBTQ समुदाय, और अन्य हाशिए पर रहने वाले समूहों को बेहतर और सशक्त चित्रण मिलता है। इसने विविधता और समावेशिता को बढ़ावा दिया है, जिससे लोगों को अलग-अलग दृष्टिकोणों को समझने का मौका मिलता है।

लोकप्रियता में बदलाव : पारंपरिक मीडिया के मुकाबले ओटीटी प्लेटफार्मों ने मनोरंजन के तरीकों को बदल दिया है। अब लोग अपने समय और सुविधा के हिसाब से शो और फिल्में देख सकते हैं, जिससे उनकी जीवनशैली पर भी प्रभाव पड़ा है। साथ ही, युवा पीढ़ी ने ओटीटी प्लेटफार्मों को मुख्य रूप से पसंद किया है, जिससे पारंपरिक टीवी चैनल्स की लोकप्रियता में कमी आई है।

आधुनिक जीवनशैली का प्रचार : ओटीटी प्लेटफार्म पर दिखाए गए विषयों में अक्सर आधुनिक जीवनशैली, ग्लोबलाइज़ेशन, और तकनीकी विकास की छाप होती है। इसके कारण समाज में बदलाव आने लगे हैं, और लोग इन विचारों को अपनी जीवनशैली में अपनाने लगे हैं।

दुनिया भर में सांस्कृतिक सीमा का विस्तार : ओटीटी प्लेटफार्म्स ने सीमाओं को तोड़ा है, जिससे दुनिया भर की फिल्में, शोज, और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ आसानी से उपलब्ध हो पाती हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय दर्शकों ने कोरियाई ड्रामा (K-Dramas) और हॉलीवुड कंटेंट को स्वीकार किया है, जबकि वैश्विक दर्शकों ने बॉलीवुड और भारतीय वेब सीरीज को पसंद किया है।

इस तरह से ओटीटी प्लेटफार्म ने न केवल मनोरंजन के तरीके को बदला है, बल्कि संस्कृति, विचारधारा और समाज पर भी गहरा प्रभाव डाला है।

सांस्कृतिक विविधता का संवर्धन

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से विभिन्न देशों की संस्कृति, रीति-रिवाज और जीवनशैली भारतीय दर्शकों तक पहुँच रही है। जैसे कि "लुकआउट टॉवर" और "ब्रिजर्टन" जैसी शोज़ ने भारतीय दर्शकों के बीच पश्चिमी जीवनशैली, फैशन, और सामाजिक विषयों पर चर्चा को प्रेरित किया। इस प्रकार, ओटीटी प्लेटफॉर्म्स ने सांस्कृतिक बंधन को तोड़ा है और वैश्विक रूप से विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद की एक नई लहर शुरू की है।

स्थानीय संस्कृति पर प्रभाव

हालाँकि, वैश्विक कंटेंट का भारत में प्रसार भारतीय संस्कृति, भाषा और परंपराओं पर भी गहरे प्रभाव डाल रहा है। ओटीटी द्वारा प्रस्तुत पश्चिमी विचारधारा, जीवनशैली, और सामाजिक मान्यताएँ भारतीय पारंपरिक मान्यताओं के साथ टकरा सकती हैं। उदाहरण के तौर पर, "पात्रिया" जैसी शोज़ जो पारंपरिक परिवारों और उनके संघर्षों पर आधारित हैं, ने भारतीय समाज में पारंपरिक और आधुनिकता के बीच की खाई को उजागर किया है।

वैश्विक कंटेंट का स्थानीयकरण

स्थानीयकरण ओटीटी प्लेटफॉर्म्स का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है, जो वैश्विक कंटेंट को स्थानीय भाषाओं, परंपराओं और सांस्कृतिक संदर्भों के अनुरूप ढालने की प्रक्रिया है। यह दर्शकों को वैश्विक कंटेंट से जुड़ने और उसे समझने में मदद करता है।

भाषाई अनुकूलन

एक महत्त्वपूर्ण पहलू जो ओटीटी प्लेटफॉर्म्स में देखा गया है, वह है कंटेंट का अनुवाद और डबिंग। उदाहरण के लिए, नेटफ्लिक्स ने अपनी अधिकांश प्रमुख शोज़ को हिंदी, तमिल, तेलुगु, और अन्य भारतीय भाषाओं में डब किया है, ताकि वे भारतीय दर्शकों के लिए सुलभ और समझने योग्य हो सकें। इस प्रकार, दर्शकों को अपनी स्थानीय भाषा में वैश्विक कंटेंट का आनंद लेने का अवसर मिलता है।

सांस्कृतिक स्थानीयकरण

स्थानीयकरण केवल भाषाई अनुवाद तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें सामग्री का सांस्कृतिक अनुकूलन भी शामिल है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी कंटेंट में भारत की सामाजिक संरचना, रीति-रिवाजों और पारंपरिक विचारों को शामिल किया गया है, जिससे स्थानीय दर्शकों के लिए कंटेंट अधिक सामंजस्यपूर्ण हो जाता है। नेटफ्लिक्स की "Sacred Games" जैसी शोज़ ने भारतीय संदर्भों को सही तरीके से चित्रित किया और भारतीय दर्शकों के बीच एक मजबूत संबंध स्थापित किया।

सामाजिक मुद्दों का अनुकूलन

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स ने भारतीय समाज के सामाजिक मुद्दों जैसे धर्म, जातिवाद, लैंगिक समानता, और पारिवारिक मूल्यों को प्रमुखता दी है, जो पारंपरिक मीडिया में कम ही देखा जाता है। "मिर्ज़ापुर" और "दिल्ली क्राइम" जैसी शोज़ ने भारतीय समाज की जटिलताओं को वैश्विक मंच पर पेश किया। यह न केवल भारतीय दर्शकों के लिए सांस्कृतिक संदर्भ में प्रासंगिक है, बल्कि वैश्विक स्तर पर अन्य दर्शकों को भारतीय समाज के बारे में जागरूक भी करता है।

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स और भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय मीडिया और मनोरंजन उद्योग में कई बदलाव किए हैं। जहाँ एक ओर यह भारतीय दर्शकों को वैश्विक स्तर पर कंटेंट का अनुभव करवा रहा है, वहीं दूसरी ओर यह भारतीय मीडिया की सांस्कृतिक पहचान को चुनौती भी दे रहा है। पारंपरिक भारतीय टीवी चैनल की प्रोग्रामिंग शैली और उनके कंटेंट को ओटीटी द्वारा उत्पन्न नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

नई पीढ़ी की आदतें

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स ने खासकर युवाओं में एक नई मीडिया खपत की आदतें विकसित की हैं। वे अब पारंपरिक टीवी चौनलों के बजाय ऑन-डिमांड कंटेंट को प्राथमिकता देते हैं, जिससे भारतीय टीवी चैनल्स की टीआरपी और विज्ञापन आय पर दबाव पड़ रहा है। यह एक सांस्कृतिक परिवर्तन का संकेत है, क्योंकि अब भारतीय दर्शक पारंपरिक चैनलों के बजाय डिजिटल कंटेंट के प्रति अधिक आकर्षित हो रहे हैं।

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स का सांस्कृतिक प्रभाव और वैश्विक कंटेंट का स्थानीयकरण दोनों ही भारतीय मीडिया पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल रहे हैं। जबकि ये प्लेटफॉर्म्स भारतीय दर्शकों को वैश्विक कंटेंट के साथ जुड़ने का अवसर प्रदान कर रहे हैं, वहीं ये भारतीय समाज में संस्कृति और विचारधाराओं के बीच एक संतुलन बनाने की चुनौती भी पेश कर रहे हैं। ओटीटी प्लेटफॉर्म्स के द्वारा उत्पन्न सांस्कृतिक बदलावों के साथ-साथ, उनका स्थानीयकरण इस बात की पुष्टि करता है कि डिजिटल मीडिया की बढ़ती भूमिका भविष्य में स्थानीय और वैश्विक संस्कृतियों के बीच एक पुल का कार्य करेगी।

संदर्भ सूचीः

1. Netflix India. (2021). Sacred Games and Cultural Representation
2. Impact of OTT Platforms on Traditional Media by Kumar, R. (2020).
3. Global Content and Localization in India: A Study by Sharma, S. (2022).
4. OTT: Changing Media Consumption Habits in India by Gupta, A. (2021).

(यह आर्टिकल ओटीटी प्लेटफॉर्म्स के बढ़ते प्रभाव और सांस्कृतिक परिवर्तन के विश्लेषण पर आधारित हैं, जो मीडिया, समाजशास्त्र, या डिजिटल कंटेंट के क्षेत्र में शोध प्रकाशित करता है।)

शोधार्थी
हिंदी विभाग, दक्षिणी परिसर
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

सोहराब मोदी : भारतीय इतिहास को सिनेमा के पर्दे पर जीवंत करने वाला व्यक्तित्व

आकांक्षा

शोध सार : इतिहास वर्तमान समाज को समझने और भविष्य की राह दिखाने में हमारी मदद करता है। ''सोहराब मोदी'' उन चुनिंदा फिल्म निर्माताओं में से एक थे जिन्होंने ऐतिहासिक फिल्मों के माध्यम से इतिहास को जीवंत रूप प्रदान किया और व्यापक लोगों तक पहुँचाने का प्रयास किया। सोहराब मोदी ने इतिहास को इस अंदाज से पर्दे पर पेश किया कि उनको ही एक ऐतिहासिक शख्सियत के रूप में संदर्भित किया जाने लगा था। सोहराब मोदी की असाधारण आवाज और उनकी ऐतिहासिक सिनेमाई कहानी ने भारत के अतीत के प्रति रूचि को पुनर्जीवित किया। राष्ट्र आन्दोलन के समय उनकी फिल्मों ने न केवल भारतीय राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया बल्कि हिंदू-मुस्लिम एकता और सांस्कृतिक समन्वय का भी संदेश दिया। मोदी का सिनेमा ''उर्दू राष्ट्रवाद, पारसी विरासत और भारतीय एकता का प्रतीक है।

बीज शब्दः ऐतिहासिक, सिनेमा, भारतीय, संवाद, फिल्म, अभिनय, राष्ट्र आंदोलन, सोहराब मोदी।

सोहराब मोदी का जन्म 2 नवम्बर 1897 को बॉम्बे में हुआ, वे एक रूढ़िवादी पारसी परिवार में 11वें बच्चे थे। एक बच्चे के रूप में उन्होंने उर्दू सीखने में घंटों बिताए जिससे न केवल एक कौशल विकसित हुआ, बल्कि शानदार उच्चारण भी हुआ। अपना स्कूली जीवन समाप्त करने के बाद वे अपने भाई केकी मोदी के साथ 16 वर्ष की आयु में ग्वालियर आए और लोगों को घूम-घूमकर अपने प्रोजेक्टर से फिल्म दिखाने लगे। यहीं से वो फिल्मी दुनिया से परिचित हुए।

सोहराब मोदी मूलतः पारसी रंगमंच के एक कलाकार थे, बाद में हिंदी सिनेमा के बहुचर्चित अभिनेता, निर्देशक और निर्माता बने। पारसी रंगमंच से जुड़े होने के कारण ही उनमें भारतीय इतिहास कथाओं के प्रति काफी मोह था क्योंकि पारसी रंगमंच पर भी ज्यादातर ऐतिहासिक नाटक ही होते थे। अपने इस संस्कार को सिनेमा में उन्होंने और भी विस्तार और विविधिता दी। सोहराब मोदी की जादुई आवाज भारतीय सिनेमा के इतिहास में एक अनमोल धरोहर मानी जाती है। उनकी आवाज में एक विशेष प्रकार का गुरुत्व और गहराई थी जिसने उनके किरदारों को और भी जीवंत और प्रभावशाली बना दिया। उनकी संवाद अदायगी की शैली अद्वितीय थी उनके संवादों पर दर्शक मुग्ध हो जाते थे। उनकी आवाज में सम्मोहन था शायद इसीलिए उन्हें फिल्म संसार का 'शेर' माना जाता था। एक शेर की-सी गूँज उनकी आवाज का जादू थी। सोहराब मोदी की पत्नी व अभिनेत्री मेहताब के शब्दों में ''झाँसी की रानी फिल्म में मैंने सोहराब के साथ काम किया था, लेकिन उनकी आवाज इतनी आकर्षक और गहरी थी कि मैं उनके सामने काम करने से डरती थी।''

जब उनकी फिल्म 'शीश महल' किसी हॉल में चल रही थी तब वे खुद वहाँ मौजूद थे। 'जब उन्होंने देखा कि आगे की पंक्ति में एक दर्शक आँखें बंद किए हुए हैं मानो उसे वह फिल्म पसंद नहीं आ रही है जब उससे पूछा गया तब उसने बताया कि वह दर्शक वास्तव में अंधा है और केवल संवाद सुनने के लोभ से बैठा है। उनकी संवाद अदायगी में उर्दू के शब्द और उनके उच्चारण की शुद्धता ने उनके किरदारों को और उनकी फिल्मों को अमर बना दिया। वे अपने संवादों के कारण आज भी याद किए जाते हैं। यहूदी फिल्म में सोहराब मोदी द्वारा बोला गया उनका सबसे प्रसिद्ध संवाद थाः-

''तुम्हारे लिए ही पैदा हुए दुनिया के नज़ारे, चमकते हैं तुम्हारी रोशनी से चाँद और सितारे, तुम्हारा गम है गम, औरो का गम ख्वाबों-ओ-कहानी है तुम्हारा खून है खून, हमारा खून पानी है।''

लेकिन ये बड़ी अजीब बात है कि शुरू में सोहराब मोदी के लिए इतिहास सबसे अप्रिय विषय था। मोदी जी इस बात का अफसोस करते थे कि स्कूल में रहते हुए उन्होंने इतिहास को गंभीरता से नहीं लिया। वे कहते हैं कि मैंने ऐतिहासिक फिल्मों को ज्यादा महत्त्व दिया क्योंकि जब वे स्कूल में थे तो उन्हें इतिहास की कक्षाओं से नफ़रत थी। वे इतिहास पढ़ने को निरर्थक मानते थे। उनको लगता था कि इतिहास पढ़ना समय खराब करना है। लेकिन जब वह फिल्म जगत में आए तब उनको यह अहसास हुआ कि इतिहास में कितना ज्ञान भरा हुआ है और अपने इतिहास के ज्ञान से हम वर्तमान व भविष्य को सहज और सरल बना सकते हैं। ऐसे ही उनके मन में आया कि बहुत से ऐसे ही लोग होंगे जो इतिहास पढ़ना नहीं चाहते होंगे। तब मोदी ने इतिहास को आधार बनाकर फिल्मों का निर्माण किया। सिनेमा के माध्यम से इतिहास को व्यापक लोगों तक पहुँचाने का प्रयास किया और वे हिंदी सिनेमा के एक महान ऐतिहासिक फिल्मकार बनें।

आरंभ में वे नाटकों और फिल्मों में छोटी-मोटी भूमिकाएँ करते थे। वे एक एक्स्ट्रा के रूप में जाने जाते थे। सोहराब मोदी की प्रमुख ऐतिहासिक फिल्म निर्माण की यात्रा सन् 1935 से शुरू हो जाती है। इस वर्ष उन्होंने शेक्सपीयर के नाटक 'हैमलेट' पर आधारित 'खून का खून' फिल्म बनाई। 1936 में दूसरी फिल्म 'सादे हवस' जो शेक्सपियर के अन्य नाटक 'किंग जॉन' पर आधारित थी। इन फिल्मों से सोहराब को शेक्सपीरियन के रूप में काफी ख्याति भी मिली और उन्हें एक सशक्त अभिनेता के रूप में स्थापित किया। उसके बाद उन्होंने सन् 1936 में मिनर्वा मूवी टोन की स्थापना की। उनकी प्रारंभिक फिल्में सामाजिक समस्याओं पर विशेष रूप से आधारित थी जैसे 'मीठा

जहर', 'तलाक' भरोसा, कुंदन आदि। लेकिन दर्शकों को उनकी ऐतिहासिक फिल्मों ने ज्यादा आकर्षित किया। उनका डील-डौल भी कुछ इस तरह का था कि वे राजा की भूमिका में बहुत फबते थे। 1939 में सोहराब द्वारा 'पुकार' फिल्म बनाई गई जो जहाँगीर की न्याय व्यवस्था को दर्शाने वाली फिल्म थी। फिल्म में बादशाह जहाँगीर एक सामान्य स्त्री की पुकार पर अपनी बेगम को दंड देता है। भारतीय इतिहास की यह बड़ी घटना है। इस घटना को आधार बनाकर बनाई गई इस फिल्म की काफी प्रशंसा की गई। यह सोहराब की श्रेष्ठतम फिल्म मानी जाती है। इसमें मोदी ने वीर राजपूत राजा संग्राम सिंह की भूमिका निभाई थी। इस फिल्म के ज्यादातर दृश्य मुगलों द्वारा बनाए गए वास्तविक स्थानों पर फिल्माए गए थे। फिल्म की कहानी मशहूर फिल्मकार अमरोही ने लिखी थी।

इससे अगली भव्य फिल्म ''सिकंदर'' (1941) सोहराब मोदी की सबसे प्रसिद्ध फिल्म मानी जाती है। सिकंदर जिसमें पृथ्वी राज कपूर ने अविस्मरणीय अभिनय किया था। यह कहानी अलेकजेंडर और पोरस के संघर्ष पर आधारित थी। इस फिल्म में इतने भव्य सेट्स लगाए गए थे कि वह किसी हॉलीवुड फिल्म से किसी मायने में कम नहीं थे। एक ब्रिटिश लेखक ने यहाँ तक कहा कि यह एक मास्टरपीस है और इसे देखकर इंग्लिश फिल्म 'बर्थ ऑफ अ नेशन' की याद आ जाती है। इस फिल्म में नाटकीयता और संवाद इसके सबसे प्रभावशाली पक्ष थे। इस फिल्म में सोहराब मोदी ने पोरस की भूमिका निभाई थी। सोहराब मोनी ने इस फिल्म में युद्ध के दृश्यों को हॉलीवुड फिल्मकारों की मदद से फिल्माया था। इस फिल्म की देश ही नहीं विदेशों में भी प्रशंसा हुई। इस फिल्म की रिलीज का समय ऐसा था जब एक तरफ द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था और दूसरी तरफ गाँधी जी देश में स्वतंत्रता संग्राम शुरू करने की तैयारी में थे। ऐसे में सोहराब मोदी की इस फिल्म ने देशभक्ति की भावना पैदा की और एक डायलॉग ने जनता में भरपूर जोश भर दिया :-

''सिकंदर तूने मेरी धरती पर कदम रखा है,
अब तुझे इसका जवाब देना होगा।''

सोहराब ने पुकार, सिकंदर और पृथ्वी वल्लभ जैसी फिल्मों की त्रयी बनाई जो ऐतिहासिक कहानी पर आधारित है। 'पृथ्वी वल्लभ' (1943) यह फिल्म प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री के.एम. मुंशी के उपन्यास पर आधारित थी। इस फिल्म की विशेषता सोहराब मोदी के साथ दुर्गा खोटे ने अभिनय किया था। वे मृणालवती बनी थीं। पहले फिल्म में मोदी का अपमान हर तरह से करने का प्रयास करती है और बाद में उनसे प्रेम करने लगती है। यह फिल्म दो राजाओं की कहानी है-अवंतिपुर के न्याय प्रिय और दयालु राजा पृथ्वी वल्लभ और उनके पड़ोसी क्रूर राजा तैलप। फिल्म में सोहराब मोदी ने पृथ्वी वल्लभ की भूमिका निभाई थी। यह फिल्म उस समय के दर्शकों को खूब पसंद आई थी।

1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित उनकी फिल्म 'झाँसी की रानी' (1953) भारत की पहली टेक्नीकलर फिल्म थी, जिसके लिए हॉलीवुड से विशेषज्ञ बुलाए गए थे। 1857 पर हिंदुस्तान में बनी फिल्मों में सोहराब मोदी की यह फिल्म पहली ऐसी फिल्म है जिसके बारे में लिखित सामग्री उपलब्ध है। इस फिल्म में अंग्रेजों की मक्कारियों, कुचक्रों, षड्यंत्रों और देशी राज्यों को हड़पने की नीति और उसके दुष्परिणामों का चित्रण किया था। फिल्म का उद्देश्य रानी लक्ष्मीबाई की भूमिका और उसके समय की परिस्थितियों को दर्शाना था। फिल्म के निर्देशक सोहराब मोदी ने खुद अपनी फिल्म में राजगुरु की भूमिका निभायी थी जबकि रानी लक्ष्मी बाई का रोल उनकी पत्नी व अभिनेत्री मेहताब ने निभाया था। इस फिल्म में दिया गया देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम, साम्प्रदायिक एकता का संदेश दर्शकों के हृदय को छू लेने वाला था। सबकुछ बेहतरीन होने के बावजूद यह फिल्म असफल सिद्ध हुई।

एक बड़ी फिल्म फ्लॉप होने के बाद भी सोहराब मोदी रूके नहीं और 1954 में एक शायर के जीवन पर फिल्म बनाई। 'मिर्ज़ा गालिब' (1954) यह फिल्म अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के जमाने के एक मशहूर शायर मिर्ज़ा गालिब के जीवन पर बनी थी, जिसे उसी वर्ष सर्वोत्तम पुरस्कार के रूप में राष्ट्रपति का स्वर्णपदक मिला। एक रिपोर्ट के अनुसार, तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को यह फिल्म इतनी पसंद आई कि स्मारक समारोह में उन्होंने फिल्म की नायिका सुरैया की तारीफ करते हुए कहा ''तुमने मिर्जा गालिब की रूह को जिंदा कर दिया।'' विस्तार से देखने की अपनी नज़र से मोदी ने एक बार फिर बहादुर शाह ज़फ़र के शाही दरबार की भव्यता और पुरानी दिल्ली की गलियों के माहौल को फिर से बनाया, जहाँ कवि रहते थे। फिल्म में मिर्ज़ा गालिब का किरदार भारत भूषण ने निभाया था।

ऐसी ही एक और फिल्म नौशेरवान-ए-आदिल 1957 में रिलीज़ हुई यह एक ऐतिहासिक ड्रामा फिल्म है, जो सासानी साम्राज्य के राजा नौशेरवान की न्यायप्रियता और उनके शासनकाल की कहानियों पर आधारित है। सोहराब मोदी ने अन्य फिल्मों की तरह इसमें भी भव्य सेट और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को बखूबी दिखाया है यह पुकार फिल्म से मिलती-जुलती है।

ऐतिहासिक घटनाओं अथवा व्यक्तियों पर फिल्म बनाना एक निहायत चुनौतीपूर्ण काम था और सोहराब मोदी ने इस काम को बखूबी निभाया है। उनकी अन्य उल्लेखनीय फिल्में थीं... खून का खून (1935), जेलर (1938), शीश महल (1950), कुंदन (1955), राजहठ (1956), यहूदी आदि। अशोक सम्राट पर भी वे फिल्म बनाना चाहते थे और इसकी तैयारी भी लगभग पूरी हो चुकी थी। लेकिन कुछ मतभेदों के कारण यह फिल्म नहीं बन पाई शायद बनती तो वह भी ऐतिहासिक क्लासिक फिल्म होती।

सन् 1980 में उन्हें सिनेमा का सर्वोच्च सम्मान ''दादा साहेब फाल्के'' पुरस्कार प्रदान किया गया था। वे इस सम्मान को पाने वाले दसवें लेजेंड थे। उनकी मृत्यु 28 जनवरी, 1984 को हुई थी जब वे 86 वर्ष के थे। सोहराब मोदी भारतीय सिनेमा की विरासत में एक विशेष स्थान रखते हैं। उनकी फिल्में भारत के इतिहास का एक सुनहरा दस्तावेज़ है जो भारत के इतिहास के बिना तरोड़-मरोड़ बिना किसी वाद-विवाद के साक्षात् दर्शन कराती है। लेकिन उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वह पहचान नहीं मिली जो अन्य हिंदी फिल्म निर्देशकों को मिली और आज के व्यवसायिक सिनेमा के युग में सोहराब मोदी के योगदान को भुला दिया गया है। लेकिन हिंदी सिनेमा का इतिहास ''सोहराब मोदी'' के अध्याय के बिना हमेशा अधूरा कहलायेगा।

"डूब मरो इस इस इंसाफ पर
आंसू बहाओ इस कानून पर
जो कमजोरों के लिए तलवार की धार है
और जबरदस्त के लिए बांके बहार है,
जो तेरे लिए नग़्मा-ए-साज
और हमारे लिए मौत की आवाज़ है"

(यहूदी फिल्म से लिया गया सोहराब मोदी का एक प्रसिद्ध डायलॉग)

संदर्भ सूचीः

1. फिल्म डिवीजन की डॉक्यूमेंट्री, सोहराब मोदी, निर्देशक : यश चौधरी।
2. अमृत गंगर, द लीजेड्स ऑफ इंडियन सिनेमा : सोहराब मोदी, विजडम ट्री, नई दिल्ली, 2008
3. डॉ. सी. भास्कर राव, भारतीय सिनेमा : शिखर सम्मान, दादा साहब फाल्के पुरस्कार विजेता, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली
4. अमीता मलिक, सोहराब मोदी, डॉयन ऑफ इंडियन सिनेमा, अमिता मलिका का साक्षात्कार, आकाशवाणी, 8 जून 1980, पृ. 28
5. डॉ. चंद्रभूषण गुप्त, अंकुर, सिनेमा और इतिहास, शशि प्रकाशन, ग़ाजियाबाद, 2012
6. देखें, सोहराब मोदी निर्देशित हिंदी फिल्म पुकार, 1939
7. देखें, सोहराब मोदी निर्देशित हिंदी फिल्म सिकंदर, 1941
8. देखें, सोहराब मोदी निर्देशित हिंदी फिल्म पृथ्वी वल्लभ, 1943
9. देखें, सोहराब मोदी निर्देशित हिंदी फिल्म झाँसी की रानी, 1953
10. देखें, सोहराब मोदी निर्देशित हिंदी फिल्म नौशेरवां-ए-आदिल, 1957

शोधार्थी
इतिहास विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय
रीवा, मध्यप्रदेश

●

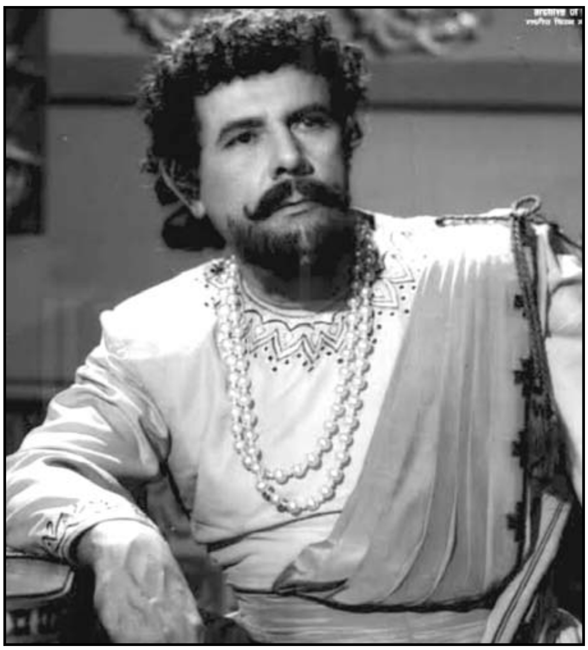

सोहराब मोदी
इंटरनेट से साभार

'बिट्टी'
(कुंठित समाज के नागपाश से ग्रसित नारी की हृदयग्राही कथा)

वीणा विज 'उदित'

अरे ओ बिट्टी, कहाँ दौड़ाए लिए जा रही हो हमें? कहते हुए बाला ने तनिक रुक कर साँस लिया और बिट्टी का हाथ छोड़ सामने फैली हरियाली को आँखों में भरा। दूर-दूर तक फैले खेतों की मुंडेरों पर वे दोनों दौड़-दौड़कर हाँफने लगी थीं। बाला ने देखा कि सामने लंबी-लंबी लाइनों में तरह-तरह की सब्जियाँ लगी थीं। बिट्टी ने आगे बढ़कर जमीन के भीतर से पत्ते खींचकर कुछ मूलियाँ निकालीं। और बाला से पूछने लगी,

''तुम मिट्टी से भरी मूलियां, गाजर पकड़ोगी?''

बाला ने ''हाँ'' कहकर झट से उन्हें पकड़ लिया। और कौतूहलता भरी खुशी से बोली, ''अरे वाह! हमारे शहर में तो सब्जीवाली बाई सिर पर टोकरा उठाए सब्जी बेचने हर दिन आती है और हमारे बाबूजी तो बेहद चाव से सब्जी-भाजी, तरकारी अपने हाथ से चुन-चुन कर लेते हैं। और यहाँ....हम अपने हाथों से मूली, गाजर, हरे प्याज खेत में से निकाल रहे हैं। जिसमें मिट्टी की महक व्याप्त है। बिट्टी, मैं तो धरती माँ के खजाने को देखकर हैरान हूँ।''

कुछ कदम आगे जाने पर पानी का पंप था। वहाँ बिट्टी ने आदतन अच्छे से इन सब को धोया और मिट्टी साफ करी। बाला ने भी रहट सिंचाई का ढंग देखा—बड़े-बड़े बाल्टी नुमा टीन के डब्बे गोल-गोल घूमते चक्के पर लगे थे और खेतों को पानी दे रहे थे। यह सब देख कर वह आनंदित व आश्चर्यचकित थी।

बाला अपने बाबूजी के साथ पंजाब-हरियाणा आई थी रतनगढ़ में, जहाँ बाबूजी के ताऊजी का परिवार रहता था। बरसों बीत गए थे, विभाजन के बाद उन्हें एक-दूसरे से अलग हुए। कभी-कभी पोस्ट कार्ड में कुशल-क्षेम पूछते- पूछते उनका बचपन का प्यार उमड़ पड़ा था और बाला के बाबूजी को अपने सगों और गाँव की अपनी पुरानी जीवन-शैली की इतनी याद आई कि वे अपने सगे संबंधियों को मिलने बाला को साथ लेकर ट्रेन से चल पड़े थे।

बिट्टी और बाला हम उम्र थीं। बिट्टी ने आते ही बाला का हाथ पकड़ा और संग ले गई थी। बीती रात बारिश होकर हटी थी, निरभ्र आकाश की खिली धूप में दूर तक फैली खेतों और खलिहानों की हरियाली नहाई हुई चमक रही थी। पौधों की पत्तियाँ धुलकर खिलखिला रही थीं और उन दोनों की हँसी में सम्मिलित हो रही थीं। बाला ने पत्तों वाली एक गाजर वहीं पंप पर धोकर, मुँह में किरच-किरच करके खाना आरंभ कर दी थी। इतनी मीठी गाजर-! उसके मीठे स्वाद से उसका मन आह्लादित हो उठा था और उसको सारा खेत ही मिठास भरा लग रहा था। वह सोच रही थी कि वह लोग शहरों में विस्थापित होकर इन प्रकृति प्रदत्त सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं और नैसर्गिक सौंदर्य का बोध ही नहीं कर पाते हैं। मोहल्लों में रहकर आसपास फैला कूड़ा -करकट ही देखते रहते हैं! एक दिन भी मेहतरानी आकर गली-कूचे ना बुहारे तो नथुनों से टकराती हवा गंदगी अपने संग बहा कर लाती है, एहसास कराने के लिए। जबकि यहाँ खुले आसमान के नीचे हरे-भरे खेत लहलहा रहे थे और शीतल मलय आकर चारों ओर से उसे घेरकर अपनी सोंधी सुगंध में नहला रही थी।

बाला ने देखा घर के सभी लोग अपने काम के लिए बिट्टी को बुलाते रहते और वह चतुर खिलाड़ी की तरह सब काम पलक झपकते कर देती थी। वह सबकी चहेती थी। हाँ, उसका पहनावा कुछ अलग था। वह बाला की तरह चुस्त और टाइट कपड़ों की जगह, ढीली-ढाली सलवार कमीज पहनती थी। और ढोडी को चुन्नी में लपेटते हुए, सिर को ढँके रहती थी, मानो अरब देश की लड़की हो। लेकिन इस पहनावे में सबसे अलग हटकर, और प्यारी लगती थी। बाला को वह इतने अपनत्व से मिली थी मानो बहुत बरसों से उसे जानती हो।

बिट्टी सौंदर्य की प्रतिमा नहीं थी, बल्कि सीधी-सादी साधारण गेहुँआ रंग की एक सरल, निर्मल चित्त, अल्हड़ लड़की थी गाँव की, जो सारा समय अपने चेहरे पर हँसी ओढ़े रहती थी, सबकी लाडली! बाला को उसका यही सीधा पन, चेहरे पर बिखरी मधुर हँसी भा रही थी। बड़े ताऊजी, बढ़िया पगड़ी बाँधे हुए रोआबदार बुजुर्ग थे, जिनके चेहरे पर भतीजे के आने की खुशी की लाली दहक रही थी। बिट्टी उन्हीं की छोटी पोती थी। गाँव के सरपंच होने के कारण उनके घर में जश्न जैसा माहौल था।

चार दिन वहाँ ठहरने के बाद इनका अगला पड़ाव सिढोरा था। जहाँ बाबूजी की जमीनें थीं जो पाकिस्तान से आए विस्थापितों को सरकार ने क्लेम में दी थीं और जिन्हें उनके कहने पर बड़े भाई संभाल रहे थे। साथ ही बहुत बढ़िया बेकरी भी चला रहे थे। छोटे भाई को देखकर उनके पाँव भी जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। रिश्तों के मायने, अब बाला भी समझ पा रही थी कि बेशक दूरियाँ हो लेकिन यदि दिल करीब हैं तो दूरियाँ कुछ मायने नहीं रखती हैं। अपने फिर भी अपने ही होते हैं।

वहाँ से एक दिन के लिए यह लोग अंबालासिटी, बाला की दादी की पक्की सरदारनी सहेली और उनके परिवार को मिलने गए। दादी की वह चुन्नी वट्ट सहेली थीं। यानी दो सहेलियाँ जब आपस में चुन्नी (दुपट्टा) बदल लेती थीं तो वह आपस में पक्की सहेलियाँ बन जाती थीं। इन दोनों के वहाँ पहुँचने पर उन्होंने तो आसमान सिर पर उठा लिया था। माता जी और उनके तीनों बहू-बेटे, इनको घेरकर बैठ गए थे। उनके बारीक जज़्बातों ने कसीदे से सजे अल्फ़ाज़ों के

पैरहन पहने हुए थे। जिससे बाबूजी का इतनी दूर पंजाब आना उनके अतीत की यादों में उन्हें ले गया था। कहीं गहरे दिल में बसी कोई संवेदना उभर कर बाहर मुँह निकाल रही थी।

जीवन यथार्थ में जीने के अलावा और अधिक शिद्दत से कल्पना में उड़ान भरता है! लेकिन यहाँ बाबू स्मृति-पुंज से झाँकती अपने बाल्यकाल की घटनाओं में खो गए थे। सुनाने लगे कि उनकी माँ ने इनकी माँ से चुन्नी(दुपट्टा) बदल ली थी दोनों एक जैसी डील-डौल की भी थीं। जब वह छोटे थे और बाहर से खेलते आए तो आकर माँ के दुपट्टे में उनकी छाती में मुँह छुपाने लगे तो दोनों सहेलियाँ खिल-खिलाकर हँसी! इस पर बाल सुलभ उत्सुकता से उन्होंने दुपट्टे से मुँह निकाल कर बाहर देखा तो वह उनकी अम्मा नहीं थी। यह दुपट्टा बदलने का कमाल था। उस जमाने में औरतें दुपट्टे की बुक्कल मारती थीं अर्थात दुपट्टे से पीठ माथा और ऊपर का पूरा हिस्सा ढँक लेती थीं। वे हर लिहाज से जमीन से जुड़ी औरतें होती थीं। वैसे भी संयुक्त परिवार के कारण चूल्हे - चौके का काम करते हुए भी उनके चेहरे पर आधा घूँघट रहता था। बच्चे ही क्या, बड़े-बूढ़ों को भी उनके पहनावे याद हो जाते थे।

अपनों के समीप्य की मीठी अनुभूति से एक तृप्ति का अहसास संजो कर बाला और उसके बाबूजी ढेरों सौगातें लेकर घर वापस लौट आए थे। जिनमें अपनों के प्रेम की खुशबू थी। अपने खेत के गन्नों का मेवों से भरे गुड़ की पेसियों का पीपा(टिन) और एक पीपा ताऊ की बेकरी के बिस्कुटों का भरा हुआ था। उन दिनों सफर में सूटकेस नहीं होते थे। लोग टीन का ट्रंक सफर में ले जाते थे। अब पीपे भर कर खाने का सामान साथ आया था।

बाला की बुआ शहर में ही रहती थीं। बाबूजी और माँ उन्हें मिलने और पंजाब की सौगात देने उनके घर गए तो वे भी बचपन की यादों से उद्वेलित हो, विस्मृत हो चुकी अतीत की गलियों में पुनः विचरण करने लग गई थीं। उनके तीन बेटे थे। अब बीच वाले बेटे गोपी की विवाह योग्य आयु थी, तो उनके मन में एक इच्छा ने जन्म लिया कि क्यों ना बिट्टी को अपने घर की बहू बनाकर अपने रिश्तों को नया रूप प्रदान किया जाए!! जब उन्होंने भाई से विचार साझा किया, तो वह भी यह प्रस्तावना सुनकर प्रसन्न हो गए। उन्हें विश्वास था कि बिट्टी के घर में इस प्रस्तावना का स्वागत होगा! बाला को बुआ ने बुला भेजा कि उसे बिट्टी कैसी लगी? स्वभाविक था बाला ने उसकी बहुत प्रशंसा करी, वह नादान भाग्य की चपल चाल को कहाँ समझ पाई थी!!

आनन-फानन में गोपी और बिट्टी का ब्याह पक्का कर दिया गया। वहाँ किसी तरह की पूछताछ की कोई आवश्यकता किसी को महसूस नहीं हुई। वैसे भी उन दिनों परिवारों की तसल्ली बहुत बड़ी बात होती थी। फिर वह तो बाला की बुआ का अपना मायका परिवार था। विभाजन के पूर्व सब एक ही गाँव में पास-पास रहते थे। अब जहाँ भाग्य ले आया था सब वहीं बस गए थे। दूर थे कहने को, पर दिलों में दूरी नहीं आ पाई थी। पंजाब में कहते हैं ''जिस जमीन को हमने लताड़ना है समय का घटना चक्र ऐसे ही घूमता है कि इंसान वही पहुँचता है, उसी जमीन पर रहने'' और फिर कहता है ''जो करे करतार'' अर्थात ईश्वर की यही मर्जी थी।

लो जी, आती अक्टूबर में बाला के फूफा जी नाते-रिश्तेदारों के साथ गोपी भैया की बारात लेकर रतनगढ़ पहुँच गए। इन लोगों का जोश और उत्साह देखने योग्य था। उधर आवभगत भी जम के हुई थी कि तारीफों के पुल बांधे जा रहे थे लंबे-ऐ-लंबे। गोपी भैया के सपने इंद्रधनुषी हो रहे थे वे दुल्हन को देखने को बहुत उतावले थे लेकिन गाड़ी के डिब्बे में उनको मौका ही नहीं मिला। केवल लाल चूड़े वाले हाथ को मौका मिलने पर पास बैठे सहला कर, अधीरता जता देते थे अपनी दुल्हन को। और जवान बिट्टी भी बिन कहे, उनकी मन की आवाज को सुन पा रही थी और संवेदनाओं को महसूस कर रही थी। केवल यही छुअन उसे सांत्वना दे रही थी कि वह एक नए देश के नवीन परिवेश में बसने जा रही है इसी छुअन के भरोसे! चाहत तो बिट्टी की भी यही थी कि वह अपने प्रियतम को आँचल बना के तन से लपेट ले। आंखिर दो जवान दिलों का यह प्रथम मिलन होना था! खैर लंबे सफर के बाद अगली रात घर पहुँच कर बड़े से घूँघट के दोहरे पल्ले से चेहरा ढकें उनका गृह-प्रवेश हुआ और कुछ रस्मो-रिवाज के बाद उनकी सुहागरात के लिए उन्हें कमरे में छोड़ दिया गया।

अरमानों भरी रात ने सिंगार किया और भावों के कंचन को कुंदन बना दिया उनके मिलन ने! बिट्टी को लगा, वो सदियों से प्यासी नदी थी जो आज सागर से मिलकर एक ही रात में अपनी जिंदगी जी गई थी। रात्रि के अंधकार में वह गोपी की बाँहों में लिपटी आनंद की चरम सीमा की संवेदना में खो गई थी।

खिड़की की फाँक से जब भानु के उदय होने के पूर्वाभास के छींटों ने उसकी उनींदी आँखों पर प्रकाश बिखेर दिया तो वह झटके से उठ कर बैठ गई और घबराकर अपनी अस्त-व्यस्त हालत को ठीक किया। जल्दी से तैयार होकर पुनः अपने उसी परिधान में अपनी ढोड़ी के ऊपर दुपट्टा लपेट कर पीछे की ओर लेजाकर, बाकी दुपट्टे से अच्छी तरह अपने को लपेट कर सबके बीच में चली गई। और इसी तरह दिन गुजरते चले गए।

एक दिन छोटी ननद अनु ने बाल-सुलभ उत्सुकता से पूछा,

''भाभी सारा समय यह दुपट्टे से मुँह क्यों लपेटती हो?'' इतना कहते हुए उसने आगे बढ़कर भाभी के मुँह से दुपट्टा खींच लिया। इस पर घबराकर बिट्टी ने झट से अपनी दोनों हथेलियों से होठों और ढोड़ी को ढाँप लिया। फिर भी अनु ने उसका मुँह देख ही लिया। वह आश्चर्य में भरकर जोर से चिल्लाई,

''अरे भाभी तुम्हारे तो दाढ़ी है!''

और हैरानी से अम्मा को पुकारने लगी।

''अम्मा, अम्मा! आओ देखो, भाभी की ढोड़ी पर बाल हैं।'' सारे घर ने इस गूँज को समो लिया। सभी अपने कमरों से बाहर निकल आए और आकर बिट्टी के आसपास जमा हो गए। अनु को उसकी मां ने डाँटते हुए कहा,

''क्यों चिल्ला-चिल्ला कर सारे घर कों सिर पर उठा रही है तू?

कि तभी उनकी नजर सामने बैठी बिट्टी पर जाकर ठहर गई, जो दोनों हथेलियों से अपना निचला मुँह ढाँप कर घुटनों के बल बैठी थी। सास ने बड़े रूआब से उसके पास जाकर उसके चेहरे से हाथ उठाने चाहे, तो उसने उन्हें और जोर से कस लिया। शुचिता, संयम

और मर्यादा का उसे पूर्ण ज्ञान था—पर उसे लगा, उसे भरी बज़्म में रुसवा किए जाने लगा है, तो वह, यह सोच कर अचानक थरथर काँपने लगी थी कि मुद्दत से जिस बात को वह राज़ रखे हुए थी- वह आज भरी महफिल में खुल रहा था। मानो सरे-आम उसका बदन उघाड़ा जा रहा हो।

इतने में जेठानी बोली, ''तुम तो पंजाब की खिलती कली हो भई! तुम काहे अपना मुँह ढके हो? खोल कर दिखा दो ना! कोई जख्म-वख्म का निशान है क्या? तो क्या हुआ? इसमें मुँह छिपाने की क्या बात है?''

जैसे बकरे को हलाल करते वक्त बकरा कातर निगाहों से कसाई को तकता है, यही भाव बिट्टी की आँखें कह रही थीं... वह गंगा जमुना बहा रही थीं। द्रौपदी का भरी सभा में दुशासन चीर हरण कर रहा था तो भगवान श्री कृष्ण ने उसकी लाज रखी थी। यहाँ तो घर की स्त्रियाँ ही उसे निर्वस्त्र करने को आतुर थीं। यहाँ कृष्ण भगवान के रक्षक रुप की वह क्या आस लगाए? तभी अनु और बिट्टी की जेठानी ने उसकी बगल में गुदगुदी करके उसके हाथों की पकड़ को कुछ ढीला किया, साथ ही उसके हाथ झटके से हटा दिए—

उसकी सास चीत्कार कर उठी, ''अरे यह तो दाढ़ी उगाए है! तभी मुँह पर दुपट्टा बाँध के स्टाईल मारती है। अरे, हमारी तो किस्मत फूट गई! अब दुनिया को कौन सा मुँह दिखाएंगे?''

और लगी उसको दोहत्थड़ मारने। मार-मार के उसका बुरा हाल कर दिया। किसी ने उसको मारने से हटाया नहीं। जैसे बिट्टी ने बहुत जघन्य अपराध कर दिया हो! बेबस बिट्टी पिटे जा रही थी वह क्या कहे? उसके साथ कुदरत ने ऐसा मजाक क्यों किया? वह तो सारे जतन करके हार गई थी। कभी वटना लगाती थी, तो कभी राख लगाकर दाढ़ी के बाल खींचती थी और बालों को खींचने का दर्द सहन करती थी। लेकिन इतने ढीठ बाल थे कि उगते ही रहते थे। तभी तो हारकर वह दुपट्टे से ढोड़ी बाँधे रखती थी।

(किसी को ज्ञान ही नहीं था कि यह स्वभाविक वह प्राकृतिक है। बचपन से जवान होने पर, यह हार्मोनल बदलाव होता है। किसी के चेहरे दानों (फुंसियों) से भर जाते हैं, तो किसी के बाल उग आते हैं। इसमें बिट्टी का कोई कसूर नहीं था। आजकल ब्यूटी पार्लर में ''इलेक्ट्रोलिसिस'' से बाल साफ हो जाते हैं। उस जमाने में ब्यूटी पार्लर का कंसेप्ट ही नहीं था। लड़कियों के जवान होने पर, कइयों के शरीर में कुछ हारमोनल बदलाव होते हैं। फिर उस दौर में बालों से छुटकारा पाने का कोई कारगर उपाय भी तो नहीं था।)

बिट्टी के पथ में इस विपदा ने जवान होते ही दस्तक दे दी थी। लेकिन अपनों के स्नेह, ममत्व और लाड-प्यार ने उसे कभी इस विपदा से सूखने ही नहीं दिया था। प्यार से सींचे माहौल में... लावे की तरह फूटती नफ़रत और इतनी हिकारत से उसकी शिराएँ फटने को हो आई थीं। उसे अंदेशा ही नहीं था कि रात को घर में उस पर बम फूटने थे! क्योंकि जब घर के मर्द आए, तो उन्हें नमक-मिर्च लगाकर किस्सा जायकेदार बनाकर सुनाया गया। गोपी तो उसी पल गुस्से से आग बबूला हो गया। उसने कमरे में आकर सीधे उसका मुँह नोच डाला। उसके बाद उसके बाल खींचे। उसे होश नहीं था। वह अपना आपा खो चुका था। गुस्से में तमतमाता हुआ माचिस ले आया, और बोलता जा रहा था,

''आज तक मैंने ध्यान ही नहीं दिया, तुझे प्यार किया। लेकिन तूने और तेरे मायके वालों ने हम सब को धोखा दिया। तुम्हारी बदसूरती छिपाई। आज मैं तेरे मुँह के बाल जला डालूँगा।'' कहते हुए उसने माचिस की जलती हुई तीली उसकी ढोड़ी में लगा दी। और उसके दोनों हाथ कस के पीछे से पकड़ लिये। जलने की जलन से बिट्टी चीखे जा रही थी लेकिन उसे बचाने कोई नहीं आया। जलने के दर्द से वह बेहोश हो कर जमीन पर गिर गई तो उस को बूट की ठोकर मारकर गोपी बाहर निकल गया था।

आज नारी ही नारी की दुश्मन बनी बैठी थी। किसी ने आकर उसके जख्मों पर नरम रुई का फाहा नहीं रखा, ना ही कोई उसे देखने आया। सुबह उसे जब होश आया तो भूख-प्यास और दर्द-जलन से तड़पती वह कराहती हुई उठी और और रसोई की ओर चल दी।

वक्त की घड़ी की सुइयों को उल्टी दिशा में चला कर वहाँ पहुँच रही थी... जहाँ (माँ के गर्भ) से वह सुई चलनी शुरू हुई थी। मानो शबनम के कतरे पत्तों के गोशों पर अपना ठौर ढूँढ रहे थे, जबकि उनके खाते में नियति ने धूल पर गिरकर मिटना ही लिखा होता है। वह रसोई के दरवाजे की दहलीज़ पर जाकर उकड़ू सी होकर बैठ गई, तो भीतर से भाभी ने एक रोटी और एक चाय का कप उसकी ओर रख दिया। बिट्टी ने बिना देर किए पेट की अग्नि को शांत किया और बाहर बरामदे में जाकर बैठ गई। वह भयभीत और तनावग्रस्त भी थी कि ना मालूम कब गोपी आ कर उसे फिर से मारने लगेगा!

उसके अवचेतन में अंतर्द्वंद चल रहा था जिससे वह चिंतित थी। अपनों से दूर इन अपनों में अपनत्व लेने आई थी वह, लेकिन नियति की क्रूरता यह थी कि इन अपनों में कोई अपना था ही नहीं। उसने तो अभी तक घर से बाहर झाँक कर भी नहीं देखा था कि कौन सा रास्ता किस तरफ जाता है? उसके लिए तो सभी राहें गड्ड मड्ड हो गई थीं, जिनकी कोई मंजिल ही नहीं थी।

उधर घर में, भीतर कौरव सभाएँ होनी शुरू हो गई थीं कि उनके साथ धोखा हुआ है। अब इस से कैसे छुटकारा पाया जाए? उनसे कैसे बदला लिया जाए? उन्होंने सच्चाई छुपा कर क्यों रखी हमसे? बाला से भी पूछा था तो बिट्टी की तारीफें करती नहीं थकती थी, अब बुलाओ उसको। बाला को बुलाया गया, तो उसने सच्चाई यही बताई कि उसे भी ढोड़ी पर दुपट्टा बाँधने की बात समझ नहीं आई थी और अब यदि राज पर से पर्दा हट ही गया है तो यह कुदरत की मार है। इसमें बिट्टी का कोई कसूर नहीं है। बिट्टी का स्वभाव तो बहुत मृदुल है लेकिन उन सब का ''अहम'' यह मानने को तैयार ही कहाँ था!!

जलन की पीड़ा से छटपटाती उसे भीतर कमरे में जाकर हाय-हाय बोल कर तड़पती देखकर देवर बीरु पसीज गया और माँ से पूछकर उसको सरकारी अस्पताल में ले गया। जहाँ उसके ज़ख्मों में हो गई इंफेक्शन का इलाज हुआ और मुँह पर पट्टियाँ बाँध दी गईं। आस-पड़ोस के लोग क्या कहेंगे... इस डर से मुँह पर घूँघट डाल के उसे घर के भीतर लाया गया।

चार दिनों की चाँदनी जो बिट्टी के जीवन में बिजली की तरह कौंधी थी उसी के सहारे अब जीवन बिताना था उसे। गोपी ने तो

उसका त्याग कर दिया था। बिट्टी को दिन-रात 'मनहूस' कहकर बुलाया जाने लगा और उस पर तानों की बौछार करने से उसकी सास चूकती नहीं थी। घर का सारा काम करने के बावजूद उसे दो रोटी नसीब हो जाती थीं, बस इसी से वो मायके से चिट्ठी आने पर उसमें अपने सुखी जीवन का छद्म चित्रण कर देती थी। इस डर से कि मेरे दर्द से मेरे अपने दुखी होंगे, जो लड़कियाँ भाग्य में दुख लिखा कर जन्मती हैं मायके में अपने लोगों को जीते जी दर्द नहीं बताती हैं। बिट्टी ने भी मुखौटा लगा लिया था और जीवन मुखौटों की आढ़ में बिता देना चाहती थी।

वक्त आगे सरक रहा था कि उसने अपने शरीर में कुछ परिवर्तन महसूस किया और डरते-डरते यह बात अपनी सास को बताने की हिम्मत करी। जिसे सुनकर उसकी सास के सपने जाग उठे और उसके खाने-पीने का थोड़ा बहुत ध्यान रखा जाने लगा। उसके मायके भी खबर भेज दी गई, जिससे उसके भैया उसे लेने आ पहुँचे थे। बाहर के घाव तो अब नजर नहीं आ रहे थे लेकिन भीतर से उसके रिसते जख्मों ने उसे लहूलुहान किया हुआ था। वह भाई के संग जाने वाली थी कि एक दिन पूर्व ही उसे अजीब सा दौरा पड़ा। यह मिर्गी या हिस्टीरिया का दौरा था।

मानसिक आघात उसे इस मोड़ पर ले आया था। डॉक्टर को बुलाया गया तो उसने आगाह किया कि इसका उपचार किया जाए जिससे चक्कर आने और शरीर में अचानक झनझनाहट होने को रोका जा सके। उसने बताया कि किसी नाजुक एहसास के टूटने से बिट्टी के ''न्यूरो ट्रांसमीटर'' यानी कि मस्तिष्क की कोशिकाओं या न्यूरॉन्स को क्षति पहुँची थी! जिससे दौरे के समय उसका दिमागी संतुलन पूरी तरह से गड़बड़ा गया था और उसका शरीर लड़खड़ाने लगा था। हाथ और पैरों पर इसका गहरा असर होता दिख रहा था। बिट्टी के साथ घटी यातनाएँ इसकी उत्तरदायी थीं लेकिन भाई ने जब उसे दौरा पड़ता देखा तो वह भी भीतर तक हिल गया था।

घर पहुँचकर माँ की गोद में बिट्टी ने यूँ चैन पाया मानो सदियों बाद माँ को मिली हो। वहाँ के खेतों-खलिहानों और सखि-सहेलियों के बीच उसकी हालत में सुधार होने लगा था। यह वे लोग थे जो उससे प्यार करते थे—उसके चेहरे से नहीं! साथ ही उसका उपचार भी हो रहा था। अवसाद के बादल छँट चुके थे। उसकी खिलखिलाहट वापिस आ गई थी। उसके पिताजी ने बिट्टी के ससुर को वहीं मायके में रहकर बिट्टी की जंचकी करने की प्रार्थना की, इस पर वहाँ से ''हामी'' भरने से इनकी बाछें खिल गईं थीं।

वक्त हवाओं की सवारी कर रहा था...वह दिन भी आया जब बिट्टी ने एक स्वस्थ, सुंदर कन्या को जन्म दिया। जो एकदम गोपी जैसी सुंदर थी। अपने सब भाई-बहनों में गोपी का रूप मुँह चढ़कर बोलता था। इधर गोपी को बाप बनने की खबर मिलने से उसके सुप्त प्रेम के झरनों में जीवंत बहाव आ गया था और वह अपनी बेटी को देखने के लिए उतावला हो रहा था। गोपी के मन की बात को उसके पिता ताड़ गए और सवा महीने के बाद उसे बिट्टी को लिवाने रतनगढ़ भेज दिया। दामाद के आने की खबर पर ही उस घर में उत्सव सी तैयारी होने लगी थी। लेकिन बिट्टी का दिल बैठा जा रहा था—उसके शांत मस्तिष्क में हलचल मच गई थी और उसका तनाव बढ़ने लग गया था। वह अपना पीहर नहीं छोड़ना चाहती थी और आने वाली परिस्थितियों की परिकल्पना को वह ख़्यालों में भी सह नहीं पा रही थी।

कहते हैं ना 'समय' जीवन के हर घाव भर देता है और काल का पहिया निरंतर घूमता रहता है। ना इस में ब्रेक लगती है और ना ही यह रिवर्स गियर में जाता है। सो, इतने महीनों के अकेलेपन ने गोपी को सोचने का समय दिया था। गोपी ने बहुत सोच विचार के पश्चात यह निर्णय लिया था कि इस मे बिट्टी का दोष नहीं है। उसीने सबकी बातों में आकर बिना सोचे-विचारे बिट्टी पर बहुत जुल्म किया था। जिससे उसमें पश्चाताप की भावना घर कर गई थी। पतझड़ कितना भी विकराल क्यों ना हो—बसंत को आने से रोक नहीं सकता। सो, ससुराल पहुँचते ही उसने बिट्टी और अपनी बेटी को भरपूर प्यार दिया। यह देख कर बिट्टी के विरानों में फूल खिल उठे और एक आस का दीपक जल उठा था। जिस कारण वह पति के घर जाने को राजी हो गई थी। लेकिन बिट्टी! अब वह बिट्टी नहीं रह गई थी। वह अंतर्मुखी हो गई थी।

चाँद सी खिली पोती का मुँह देख कर उसकी सास ने झट उसे गोदी में ले लिया। बाकी सब भी उसके दीवाने हो गए थे। जिस तरह फूल से पराग छिन जाने पर वह निरर्थक हो जाता है...कुछ ऐसे ही बिट्टी को लगा। बिटिया को सिर्फ उसकी छाती से अमृत पिलाने के लिए ही उसे दिया जाता। वह अपनी बिटिया से खेलने को, उसकी नन्ही आँखों में झाँकने को तरस कर रह जाती थी।

उसके सो जाने पर उसे बिट्टी के बिस्तर पर सुला दिया जाता था। बिट्टी उसे अपनी छाती पर सुलाने की कोशिश में सारी-सारी रात जागती रहती और उसे निहार कर मन की प्यास को शांत करती रहती थी। इस तरह रतजगे करके और सारा-सारा दिन काम करने से... भीतर का आक्रोश पुनः जागृत हो अवचेतन में असंतुलन करने लग गया था। जिससे उसे फिर मिर्गी का दौरा पड़ गया। वैसे वह अपने आपको अब ठीक समझ कर इलाज में कोताही बरत रही थी, इस बात का किसी को भान नहीं था। डॉक्टर ने सख्त हिदायतें देकर पुनः उसका इलाज आरंभ करवाया लेकिन वह अवसाद में घिरती चली गई थी। जिससे गोपी भी पुनः परेशान होने लग गया था और दोस्तों के पास जाकर वहीं बैठा रहता था और घर देर से आता था। कहते हैं व्यक्ति जिस चीज से डरता है उसके प्रति उसका नियंत्रण खो जाता है। जिससे तनाव बढ़ने से स्थिति अवचेतन में अनियंत्रित हो जाती है और उसका सारा शरीर उसके नियंत्रण से बाहर हो जाता है। बिट्टी के साथ पुनः ऐसा ही हुआ और उसे मिर्गी का दौरा पड़ गया। उसका पूरा शरीर जोर-जोर से हिल रहा था। यह काबू में नहीं आ पा रही थी। घर में सब लोग परेशान हो गए थे।

अपने पीहर में बिट्टी आवश्यकता से अधिक संरक्षित थी और मस्त पंछी की तरह विचरती थी। वहीं ससुराल में वह पिंजरे की कैदी बन गई थी। कब तक पिंजरे की कैद सहती? कुछ ही दिनों में पिंजरे का कैदी अपने तन को छोड़ ब्रह्म में जाकर विलीन हो गया। सदा के लिए...!

लेखिका
अमेरिका

●

अद्भुत दुनिया में अमूल्य उपहार

पूजा पाराशर

वर्षों से प्रतीक्षारत लक्ष्मी का आखिर नंबर आ ही गया, नौकरी मिल ही गई, वह भी एक प्रतिष्ठित कॉलेज में। अपने सपनों को सच करने के लिए लक्ष्मी न जाने कितनी ही रातें जागी थी, जहाँ सब सोकर सपने देखते हैं। लक्ष्मी खुश थी कि उसने जो भी ज्ञानार्जन किया है, उसे बाँटने का अवसर मिलेगा और आज की युवा पीढ़ी को जानने का भी।

कॉलेज में अभी तक 4000 से भी अधिक नये पंजीकरण हो चुके थे। सत्र प्रारंभ हो चुका था, परंतु भारत युवाओं का देश होने के कारण पंजीकरण संख्या हर दिन बढ़ती ही जा रही थी। लक्ष्मी को पंजीकृत नये विद्यार्थियों के लिए जगह भी ढूँढ़नी थी, अरे! बैठने के लिए। सभी कमरे पहले से ही आरक्षित थे। लक्ष्मी को अपनी कक्षाओं के लिए कमरे की व्यवस्था स्वयं ही करनी थी। बिना अंतराल की निरंतर कक्षाएँ थीं। लक्ष्मी को कक्षा के अनुसार उस विभाग के समन्वयक से कमरा माँगने की विनती करनी पड़ती थी। लक्ष्मी को दौड़ लगाने के बहाने व्यायाम करने का भी एक मौका मिल गया था। अंतराल न होने के कारण दौड़-दौड़ कर इस इमारत से उस इमारत; ऊपर से नीचे; नीचे से ऊपर करना पड़ता था। जो अंतराल होता था उसमें भी 'डिसिप्लीनरी ड्यूटी' लगा दी जाती थी।

इन हालातो में मोबाइल ने बड़ा सहयोग दिया। कमरा मिले या न मिले विद्यार्थियों का संपर्क नहीं टूटता था। विद्यार्थी बार-बार पूछते, "मैम, कहाँ आना है?" आजकल की व्यवस्था में 10-15 मिनट के मायने ही क्या रह गये हैं, समय पाबंद की बातें तो बहुत पुरानी हो चुकी हैं।

कमरा मिल गया तो लक्ष्मी 'व्हाट्सएप ग्रुप' में संदेश भेजकर कमरा नंबर बता देती थी, नहीं तो अंत में विद्यार्थियों को पुस्तकालय में बुलाना पड़ता। पुस्तकालय, हाँ! आजकल आराम से बैठने का सबसे उचित स्थान, परंतु कुर्सियाँ तो आरक्षित ही होती थीं। कक्षा समय में 'कक्षा' कहीं तो होनी थी; अब खड़े होकर ही सही! जहाँ पर अपनी अध्यापिका का साथ, खड़े होकर विद्यार्थी भी देते थे। बेचारे विद्यार्थी!

पुस्तकालय में सदा शांति बनाये रखना आवश्यक है, अतः यह दुनिया की सबसे अद्भुत कक्षाएँ थीं, जहाँ लक्ष्मी होंठ हिलाकर पढ़ाती थी और समझदार विद्यार्थी भी बिना सुने ही सब समझ लेते थे। वे भी होंठ हिलाकर जवाब देना सीख रहे थे। नये लोगों के बीच में नयी जगह पर अच्छी बन जाती है इसलिए लक्ष्मी और विद्यार्थियों में अच्छा सामंजस्य बैठ गया था। दोनों एक-दूसरे की भावनाओं को अच्छी तरह समझने लगे थे।

लक्ष्मी इस भागम-दौड़ में जहाँ स्वयं को भूलती जा रही थी, वहीं विद्यार्थियों की चिंता सताये जा रही थी। उसने कई बार इसका समाधान ढूँढ़ना चाहा। समाधान तो दूर, अभी पंजीकरण बंद होने का ही नाम नहीं ले रहे थे। लक्ष्मी का खाना-पीना रोज स्टाफ-कक्ष में ही छूट जाता। बस गाड़ी चलनी चाहिए; कैसे भी चले; धक्के लगाकर चाहे सवारियों को ऊपर बैठाकर। लक्ष्मी धीरे-धीरे थक रही थी; पैरों ने भी धीरे-धीरे साथ देना कम कर दिया। कई प्रयासों पर भी समाधान नहीं हो रहा था, जैसे मुँह बंद करने के सिवा कोई और उपाय नहीं बचा क्योंकि सुनने के लिए किसी के पास कान भी होने चाहिए।

पहले, लक्ष्मी कुछ अच्छा करने के लिए रातों में जागती थी और अब, अच्छा कैसे हो? ये बात उसे सोने नहीं देती थी। अब शिक्षा, साक्षी बनकर खुद को यहाँ-वहाँ भटकते देख रही थी।

इतने विद्यार्थी पंजीकरण हो रहे थे तो उनको सँभालने के लिए शिक्षकों की भी आवश्यकता थी। जब तक टूथपेस्ट से पेस्ट निकले, निकालते रहना चाहिए, बाद में तो नया खरीदा ही जाएगा। इसलिए किसी भी विषय के बच्चे हों, उन्हें किसी भी कक्षा में बैठा दो, बैठे रहेंगे! जब नये विद्यार्थियों के नये अध्यापक आएँगे तो वे भी अपने विद्यार्थियों के लिए कमरा ढूँढ़ ही लेंगे।

सतत मूल्यांकन परीक्षाओं की अब तो तारीख भी निश्चित हो गयी थी और नये विद्यार्थियों का आगमन, इस अद्भुत दुनिया में निरंतर जारी था। अद्भुत दुनिया देखने के लिए हर कोई लालायित होता ही है। आजकल सदाचारी होना संस्कारी नहीं, सबसे पिछड़ा माना जाता है और यही हालत थी लक्ष्मी की। बार-बार समस्याओं को सबके सामने रखती परंतु उसकी एक न सुनी गयी, सिर्फ टाला ही गया। वह मानसिक व शारीरिक दोनों ही वेदनाओं को सहन कर रही थी। जहाँ वह इस इमारत की तीसरी मंजिल से उस इमारत की दूसरी मंजिल तक दौड़ लगाती थी, वहीं आज एक सीढ़ी भी चढ़ना मुश्किल हो गया था। लिफ्ट में सदा ही लाइन लगी रहती थी, जिसकी प्रतीक्षा के लिए लक्ष्मी के पास कभी समय नहीं था। उसे तो बस भागना था। इस हालत में भी वह एक बोतल पानी और आवश्यक चीजों की एक फाइल के साथ भाग रही थी। एक बोतल पानी, जो दो-तीन घंटे में खाली हो जाता था।

एक बार कक्षा लेते समय लक्ष्मी को चक्कर आने लगे। कक्षा में बैठने की अनुमति नहीं थी, परंतु विद्यार्थियों के अनुरोध पर वह डरते-डरते एक विद्यार्थी के पास जाकर बैठ गई। 75 मिनट की एक कक्षा में विद्यार्थियों की उपस्थिति भी खड़े होकर ही दर्ज की जाती थी, किसी भी कक्षा में कुर्सी-मेज की व्यवस्था नहीं थी। लक्ष्मी ने विद्यार्थियों से पानी माँगा। पता चला कि किसी के पास पानी नहीं है। विद्यार्थियों का कहना था—"यहाँ पानी की व्यवस्था नहीं है मैम, नल से बदबूदार और गंदा पानी आता है इसलिए हमें कैंटीन से खरीदना पड़ता है।"

आज की यह अंतिम कक्षा थी इसलिए अब कैंटीन भी बंद

हो चुकी थी। लक्ष्मी की हालत देखते हुए, कुछ विद्यार्थियों ने कॉलेज के बाहर जाकर, दुकान से पानी की बोतल लाने के लिए विनती की। अनुशासन को देखते हुए लक्ष्मी ने उन्हें जाने से मना कर दिया।

जिस उत्साह के साथ, शिक्षा की समृद्ध कल्पना लेकर लक्ष्मी ने यहाँ प्रवेश किया था, वह सब उसी प्यास में मरता जा रहा था। स्वयं और वहाँ के हालतों को देखते हुए, उसने नौकरी छोड़ने का निर्णय लिया। जंगल में जीना है तो सबसे पहले शिकारी बनना होगा परंतु लक्ष्मी को यह बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं था क्योंकि उसने मंदिर मानकर, यहाँ अपने कदमों को बढ़ाया था।

कॉलेज में लक्ष्मी का यह अंतिम दिन था। सभी विद्यार्थी दुःखी होकर लक्ष्मी को रोकने का प्रयास कर रहे थे। लक्ष्मी जान चुकी थी कि यहाँ कुछ नहीं बदल सकता इसलिए सभी विद्यार्थियों को समझाया; उन्हें सीख दी कि तुम सब असली सोना बनना; लोहा या पीतल कभी नहीं। जो सोने का पानी चढ़ाकर, अपने आपको सबसे कीमती और चमकदार दिखाने का प्रयास करता है; वह अस्थाई होता है लेकिन तुम्हें असली सोना बनकर चमकना है और चारों ओर अपनी चमक को फैलाना है।

आशीर्वाद भरे शब्दों से लक्ष्मी, विद्यार्थियों को प्रोत्साहित कर ही रही थी कि उनमें से एक विद्यार्थी ने कहा—"मैम, मैं आपको एक उपहार देना चाहता हूँ।" उसने अपने बैग से एक लीटर पानी की बोतल निकाली और कहा—"मैं कई दिनों से आपको देने के लिए सोच रहा था... आप अपना ख्याल रखिएगा!"

लक्ष्मी इतना अमूल्य उपहार पाकर स्वयं को रोक नहीं पाई, रो पड़ी और बोली—"मेरे जीवन में इससे बड़ा और अमूल्य उपहार कुछ नहीं हो सकता। इसे देने वाले तुम भी, इस पृथ्वी पर भगवान का अमूल्य उपहार हो।"

शारीरिक व्याधियों व कष्टों को दूर करने के लिए अनेक औषधियाँ उपलब्ध हैं, परंतु अपनी मानसिक वेदनाओं से मुक्त होने के लिए लक्ष्मी कहाँ से औषधि ढूँढ़े?

स्वतंत्र लेखिका
कवयित्री व हिंदी प्रचारक

●

इंटरनेट से साभार

कविताएँ

शिवम द्विवेदी

1. वो जिन्होंने नहीं भूला

प्रेम में रहते हुए
जिन्होंने नहीं जलाई भूल से
चूल्हे पर सेंकती हुईं रोटियाँ
जिन्होंने नहीं भूली ठेले पर
खरीदी हुई सब्जियाँ;
यात्रा पर निकलते हुए
जिन्होंने नहीं भूली दवाइयाँ
मोबाइल, चार्जर और कुछ महत्त्वपूर्ण कागजात
जिन्होंने नहीं भूली
घर, आफिस और वाहनों की चाबियाँ
अथवा वापस लेना
टिकट खरीदने पर बचे शेष पैसे

निश्चित है प्रेम में रहकर भी
प्रेम में जीना नहीं आया उसे

स्मृति में इसी बहाने—
तुम्हारे बने रहने से बड़ा हित
आखिर! क्या हो सकता था मेरा भला
अब 'भूलना' दुनिया के लिए
अहितकर नहीं रहा।

2. प्रेम-ऋण

ईश्वर के बनाए
संसार के सबसे खूबसूरत तोहफ़े में से
एक तुम थी

जिसे मैं प्रेम करता गया
निम्नतम से अधिकतम
और पाता गया
अधिक से अधिकतम

पर यह मैं वर्षों बाद जान सका
कि प्रेम ऋण होता है
जिसे लोग पूँजी समझ बैठते हैं।

3. प्रेमांकुर

मैंने कभी प्रेम को
प्रेम कहा ही नहीं
इसलिए कि मैं नहीं चाहता
बसंत के आने से पहले
पतझड़ का आ जाना
मैं नहीं चाहता
दोहराया जाना
हिरोशिमा और नागासाकी का इतिहास
और मैं कभी नहीं चाहता
जीवन का त्रासद होना
अपितु चाहता हूँ
दुनिया की नज़रों से ओट
बीज का अंकुर
और फ़िर अंकुर का
विशालकाय वृक्ष हो जाना।

4. नदी और तुम

नदी किनारे आकर बैठा
तो एहसास हुआ
कि तुम और यह नदी
बिल्कुल एक जैसी हो
शीतल, निर्मल
और गतिशील होते हुए भी
स्थिर
जिस तरह नदी
रेतीले क्षेत्रों,
दुर्गम पहाड़ियों से गुजरते हुए
कहीं तन्वंगी
और कहीं विस्तृत होकर
चलती रहती है

वैसे ही
विपदाओं में
स्वयं को परिस्थिति अनुसार
ढालकर
मेरे लिए
तुम
तथा तुम्हारी अविरल धारा में
प्रेम की नाव लिए
मैं
धारा के सापेक्ष
बहता जाता हूँ
विश्वास की पतवार लिए
धीरे-धीरे
धीरे-धीरे।

5. मैं तुम्हें कुछ भी कहूँगा नहीं

मेरे पड़ोस का कुत्ता
यदि हथेली सूँघता हुआ
मेरी उँगली काट खायेगा
तो मैं भी उसे दो-चार हाथ
मारने का प्रयास करूँगा

मेरे भूँखे होने पर
कोई मेरे आगे से
भोजन की थाली हटा ले
तब मैं भी उसे
मन ही मन गाली दूँगा

यदि कोई मेरी सारी संपत्ति
हड़प ले
तब भी मैं उसे ही
कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगवाऊँगा

ईश्वर को दोषी ठहराते हुए
सज़ा स्वयं काटूँगा
जीवन भर
पर तुम्हें
कुछ भी कहूँगा नहीं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
प्रयागराज

●

आधुनिकता के दौर में

अमर वर्मा

आधुनिकता के दौर में,
कितने आगे हम निकल चुके,
भवनों के; निर्माण के लिए
खेतों में अब प्लॉट कटे।

आधुनिकता के दौर में
कुएँ, पोखर सब सुख गए,
चहकते थे; मुंडेर पर पँक्षी
अब वो भी हमसे रूठ गए।

आधुनिकता के दौर में
मटके फूटे, छिंके टूटे,
इस भागदौड़ के जीवन में
कुछ रिश्ते पीछे छूट गए।

बचपन में देखे जो गाड़ी
नजर नहीं अब आते हैं,
गाय के बछड़े भी तो
अब कत्लखाने में जाते हैं।

माना ये सब; आधुनिक है,
तो पिछड़ा किसे बुलाते हैं?
है कैसी ये आधुनिकता
जो हमे समझ न आती है।

परास्नातक
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

संघर्ष

सूरज मिश्रा

किसी के मरने पर
पत्नियों ने किए जौहर
किसी के संघर्ष में
दिए प्रेमिकाओं ने साथ
हमारे हिस्से में आया नहीं कुछ
सिवाय बदनसीबी के।
लहूलुहान तपते बदन से
दो वक़्त की रोटी भी जुटा न पाया
मांगी किसी से मदद
तो बदले में भीख पाया
जिन्हें मानता था अपना
उनको भी लाचार पाया
हमारे हिस्से में आया नहीं कुछ
सिवाय बदनसीबी के॥
रातों को बिस्तर काटता है
सुबह बेरोजगारी
सीने में हर रोज
जलती है एक चिन्गारी
माँ के हाथों की रोटी
और याद आता है बचपन
बाप के फटे कपड़े
दिखाते हैं जर्जर हालात
मेरे नीयत पर शक़ करने वाले
समझते नहीं ज़ज्बात
मिला नहीं मुझे कुछ अब तक
सिवाय बदनसीबी के॥

हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय-चेतना के स्वर

ममता

शोध सार : रामधारी सिंह दिनकर हिंदी साहित्य के प्रखर सूर्य है। दिनकर की राष्ट्रीयता में पुनरुत्थानवादी स्वर भी है और मानवतावादी भी। उनकी कविता में गाँधीवाद भी है और मार्क्सवाद भी। एक ओर जहाँ उन्होंने गुलामी की बेड़ियों में जकड़े भारतीय मानस को जागृत करने का प्रयास किया तो वहीं स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत नेताओं के चारित्रिक पतन और भ्रष्ट नौकरशाही पर भी लिखने से वे नहीं चुके। दिनकर की राष्ट्रीयता भारतीयता की पर्याय है। यद्यपि प्रेम और श्रृंगार भाव से ओत प्रोत बहुत सी कविताएँ लिखीं लेकिन उन्हें प्रसिद्ध राष्ट्रीय चेतना से संपृक्त कविताओं से ही मिली। अपने उपनाम के अनुरूप ही दिनकर को ऊर्जा और पौरुष के कवि के रूप में जाना जाता है। वे सत्ता के करीब रहकर भी सत्ता से निस्पृह रहे। साहित्यकार होने के साथ-साथ वे राजनेता और लब्ध प्रतिष्ठ शिक्षाविद् भी थे। जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति के पीछे दिनकर के साहित्य का भी अहम् योगदान रहा।

बीज शब्द : राष्ट्रीय सांस्कृतिक-चेतना, अतीत का गौरव गान, देशभक्ति, साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का विरोध, राष्ट्रीय सरोकार।

प्रस्तावना : दिनकर ऐसे कवियों में से हैं जिनकी कविताएं आम आदमी से लेकर बुद्धिजीवी-वर्ग तक में पसंद की जाती हैं। देश के स्वतंत्रतापूर्व से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक के राजनीतिक परिदृश्य को दिनकर ने अपनी कविताओं द्वारा व्यक्त किया है। दिनकर की राष्ट्रीयता में वैयक्तिकता नहीं सामूहिकता का भाव निहित है। उनके काव्य में स्वर्णिम अतीत का राष्ट्र के गुणगान है तो राष्ट्र की वर्तमान दशा की चिन्ता भी है। साम्राज्यवादी ताकतों पर तीखे व्यंग्य संधान भी है और शासकवर्ग की कर्त्तव्य हीनता पर तीखे प्रहार भी। राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय नेताओं की प्रशंसा भी है और आम आदमी की चिंता भी उनकी सबसे बडी विशेषता है कि उनकी राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति संकुचित नहीं है उनकी 'रेणुका', 'हुंकार', 'सामधेनी', 'इतिहास के आँसू', 'नीलकुसुम' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा' आदि रचनाओं में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का प्रबल, अतीत का गौरव गान, जातीय चेतना, देशप्रेम, राष्ट्रीय एकात्म , जनपक्षधरता और सांस्कृतिक नवोत्थान का भाव अनुस्यूत है। वे किसी वैचारिक प्रतिबद्धता से बंधे नहीं थे। एक ओर 'बापू' नामक खंडकाव्य में वे गाँधीवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित दिखते है तो वहीं 'कुरुक्षेत्र' में, वे साम्यवादी विचारों से प्रभावित दिखते। है। महाभारत के पौराणिक आख्यान पर आधारित 'कुरुक्षेत्र' में द्वितीय विश्वयुद्ध से उपजे संत्रास के साथ युद्ध शांति के द्वंद्व को भी कवि दिनकर ने बहुत खूबसूरती से चित्रित किया है। इस खंड काव्य में पूंजीवाद की आलोचना करते हुए दिनकर क्रांति का आह्वान करते हैं।

वे सशस्त्र क्रांति का आहवान करते हुए कहते हैं:-

"छीनता हो स्वत्व कोई और तू त्याग तप से काम लें, यह पाप है
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ"[1]

आलोच्य कृति में कवि ने शक्तिशाली प्रभुता-सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा गरीब देशों के शोषण को प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है। दिनकर का काव्य समाज को आत्महीनता, पराजय, जड़ता और निष्क्रियता से उबारकर त्याग, पराक्रम और आत्मोत्सर्ग के लिए प्रेरित करता है। नेहरू के मित्र और गाँधीजी के अनन्य भक्त होते हुए भी दिनकर ने सन् 1962 के चीनी-आक्रमण के समय अहिंसावादी नीति का मुखर विरोध किया। कांग्रेस के कोटे से 12 वर्षो तक राज्यसभा के सदस्य रहते हुए भी कांग्रेस को उसकी गलतियों पर आईना दिखाने में वे कभी पीछे नही हटे। नेहरू जी पर कई प्रशंसात्मक भावोद्गार वाली रचनाएँ लिखने वाला कवि नेहरू के गलत निर्णयों पर चुप नहीं बैठा। ऐसे ही तत्कालीन परिस्थितियों में गाँधीजी के लिए गए कुछ राजनीतिक निर्णयों एवं नीतियों से असहमत होने पर भी मौन नही रहे। महात्मा गाँधी के गोलमेज सम्मेलन में शामिल होने से रुष्ट हो कवि दिनकर अपने विरोध की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कर कहता है—

"रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।"[2]

1933 में 'हिमालय' नामक आलोच्य कविता में युधिष्ठिर गाँधी जी के प्रतीक हैं; अर्जुन और भीम के प्रतीक संभवतः चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह एवं सुभाषचंद्र बोस सरीखे क्रांतिकारियों के लिए प्रयुक्त किए गए हैं। इस कविता में अतीत का गौरवगान, शौर्य और पराक्रम की प्रशंसा के साथ ही वर्तमान की पतनावस्था के प्रति खिन्नता प्रकट करते हुए कवि पुनः स्वर्णिम अतीत को पाने के लिए आतुर भी दिखता है। इसके साथ ही उनकी रचनाओं में अतीत के स्वर्णिम इतिहास के साथ-साथ अतीत में हुई गलतियों से सबक सीखने का आग्रह भी परिलक्षित होता है। 'रेणुका', 'हुंकार', 'इतिहास के आँसू' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा' प्रभृति रचनाओं में व्यवस्था की विद्रुपताओं को उन्होंने बेहद तल्ख अंदाज मे अभिव्यक्त किया है। 1935 में प्रकाशित 'रेणुका' नामक काव्य-संग्रह की 'मंगल आह्वान', 'तांडव', 'हिमालय', 'कस्मै देवाय' तथा 'जागरण' आदि कविताएँ उनके राष्ट्रीय सरोकारों के साथ-साथ उनके वैश्विक चिंतन को भी उजागर करती हैं। जहाँ 'तांडव' और 'हिमालय' जैसी कविताएँ राष्ट्रीय सरोकार से संपृक्त है वहीं 'मेघ रंध्र में बजी रागिनी' और 'हाहाकार' जैसी कविताएँ वैश्विक घटनाओं के प्रति उनकी चिंता को दर्शाती है। कवि कविता में भगवान शिव से तांडव नृत्य की प्रार्थना करता है। वह मानता है कि शक्ति-संपन्न राष्ट्रों के हाथों निर्धन देशों के शोषण से बचने का एकमात्र विकल्प भगवान शिव का तांडव ही है। इस काव्य-संग्रह की अधिकांश कविताओं में देशभक्ति के भाव की प्रधानता है। उनकी 'हिमालय' कविता में देशभक्ति के प्रखर स्वर दृष्टव्य है—

'कितनी मणियों लुट गई, कितना मेरा वैभव अशेष।
तू ध्यान-मग्न ही रहा, इधर वीरान हुआ प्यारा स्वदेश'[3]

'रेणुका' का विस्तार 'हुंकार' में परिलक्षित होता है। सन् 1939 में प्रकाशित इस काव्य-संग्रह में पराधीनता की बेड़ियों से मुक्ति पाने की छटपटाहट साफ-साफ देखी जा सकती है। इस संग्रह की 'स्वर्ग दहन', 'चाह एक', 'दिगंबरी', 'अनल किरीट', 'भीख' और 'विपथगा' आदि कविताओं में ब्रिटिश हुकूमत की दमनकारी नीतियों के खिलाफ चुनौती को स्वर देखने को मिलता है। इन कविताओं में युद्धजनित अनिश्चय, यंत्रणा और भयग्रंथी से त्रस्त समाज की पीड़ा को भी संवेदनशीलता के साथ उकेरने का सफल प्रयास हुआ है। साम्राज्यवादी ताकतों के वे प्रबल विरोधी थे। युद्ध की विभीषिका में झौंकने वाले राष्ट्रों को फटकारते हुए दिनकर कहते हैं :—

"घूम रही सभ्यता दानवी, शांति! शांति! करती भूतल में
पूछे कोई, भिगो रही वह,क्यों अपने विष-दंत गरल में
हब्शी पढ़े पाठ संस्कृति के खड़े गोलियों की छाया में
यही शांति वे मौन रहें जब आग लगे उनकी काया में"[4]

वह देश के साथ विश्व मंगल की कामना के गीत भी गाता है। हिटलर द्वारा यहूदियों पर किए गए अत्याचारों पर दिनकर की कलम मौन नहीं रहती है। वह हिटलर की तानाशाही पर तंज कसते हुए कहते हैं—

"'राइन' तट पर खिली सभ्यता, 'हिटलर' खड़ा कौन बोले?
सस्ता खून यहूदी का है, 'नाजी'। निज 'स्वस्तिक' धो ले।"[5]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी जब-जब देश पर आक्रमण हुए तब-तब दिनकर की लेखनी ने पौरुष और क्रांति के गीतों को शब्दबद्ध किया। 'सामधेनी', 'धूप और धुआं', 'नीम के पत्ते' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा' में राष्ट्रीयता का उद्दाम स्वर मुखरित हुआ है। 'सामधेनी' में कवि ने स्वयं को 'अमर विभा का दूत' और 'धरणी का अमृत कलशवाही' कहा है। 'नीम के पत्ते' देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का लिखा गया काव्य- संग्रह है। इस काव्य-संग्रह में भारत माता का यशोगान तो है लेकिन साथ ही भारतीय सेना को शत्रुओं के आक्रमणों से सर्तक रहने के लिए सचेत भी किया गया है। इस काव्य-संग्रह का शीर्षक 'नीम के पत्ते' भी प्रतीकात्मक है। नीम स्वाद में कटु होता है किंतु औषधीय गुणों के कारण स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। दिनकर का काव्य भी कमोबेश ऐसा ही है। पहले पहल देशवासियों और व्यवस्था को उनका स्वर या कहे कि कविता में कही गई बातें कड़वी लगती हो लेकिन अन्ततः वे नीम की भाँति देश और देशवासियों के लिए औषध की तरह ही जीवनदायिनी सिद्ध हुई। दिनकर की स्वातंत्र्योत्तर रचनाओं में उग्र राष्ट्रीय भावबोध मुखरित हुआ है। उन्होंने अभी भी अपने हित और स्वार्थ के चश्मे से स्थितियों का आकलन नहीं किया। जवाहरलाल नेहरू से उनके मैत्रीपूर्ण संबंध सर्वविदित है किंतु चीनी आक्रमण पर नेहरू की शांति नीति से वे ना सिर्फ आहत हुए बल्कि उन्होंने अपनी इस पीड़ा की काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी की है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में चीनी आक्रमण के प्रति भारतीय जनमानस में उपजे सामूहिक आक्रोश को कवि ने बखूबी चित्रित किया है। आलोच्य काव्य-संग्रह की अधिकांश कविताओं में भारत पर चीनी-आक्रमण की प्रतिच्छाया दिखती है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' नामक इस काव्य-संग्रह के पहले खंड की कविताओं में शांति के गीत गाना को छोड़ राष्ट्र-धर्म को निभाने का उद्बोधन किया गया है। कवि तलवार को गलाकर चरखे की तकली बनाने का पक्षधर नहीं है। दूसरे खंड की कविताओं में वह भारत पर हुए चीनी आक्रमण के लिए निजी स्वार्थों में लिप्त नेताओं को दोषी मानते हुए उन्हें भी आड़े हाथों लेते हैं। तीसरे खंड की कविताओं में दिनकर भारतीय गौरव और जातीय अस्मिता को तार-तार करने वाले शत्रुओं की भर्त्सना करते हुए भारतीय समाज को चंद्रगुप्त, वीर शिवाजी, रानी लक्ष्मीबाई, गुरु गोविंद सिंह तथा महाराणा प्रताप जैसे निर्भीक ऐतिहासिक चरित्रों का स्मरण कराते है। चर्तुथ खंड की कविताओं में कवि देशवासियों के मनोबल को बढ़ाने के लिए उन्हें अतीत के गौरवशाली इतिहास का स्मरण कराता है। इस काव्य-संग्रह के अंतिम खंड में कवि देश की अस्मिता और गौरवशाली अतीत के प्रति उदासीन भारतीयों को फटकार लगाता है। कवि भारत रूपी परशुराम शस्त्र उठाने के लिए प्रेरित करता है। दिनकर को जैसे ही ऐसा लगा कि गाँधीवादी सिद्धांतों पर चलकर देश की सुरक्षा में सेंध लग सकती है वे तुरंत शांति की बजाय शस्त्र के पक्षधर बन गए। इस संग्रह की शीर्षक कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' में नेफा में चीनी सैनिकों से लड़ने वाले भारतीय सैनिकों को कवि ने शस्त्रधारी परशुराम के प्रतिनिधि मानते हुए ओजस्वी स्वर में उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। अपनी कविता में युधिष्ठिर और भीष्म, गाँधी और परशुराम के बीच चयन करते समय उन्होंने सदैव राष्ट्रहित को प्राथमिकता दी।

दिनकर ओज, आक्रोश, विद्रोह और क्रांति के कवि हैं। उनकी कुछ कविताएँ आज भी राजनीति के गलियारों में बखूबी इस्तेमाल की जाती है। गत वर्ष गलवान घाटी में भारतीय सैनिकों का मनोबल बढ़ाने गए प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने दिनकर की कविता 'कलम आज उनकी जय बोल' की पंक्तियों की अपने उद्बोधन में शामिल कर सैनिकों का मनोबल बढ़ाया था। दिनकर के रचनाकर्म के केंद्र में राष्ट्र प्रेम है। उनका रचनाकर्म गाँधी और लोकनायक जयप्रकाश नारायण से प्रभावित दिखता है। उनकी 'जनतंत्र का जन्म' कविता की पंक्तियाँ 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' तो 1975 में जयप्रकाश नारायण के रामलीला मैदान में किए 'संपूर्ण क्रांति' के आह्वान के नारे में ही बदल गई। 26 जनवरी 1950 को भारत के गणतंत्र के निर्माण के मौके पर लिखी गई इस कविता की पंक्तियाँ आज भी भ्रष्ट नेताओं के संदर्भ में उतनी ही प्रासंगिक हैं—

'सदियों की ठंडी-बुझी राख सुगबुगा उठी
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है
दो राह, समय के रथ घर्घर-नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'[6]

इस प्रकार हम पाते हैं कि दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का फलक अत्यंत व्यापक है। उसमें राष्ट्रीय सरोकारों से लेकर अंतरराष्ट्रीय घटनाओं के प्रति चिंता समाहित है। वे शांति के उपासक भी है और शक्ति के भी; वे राष्ट्रप्रेमी होने के साथ-साथ विश्व प्रेमी भी है। वे गाँधीवादी होने के साथ-साथ साम्यवाद से प्रभावित भी दिखते हैं और इन सब से परे जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो उनके रचना-कर्म पर प्रखर राष्ट्रवाद की छाप भी परिलक्षित होती हैं।

निष्कर्ष : अधिकांश साहित्यकार सत्ता की सुविधाओं की चाहत या फिर वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण राजनीतिक खेमों में बँधकर लेखन-कर्म करते हैं लेकिन दिनकर की लेखनी ने इस खेमेबंदी की सीमाएँ कभी स्वीकार नहीं की। वे भले ही कांग्रेस पार्टी से राज्यसभा दोनों शब्द नहीं रहेगा। सदस्य थे लेकिन उन्होंने आजीवन राजनीतिक प्रतिबद्धता से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता एवं विश्व मंगल की कामना करने वाली रचनाओं का सृजन किया। जहां एक ओर उनकी राष्ट्रीयता में दक्षिणपंथ की संकीर्णता नहीं थी वहीं दूसरी ओर उनकी जनपक्षधरता में वामपंथ की जड़ता का अभाव भी था। वे थोड़े मार्क्सवादी थे तो थोड़े गाँधीवादी भी थे। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता के साथ-साथ समाजवादी स्वर भी मुखरित हुआ। उनके रचना-कर्म में राष्ट्रीयता का उद्दाम स्वर सुनाई पड़ता है। दिनकर की राष्ट्रीय सांस्कृतिक-चेतना का विश्वमंगल से कोई विरोध नहीं है।

संदर्भ सूचीः

1. कुरुक्षेत्र
2. हिमालय/https://hindi-kavita.com/Hindi-Renuka-Dinkar
3. हिमालय/https://hindi-kavita.com/Hindi-Renuka-Dinkar
4. हाहाकार, हुंकार, दिनकर, पृ. 21
5. मेघ-रंध्र में बजी रागिनी, हुंकार, दिनकर/https://www.hindi-kawita.in
6. जनतंत्र का जन्म, नीलकुसुम, दिनकर, पृ. 58
7. इतिहास के आंसू
8. कुरुक्षेत्र
9. नीम के पत्ते
10. नीलकुसुम
11. परशुराम की प्रतीक्षा

प्रोफेसर
हिंदी विभाग
डॉ. भीमराव अंबेडकर कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

'वसुधा का नेता कौन हुआ?
भूखंड-विजेता कौन हुआ?
अतुलित यश-क्रेता कौन हुआ?
नव-धर्म-प्रणेता कौन हुआ?
जिसने न कभी आराम किया,
विघ्नों में रहकर नाम किया।'

— रामधारी सिंह 'दिनकर'
'रश्मिरथी' से साभार

सिद्धा पर गिद्ध

(व्यंग्य कथा)

दिलीप कुमार

हिंदी साहित्य में एक उच्चकोटि के महानुभाव पाए जाते हैं जिनका नाम है सप्तवर्णी प्रकाशवान।

सप्तवर्णी प्रकाशवान साहब तहजीब, बागों, नफ़ासत के शहर लखनऊ में पाए जाते हैं। इनका निक नेम "किरायेदार'' भी है।

लखनऊ में इनके बारे में मशहूर है कि ये टोटका से गाज टाल दिया करते हैं। इनके खानदान में जितने भी लोग हैं सब ने कहीं न कहीं मकान किराये पर ले रखा है। जिस भी मकान में किराएदार बने वो मकान कभी छोड़ा नहीं। इनकी तारीख शाहिद रही है कि न इन्होंने मकान छोड़ा और न किराया देना बंद किया। ये और बात है कि किराया फिर कचहरी में ही जमा हुआ।

वो भी कहीं दस रुपये तो कहीं पाँच रुपये। अब तो लखनऊ में इनको दबी जुबान में लोग सप्तवर्णी प्रकाशवान नहीं बल्कि सप्तवर्णी किरायेदार भी कहा करते हैं।

मान्यता है कि राम 16 कलाओं में माहिर थे और कृष्ण 64 कलाओं में जबकि सप्तवर्णी में तो सौ से ज्यादा कलाएँ व्याप्त हैं तभी तो सिर्फ ज्यादा पढ़े -लिखे लोग ही इनके दिखाए सब्ज़बाग में ख्वाबों की ताबीर के लिये आते हैं।

सप्तवर्णी के आयोजनों में एक सिस्टर कन्सर्न है "सिद्धा सम्मान''। इस सम्मान से ही उनके बहुधा रोजगार चला करते हैं।

उनका शोध बहुत लंबा रहता है सबसे पहले वो कहानी या कविता लिखने वाली किसी ऐसी लेखिका को स्पॉट करते हैं जिसने लेखन में भले ही नाम न कमाया हो मगर वास्तविक जीवन में जरूर कमा रही हो, वो भी हरे-हरे नोट।

इनकी नजर में नौकरी करने वाली युवतियाँ टॉप स्लॉट पर रहती हैं। इसके अलावा जो युवतियाँ अपना खुद का व्यापार कर रही हों उनको भी ये स्पॉट करते हैं।

ऐसे ही साहित्यिक शिकारियों के लिये दुष्यंत कुमार साहब फरमा गए हैं—

"तुम्हीं से प्यार जताएं, तुम्हीं को खा जाएँ
अदीब यूँ तो सियासी हैं
पर कमीन नहीं''

तो साहित्य के इस माहिर शिकारी ने एक युवा कवयित्री सृष्टि शनाया को चुना।

जो शौकिया तौर पर कभी-कभार कविताएँ लिखा करती थीं। सृष्टि विज्ञान की शोधार्थी थी उसे जेआरअफ़ की अच्छी स्कालरशिप भी मिल रही थी। वह विवाहित थी, पति भी कमाता था। सृष्टि अपनी कमाई की खुद मुख्तार थी और ऐसी ही कमाने वाली युवतियों पर सप्तवर्णी की नजर रहा करती थी।

उन्होंने सृष्टि शनाया को सिद्धा सम्मान के लिए चुने जाने का एक ईमेल भेज दिया।

सृष्टि पहले हैरान हुई और फिर पुलकित, उसने भी धन्यवाद का एक ईमेल कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए भेज दिया।

सप्तवर्णी अपने प्रकाशन की अनियमित स्मारिका भी निकालते थे जो कि सिद्धा के नाम से होती थी। ये स्मारिका तैयार करते समय खूब प्रचार -प्रसार करते थे। पहले हल्के, धुंधले, ब्लर प्रिंट की स्मारिका उन्होंने निकाली और उसकी एक कॉपी ईमेल से सृष्टि को भेज दिया।

सिद्धा सम्मान के दिन नजदीक आ रहे थे। सृष्टि बेहद उत्साहित थी, अचानक उन्होंने सृष्टि को फोन किया और कहा—

"ये आपके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना होने जा रही है। हम जो स्मारिका आमतौर पर निकालते हैं वो हमारे बजट के अनुसार ही होती है। लेकिन इसे हम अच्छी क्वालिटी का रखें तो बात और अच्छी रहेगी, आखिर ये एक कालजयी इवेंट होगा। बस आपको थोड़ा सहयोग करना होगा''।

सृष्टि ने संकोच में कहा—"जी सर, आप जैसा कहें''।

"चौदह हजार और लगेंगे, वैसे तो हमारा भी दस हजार पहले से हमारा लग ही रहा है। मगर हम इसे आपके जीवन का सबसे कीमती साहित्यिक पल बनाने की कोशिश करेंगे। वैसे ये चुनना आपकी इच्छा पर है, अगर अपग्रेड नहीं करेंगी तो भी कोई हर्ज़ नहीं हम अपनी पूर्व योजना के अनुसार ही स्मारिका और सम्मान समारोह करेंगे ही। अगर सही लगे तो कल तक पैसे औऱ अपनी कुछ अच्छी अच्छी क्वालिटी फोटोज भेज दीजियेगा"।

"जी ओके, सोच कर बताती हूँ''

कहकर सृष्टि ने फोन रख दिया।

सृष्टि शनाया ने जब साहित्य में कदम रखा था तभी प्रतिज्ञा कर ली थी कि किसी पुस्तक, सम्मान आदि के लिए वह पैसा नहीं देंगी।

सृष्टि को इस तरह बात बढ़ा कर ऐन वक्त पर स्मारिका के एचडी क्वालिटी के नाम पर पैसा माँगने की बात बहुत बुरी लगी।

उसने तय किया कि वह सम्मान के नाम पर मांगे जा रहे पैसों के लिये एक रुपया भी नहीं देगी। और जब रुपया नहीं देना तो जवाब भी नहीं देगी कोई सप्तवर्णी प्रकाशवान को।

कई रोज बीत गए किसी भी प्रकार का सूचना का आदान-प्रदान नहीं हुआ तो सृष्टि ने मान लिया कि अब ये सिद्धा सम्मान का चैप्टर बंद हो चुका है।

अचानक एक दिन उसे एक ई-मेल मिली जिसमें एक ब्रोशर था जिसमें स्वर्णजनित अक्षरों में उसके नाम के पहले सिद्धा दर्ज था। उसकी बेहद सुंदर और युवतर उम्र की तस्वीर थी, साफ्ट कॉपी में प्रस्तावित सिद्धा सम्मान देखकर वह मंत्रमुग्ध हो गई।

उसे सप्तवर्णी जी को लालची मान लेने की अपनी सोच पर बहुत ग्लानि हुई और साहित्य में पैसा न देने की अपनी प्रतिज्ञा पर चिढ़ के साथ कोफ्त भी हुई।

सृष्टि ने अगले दिन सप्तवर्णी को फोन किया और इससे पहले कि वह कुछ कह पाती सप्तवर्णी प्रकाशवान ने कहा—

"सिद्धा सम्मान मैंने अपनी माँ की स्मृति में शुरू किया था। उनका नाम सिद्धेश्वरी था। उन्होंने मुझे इस लायक बनाया। इसीलिये हर संघर्षशील स्त्री में मुझे अपनी माँ का ही संघर्ष नजर आता है। मेरी आर्थिक स्थिति इन दिनों थोड़ी तंग हो गई थी, इसलिये ब्रोशर छपवाने और आयोजन की तैयारी में थोड़ी देर लगी, मगर अब सब इंतजाम हो गया है और आयोजन के लिये हल वगैरह भी बुक हो गया है। दो हफ्ते बाद आयोजन है, आप उन तारीखों में उपलब्ध रहेंगी ना, डेट की कोई दिक्कत तो नहीं है''?

सृष्टि ने पुलकते हुए कहा—

"जी कोई दिक्कत नहीं। मैं उस दिन आफिस से छुट्टी ले लूँगी। जी वो पैसे मैं भेज दूँ जो आप कह रहे थे चौदह हजार"?

सृष्टि की बात को काटते हुये सप्तवर्णी बोले—

"पैसों-वैसों की बात करके मुझे शर्मिंदा न करें। आप मेरी छोटी बहन जैसी हैं, अपनी माँ के आदर्शों को लेकर मैं ये आयोजन कर रहा हूँ। ये मेरे लिये बहुत ही इमोशनल और पारिवारिक आयोजन है। छोटी बहन से पैसे लिए तो अपनी ही नजरों में गिर जाएंगे। बताता हूँ एक दो दिन में आयोजन की डिटेल्स, सपरिवार आने की तैयारी करो और मेरे घर ही रुकना सभी लोग उस दिन। एक आध दिन रुक कर ही गोंडा लौटना"।

सृष्टि ये सुनकर पुलकित हो गई और उसे अपनी पूर्व की सोच का पश्चाताप भी हुआ कि सप्तवर्णी जी को कितना गलत समझ रही थी वह जबकि वह तो छोटी बहन मानते हैं उसे।

खूब प्रचार -प्रसार हो गया और आखिर दो हफ्ते बाद की तारीख आ ही गई। उसने सपरिवार लखनऊ निकलने से पहले सप्तवर्णी जी को फोन किया कि हम आयोजन स्थल पर इतने बजे पहुँचेंगे।

उधर से सप्तवर्णी से जी बिलख बिलख कर रोते हुए बोले-

"मैं तो बर्बाद हो गया, लुट गया। मेरे प्रकाशन के डीपीटी ऑपरेटर सुनील वर्मा का एक भयानक एक्सीडेंट हो गया, उसका ऑपरेशन कराया था वो भी विफल हो गया, अब जहर पूरे पैरों में फैल गया है। पैर काटना पड़ेगा एक या शायद दोनों ही। वरना वो मर जायेगा। उसकी और मेरी सारी जमा पूँजी लग गई इस महँगे नर्सिंग होम में। अब ढाई लाख रुपये और माँगे जा रहे हैं आगे के इलाज और दवा के लिये। सुनील मेरे छोटे भाई जैसा है, अकेला कमाने वाला और उसके दो छोटे-छोटे बच्चे भी हैं। मेरे पास अब एक रुपया भी नहीं है लेकिन मैं अपने छोटे भाई सुनील को बचाऊँगा जरूर। चाहे अपना घर-बार या खुद को ही बेच देना पड़े। मेरे छोटे भाई को बचाने में मेरी कुछ मदद करो छोटी बहन'' ये कहते हुए दहाड़े मार कर सप्तवर्णी जी रोने लगे।

उन्होंने फोन बंद नहीं किया और लगातार रोते रहे। फोन पर ही सही मगर उनके विलाप सुनकर सृष्टि भी रो पड़ी और इमोशनल हो गई। वो भी सुबक-सुबक कर रोने लगी।

लखनऊ के सप्तवर्णी जी के नर्सिंग होम का विलाप गोंडा की सृष्टि शनाया के घर में समा चुका था।

सृष्टि बहुत गुमसुम और उदास रहने लगी। उसे अपने नए भाई का विलाप और दुख बर्दाश्त नहीं हुआ। उसे अब सप्तवर्णी जी का डीपीटी ऑपरेटर सुनील अपना सगा छोटा भाई लगने लगा था।

काफी सोच विचार कर उसने पति और परिवार से छुपा कर रखे गए अस्सी हजार रुपये सप्तवर्णी जी को अगले दिन भेज दिए। पैसे भेजकर उसे एक अजीब किस्म का आत्मिक सुख और संतोष मिला।

इस घटना को महीनों बीत गए। जब उसे लगा कि अब काफी वक्त बीत चुका है अब सब कुछ नार्मल हो गया होगा तो क्यों न सिद्धा सम्मान की खबर ली जाए।

उसने संपर्क करने की कोशिश की तो सप्तवर्णी जी अपने मोबाइल, व्हाट्सअप, ईमेल सबसे नदारद पाए गए।

बैंक जाकर चेक करवाया तो पता चला कि वह खाता भी बंद है जिसमें उसने रुपये भेजे थे। उसका मन बहुत आशंकित हो उठा, लेकिन अपनी शंका और परेशानी वह अपने पति और परिवार से कह नहीं सकती थी।

क्योंकि परिवार वाले नाराज तो दो-चार दिन के लिये ही होते मगर खिल्ली जीवन भर उड़ाते। पैसों का नुकसान तो वो सह लेती मगर जीवन भर की खिल्ली उड़वाना उसे हर्गिज गवारा न था।

खुद की इमोशनल बेवकूफी पर उसे बड़ी शर्मिंदगी हुई और कोफ्त भी। कुछ दिनों बाद उसने लखनऊ विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाली बचपन की सखी निष्ठा शुक्ला को फोन किया। अपनी व्यथा बताते हुए उसने सप्तवर्णी के क्रिया-कलाप और उनके कम्प्यूटर कर्मी सुनील वर्मा की हालात पता लगाने की गुजारिश की।

दो दिन बाद निष्ठा शुक्ला ने सृष्टि को फोन करके बताया कि—

"सुनील वर्मा ने पिछले वर्ष ही उनके यहाँ काम छोड़ दिया था क्योंकि सप्तवर्णी ने कभी भी एक रुपया उसके काम का भुगतान ही नहीं किया था। सुनील वर्मा का कभी कोई एक्सीडेंट हुआ ही नहीं और वो अब मेडिकल लाइन में कोई काम करता है। सप्तवर्णी एक नंबर का ठग है जो लेखिकाओं को ऐसी झूठी इमोशनल कहानियाँ सुनाकर लंबी रकम ठगता रहा है। पचासों महिलाओं को ठगा है उसने। कभी बीवी की किडनी फेल होने की तो कभी बेटी के लीवर ट्रांसप्लांट के नाम पर। हरेक ठगी के बाद वो अपना फोन और अन्य सम्पर्क कुछ दिन के लिये बंद कर लेता है और फिर कुछ महीने अंडरग्राउंड और सुप्त रहने के बाद फिर किसी नई लेखिका को सिद्धा और फिर बीमारी के नाम पर इमोशनली ठगता है। तुम कहो तो मैं यहाँ के अखबार में ये ठगी की खबर दे दूँ या पुलिस में कुछ करूँ तो इसकी अक्ल ठिकाने आये''।

"नहीं रहने दो, तुमने इतना किया बहुत है मेरे लिये, बस आखिरी मदद ये कर दो कि ये बात कभी किसी से कहना नहीं'' ये बात कहते हुए सृष्टि ने मोबाइल रख दिया।

उसने मोबाइल रखा तो देखा कि मेज पर उसकी जो डायरी खुली थी उस पर उस्ताद शायर सैयद इंशा अल्ला खाँ इंशा का एक शेर लिखा था—

"यह जो महंत बैठे हैं राधा के कुंड पर
अवतार बनकर गिरते हैं परियों के झुंड पर''।

ये पढ़कर उसे लगा कि मानो कुछ गिद्ध उसके बदन को नोच रहे हों और वह बेबस होकर कुछ प्रतिरोध न कर पा रही हो। उसके पूरे बदन में दर्द का एक आवेग उठा और उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े।

व्यंग्यकार
बलरामपुर, उत्तर प्रदेश

●

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में युगबोध

दीक्षा गुप्ता

हिंदी साहित्य जगत में परसाई का नाम बड़े आदर और सत्कार के साथ लिया जाता है। प्रत्येक युग की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं और उन सीमाओं का खंडन व्यंग्य ही करता है। यह खंडन जब साहित्यिक रूप में अभिव्यक्त होता है तो वह 'व्यंग्य साहित्य' कहलाता है। परसाई जी का रचना संसार 'व्यंग्य साहित्य का पर्याय'-सा ही प्रतीत होता है। इनका महत्त्व यही है कि उन्होंने आधुनिक युग की माँग को समझा और राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समस्त पक्षों की विकृतियों को ध्यान में रखते हुए व्यंग्य साहित्य का निर्माण किया। उनके लेखन में रचना शक्ति की गहनता है। उन्होंने शब्द को सत्ता दी, अर्थ दिया और उन्हें मार्मिक वक्त एक क्षण बनाकर संधान के लायक बना दिया। उन्होंने अपने लेखन में तत्कालीन समय के व्यक्ति, समाज और देश में व्याप्त अन्याय, शोषण, अवसरवादिता, जमाखोरी, महँगाई, भ्रष्ट आचरण, सामाजिक अंतर्विरोध, राजनीतिक विद्रूपताओं, रुढ़ियों, अस्वीकृतियों, असंगतियों को सामान्य जन के सामने लाने का सफल प्रयास किया। वे अपने लेखन काल में भारतीय जनमानस से सीधे तौर पर जुड़े हुए थे। परसाई जी के युग की लड़ाई अलग थी। गौर से देखें तो भारतेंदु कालीन रचनाकारों की लड़ाई अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ थी जबकि परसाई जी की लड़ाई स्वदेशी साम्राज्यवाद के खिलाफ थी।

परसाई जी का जीवन बहुत ही संघर्षपूर्ण रहा है। उनके जीवन में धैर्य को विचलित कर देने वाली कई घटनाएँ घटी परंतु वे हताश नहीं हुए। दुख और पीड़ा को देखते हुए परसाई जी का व्यक्तित्व निखरता चला गया। उनका मन कठिनाइयों को झेलते हुए लेखन की ओर झुकता चला गया। वे अपने लेखन के विषय में कहते हैं—"मैं बहुत भावुक, संवेदनशील और बेचैन तबीयत का आदमी हूँ। सामान्य स्वभाव का आदमी ठंडे-ठंडे जिम्मेदारी भी निभा लेता है, रोते-रोते दुनिया से तालमेल नहीं बिठा लेता है और एक व्यक्तित्वहीन नौकरी पेशा आदमी की तरह जिंदगी साधारण संतोष से भी गुजार लेता है। मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ। जिम्मेदारियाँ, दुखों की वैसी पृष्ठभूमि और अब चारों तरफ से दुनिया के हमले। इन सबके बीच सबसे बड़ा सवाल था अपने व्यक्तित्व और चेतना की रक्षा। तब सोचा भी नहीं था कि लेखक बनूँगा। पर मैं अपनी विशिष्ट व्यक्तित्व की रक्षा तब भी करना चाहता था।"[1]

समाज में फैली विसंगतियों पर साहित्य के माध्यम से किया गया प्रहार व्यंग्य कहलाता है। साधारण जीवन में इस प्रक्रिया को कटाक्ष या ताने देना भी कहते हैं। बाबूराम धोडू देसाई व्यंग्य के स्वरूप के विषय में कहते हैं—"आज के मानव को सुसभ्य तथा सुसंस्कृत बनाने के लिए जहाँ समाज, न्यायालय, सरकार हार जाती है तब प्रस्तुत व्यंग्य पिता ही एक अमोघ शास्त्र होता है, जो उनको अपनी स्थिति तथा मार्ग का सही दिग्दर्शन करा सकता है। आज की यथार्थ जीवन का प्रतिबिंब व्यंग्य में ही है। गद्य साहित्य की अन्य विधाओं की भांति हिंदी में व्यंग्य विधा भी आधुनिक युग की देन है।"[2]

व्यंग्य एक सचेतक है जो अपनी कमजोरियों के प्रति सचेत करता है। व्यंग्यकार अपने तीक्ष्ण वाणों से समाज को जगाने का प्रयास करता है। परसाई जी भी बड़ी शालीनता से लिखते हुए समाज को जागृत करने का प्रयास किया। हरिशंकर परसाई व्यंग्य के विषय में कहते हैं—"सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है। वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है। अपने से साक्षात्कार करता है। चेतना में हलचल पैदा करता है और जीवन में व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, सामंजस्य और अन्याय से लड़ने के लिए उसे तैयार करता है। वह मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाना चाहता है।"[3]

परसाई के निबंधों के विषय अनंत हैं। इन्होंने अपने निबंधों पर विविध विषयों पर लेखनी चलायी है। उनका मानना है कि 'सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है, वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है।' यही कारण है कि इनका प्रारंभिक निबंध लेखन अखबारों के माध्यम से शुरू हुआ है जो 'सुनो भाई साधो' नामक निबंध संग्रह में संकलित है। इन्होंने तीन उपन्यास भी लिखे हैं—'तट की खोज', 'जल और ज्वाला' तथा 'रानी नागफनी की कहानी'। 'तट की खोज' उपन्यास में परसाई जी ने पूरे उत्तर भारत के परिवेश का वर्णन किया है और स्त्री के विद्रोही स्वरूप को उभरा है। 'जल और ज्वाला' उपन्यास में पारिवारिक पृष्ठभूमि में सामाजिक परिदृश्य को प्रस्तुत किया गया है। 'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास में सामंती परिवेश और पात्रों के माध्यम से तत्कालीन समय के यथार्थ को प्रस्तुत किया है जिसमें सामाजिक पतन और राजनीतिक अवमूल्यन है। परसाई जी ने निबंध हो या उपन्यास जिस भी विधा को चुना उसे अपने व्यंग्य सार्थक और सफल बना दिया।

आधुनिक युग में नारी की स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं आया है। उसका शोषण आज भी जारी है केवल शोषण का तरीका बदल गया है। परसाई जी ने अपने कई निबंधों में नारी की सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन किया है। भारतीय समाज में नारी के प्रश्न पर कथनी और करनी में बहुत बड़ा अंतर रखा गया है। नारी को सदैव ही कमजोर और असहाय समझकर उसकी सर्वत्र उपेक्षा की गई है। परसाई जी ने नारी की सामाजिक स्थिति को अच्छी तरह समझा और पर है अंततः उन्होंने अत्यंत गहराई तक जाकर स्थिति का जायजा लिया तथा परत-दर-परत उसकी जाँच पड़ताल की है। हमारे आधुनिक समाज में यदि स्त्री को थोड़ी भी आजादी मिल रही है तो उसका कारण है—आर्थिक स्थिति। दिन-रात बढ़ती महँगाई के कारण नारी को बाहर जाने की छूट मिल गयी है किंतु उसके ऊपर

आज भी बहुत सारी पाबंदियाँ है। 'संस्कारों और शास्त्रों की लड़ाई' नामक निबंध में परसाई जी ने इस विषय पर अपना विशद अन्वेषण प्रस्तुत किया है। इस निबंध की सरिता जी के पति महँगाई से त्रस्त होकर उन्हें नौकरी करने की इजाजत दे देते हैं तथा उन्हें स्वतंत्रता प्रदान कर देते हैं। संस्कारों और शास्त्रों की लड़ाई में उनके संस्कार पराजित हो जाते हैं। अर्थशास्त्र संस्कारों पर हावी हो जाता है। चूँकि हमारे समाज में स्त्रियों को बाहर निकल कर कमाने की इजाजत नहीं है और यह एक संस्कार है। परंतु इस निबंध में यह संस्कार टूट जाता है क्योंकि पति को महँगाई में संस्कार को छोड़ने पर मजबूर कर दिया। परसाई जी ने कहा लिखते है कि हमारे जमाने में नारी को जो भी मुक्ति मिली है, क्यों मिली है? आंदोलन से? आधुनिक दृष्टि से? उसके व्यक्तित्व की स्वीकृति से? नहीं उसकी मुक्ति का कारण महँगाई है। नारी मुक्ति के इतिहास में यह वाक्य अमर रहेगा- एक की कमाई से पूरा नहीं पड़ता।

परसाई जी ने मध्यवर्गीय परिवारों में रहने वाली नारी की स्थिति का सुंदर वर्णन किया है। वे जानते हैं कि मध्यवर्गीय व्यक्ति आधुनिकता की दौड़ में शामिल होना चाहता है वहीं दूसरी तरफ मान्यताओं, परंपराओं और रूढ़ियों में लिपटा भी रहना चाहता है। इस तरह जीवन के दोहरे मापदंड रखने वाले परिवारों में सबसे दयनीय स्थिति एक स्त्री की होती है। 'वो जरा वाइफ है ना' निबंध में परसाई जी ने मध्यवर्गीय स्त्री की दशा का वर्णन किया है। आधुनिकता का ढोंग करने वाले यह पति स्वयं रोड़ियो से जकड़े हुए हैं तथा मानसिक विकृति का शिकार है जो बात दूसरों के लिए कहते हैं स्वयं उसे करना उनके लिए बहुत भारी पड़ता है। ऐसे पतियों के जीवन में जो दोहरा मापदंड है इससे मध्यवर्गीय स्त्रियाँ पिसती रहती हैं। वे लिखते हैं- " मैंने कहा- हमारी मुश्किल यह है कि वह हमेशा दूसरों की बीवी की खोज करते रहते हैं। दूसरे की स्टेज पर आ जाए अपनी ना आए। दूसरों की नहीं आती तो कहते हैं बड़े पिछड़े हुए लोग हैं। हम पिछड़े हुए नहीं हैं, जिन्होंने उस का मुरब्बा बनाकर घर में रख छोड़ा है। "4 पत्नी को आधुनिक तथा शिक्षित बनाने वाले यह पति अंदर से कितने पति और भयभीत हैं इन्हें पत्नी तथा मित्र किसी भी व्यक्ति पर भरोसा नहीं है। ऐसे समाज में नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करना कितनी बेमानी बात है। इसी संदर्भ में अभी हाल ही में खबरों में हमने सुना कि उत्तर प्रदेश की ज्योति मौर्या एसडीएम पद पर रहती है और उसे एसडीएम बनाने वाले उसके पति यह दावा करते हैं कि उसे पढ़ा-लिखा का एसडीएम उन्होंने ही बनाया है ऐसे में वह जो चाहे उसके साथ सलूक कर सकते हैं परंतु एसडीएम वह घर के बाहर है घर में वह सिर्फ उनकी पत्नी है। इस घटना के बाद कई पति जो आधुनिकता का स्वांग भरते हैं उन्होंने अपनी पत्नियों को पढ़ाना बंद कर दिया। यह कैसी आधुनिकता है जहाँ पति कुछ भी करें पर उस पर कोई पाबंदी नहीं लगती है परंतु पत्नी को किसी भी घटना से प्रभावित होकर उसके सारे अधिकार और स्वतंत्रता छिन ली जाती है। ऐसे समय में परसाई याद आते हैं।

'विज्ञापन में बिकता नारी शरीर' नामक निबंध में परसाई जी ने आधुनिक नारी की स्थिति का सूक्ष्म विवेचन किया है। आज भी नारी का मूल्यांकन उसके शरीर के माध्यम से ही किया जाता है। नारी भी उपभोक्तावादी संस्कृति का माध्यम मात्र बनकर रह गयी है। आज बड़ी से बड़ी कंपनियाँ अपने उत्पाद को बेचने के लिए नारी के शरीर का प्रयोग करती हैं। विज्ञापन के माध्यम से अपनी वस्तुओं की बिक्री नहीं बढ़ाते बल्कि नारी शरीर का विज्ञापन प्रस्तुत करते हैं। या कितना घिनौना पक्ष है, जहाँ अहमियत वस्तुओं को नहीं बल्कि नारी शरीर को दी जाती है। परसाई इस निबंध में लिखते हैं—"मैंने कोई विज्ञापन ऐसा नहीं देखा जिसमें पुरुष स्त्री से कह रहा हो कि यह साड़ी या यह स्नो लो। अपनी चीज वह खुद पसंद करती है, मगर पुरुष की सिगरेट से लेकर टायर तक में दखल देती है। ऐसा लगता है सारी अर्थव्यवस्था पर नारी सौंदर्य ने कब्जा कर रखा है।"[5]

हरिशंकर परसाई द्वारा सामाजिक विकृतियों का वर्णन भी उनके कई रचनाओं में मिलता है। 'निंदा रस', 'कबीरा आप ठगाइए', 'स्नान और पगडंडियों का जमाना' आदि रचनाओं में विभिन्न प्रकार के चरित्रों का उद्घाटन किया गया है। समाज के उच्च्य पदों पर विराजमान महान व्यक्ति अक्सर समाज को बदलने की, नव निर्माण करने की बात करते हैं। परंतु ऐसी बड़ी-बड़ी बाते करने वाले महान समाज के पुरोधाओं पर परसाई जी व्यंग करते हुए लिखते हैं—"मेरे साथी ने कहा हमें समाज का नवनिर्माण करना पड़ेगा। बुद्धिवादी ने फिर हम दोनों को घूर कर देखा। बोला समाज का पहला फर्ज यह है कि वह अपने को नष्ट कर ले। सोसायटी मस्त डिस्ट्रॉय इट सेल्फ, यह जाति, वर्ण और रंग और ऊँच-नीच के भेदों से जर्जर समाज पहले मिटे तब नया बने। सोचा पूछूं—सारा समाज नष्ट हो जाएगा तो प्रकृति को मनुष्य बनाने में कितने लाख साल लग जाएँगे?"[6]

आज भी हमारे समाज में जाति-पाँति मौजूद है। परसाई जी हिंदू समाज में व्याप्त जाति-पाँति को सबसे बड़ी बुराई मानते थे। उनके लिए दुनिया में एक ही जाती है वह है मनुष्य जाति। उन्होंने केवल नाम के लिए जाति-पाँति का विरोध नहीं किया है बल्कि उन्होंने व्यावहारिक स्तर पर इसे माना भी है। उन्होंने 'प्रेम की बिरादरी', 'प्रेम प्रसंग में फादर', 'ऊँची जातियों का आरक्षण', 'हरिजन को पीटने का यज्ञ' आदि निबंधों में अपने तीखे व्यंग्य के साथ विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने केवल सतही स्तर पर अपने विचार नहीं प्रस्तुत किये हैं बल्कि उसका ठोस आधार भी बताया है। आज के इस वैज्ञानिक युग में इस तरह की मान्यताएँ न केवल समाज को जर्जर बनाती है बल्कि उसे खोखला भी करती हैं। हरिजन को पीटने का यज्ञ निबंध में इंदौर के पास एक करोड़ की लागत से एक यज्ञ हुआ। उसी के पास से एक हरिजन दूल्हा घोड़े पर सवार होकर निकला तो सवर्णों ने दूल्हे और बारातियों को पीट दिया। हमारे समाज में इस तरह की घोर जातिवादी मानसिकता है कि वह एक दलित की परछाई भी बर्दाश्त नहीं कर सकता है। परसाई जी इस पर अपने तीखे व्यंग्य बाण चलाते हुए कहते हैं—"क्या यज्ञ के प्रताप से ही दूल्हा पीटा? दोनों में संबंध है, यज्ञ करने और कराने वाले ऊँची जाति के लोग होते हैं। वैदिक युग में ब्राह्मण ने यज्ञ की तकनीक पर एकाधिकार कर लिया था। तकनीक का मामला है, तब क्षत्रियों ने तत्व चिंतन से ब्राह्मणों को पीटा। मगर ब्राह्मण उस्ताद है। उसने फिर कर्मकांड फैलाया और सारे समाज को जकड़ लिया।"[7]

परसाई जी समाज के सबसे निम्न तबके मजदूर वर्ग का यथार्थ

चित्रण अपने निबंधों में करते हैं। परसाई ने मजदूरों को उनके हक के लिए जाग्रत किया है। मजदूरों को उनका हक दिलाने के लिए प्रतिबद्ध परसाई जी ने उनके साथ हुए अन्याय का प्रतिकार करना चाहा है। हमारे समाज के पूँजीपति वर्ग अपने भाषणों में कहते तो जरूर हैं कि वह मजदूरों को उनका हक देंगे, सम्मान देंगे परंतु व्यवहार में ऐसा होता कुछ भी नहीं है। हमारे समाज में दोहरा मापदंड शुरू से रहा है। परसाई जी ने अपने कई निबन्धों जैसे 'मुर्दे का मूल्य', 'जाति निरपेक्ष बलात्कार', 'अतिक्रांतिकारी', 'ऊँची जातियों का आरक्षण', 'सबको सन्मति दे भगवान' आदि में मजदूरों की स्थिति, दशा तथा शोषितों द्वारा उनके शोषण की प्रवृत्ति पर पूरी तरह से विचार करते हुए समाज के सुविधाभोगी वर्ग पर व्यंग्य भी किया है।

'अतिक्रांतिकारी' निबंध में परसाई जी उन मार्क्सवादियों का पर्दाफाश करते हैं जो क्रांति की बातें तो करते हैं किंतु अपने सिद्धांतों को व्यावहारिक स्तर पर लागू नहीं करते हैं। सारी दुनिया के मजदूरों की चिंता करने वाले क्रांतिकारी महोदय अपने घर में ही न्यूनतम मजदूरी तय नहीं करते हैं। ऐसे क्रांतिकारी महोदय की कलई खोलते हुए लेखक लिखते हैं—"मैंने पूछा- कॉमरेड आपके फार्म पर मजदूर तो होंगे, उन्हें मिनिमम वेज आप क्या देते हैं? मुझे पता नहीं हिसाब पिताजी देखते हैं। कॉमरेड, खेत मजदूरों से आप काम लेते हैं और मजदूरी पिताजी पर छोड़ देते हैं। आपके पिताजी न्यूनतम वेतन ही देते होंगे, यह पक्का है और आप अपने पिता से न्यूनतम मजदूरी दिलाते नहीं है तो मार्क्सवाद, लेनिनवाद के हिसाब से क्रांति के लिए हमेशा दूसरे के बाप की तलाश करनी चाहिए। अपने बाप को खून चूसने की सुविधा दी जाती है, क्रांति में। उस खून का एक हिस्सा क्रांतिकारी बेटा भी पीकर सर्वहारा का नेतृत्व करने बढ़ जाता है।"[8] मजदूरों को न्याय ना दिलाने वाले यह क्रांतिकारी झूठ, ढोंग और दिखावे का जामा पहने रहते हैं।

'जाति निरपेक्ष बलात्कार' निबंध में लेखक नेताओं की हकीकत बताते हुए लिखते हैं—"हरिजन सुरक्षा में हमने कितनी प्रगति की है कि चार हरिजन औरतों से बलात्कार होता है, तो लगे हाथ गैर-हरिजन औरतों से भी कर लिया जाता है। सरकार ने अत्याचारियों को इतना सिखा ही दिया है कि सिर्फ हरिजन औरतों से बलात्कार मत किया करो, साथ में संतुलन बनाये रखने के लिए गैर हरिजन औरत को भी निपटाया करो।"[9]

स्वतंत्रता न जाने कितने त्याग और बलिदान के बाद हमें मिली परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लोगों का मोहभंग हो गया। देश में राजनीतिक उथल-पुथल घर कर गयी। स्थिति पहले से अधिक कष्ट कारक हो गई अंग्रेजों के शासन काल से अधिक भारतीय सत्ताधारियों के समय अंधेर नगरी की स्थिति उत्पन्न हो गयी। परसाई जी इस विषय में कहते हैं- " अंग्रेज छुरी कांटे से प्लेट में रखकर इंडिया को खाते रहे। देसी साहब बचे भारत को खाने लगे। देश 1947 में स्वतंत्र हो गया। अहिंसक क्रांति कहलाये। विदेशियों ने ट्रांसफर ऑफ़ पॉवर सत्ता का हस्तांतरण कहा। वास्तव में ट्रांसफर ऑफ डिश हुआ। परोसी थाली एक के सामने से दूसरे के सामने आ गयी। वे देश को पश्चिमी सलाद के साथ खाते थे और देसी सत्ताधारी जनतंत्र के अचार के साथ खाने लगे।"[10] परसाई जी की दृष्टि राजनीति में व्याप्त हर उस असंगति पर गया है जिसे आज का सामान्य जने पीड़ित और शोषित है। उषा शर्मा जी के शब्दों में कहें—"विकृत राजनीतिक परिवेश के प्रति हरिशंकर परसाई के मन में अत्यधिक आक्रोश है जिसकी खींज और भड़ास को उन्होंने व्यंग्य के शिल्प माध्यम और साधनों का भरपूर प्रयोग करते हुए निकाला है और लक्ष्यों पर चुन-चुन कर प्रहार किए हैं।"[11]

परसाई जी ने साहित्य और राजनीति के संबंधों को भी अच्छी तरह समझाया है। उनका मानना है कि जो व्यक्ति राजनीति के जितना निकट है उसका साहित्य उतना ही अधिक सार्थक होगा। कोई भी व्यक्ति चाह कर भी राजनीति से दूर नहीं हो सकता है। वोट देना भी राजनीति का ही एक हिस्सा है। लेखक का मानना है कि साहित्यकार का दायित्व है कि सत्ता लोलुप और भ्रष्ट लोगों से राजनीति को मुक्त करवाकर उसे सामान्य जनता के चरणों में प्रतिष्ठित करें। वे कहते हैं- "लेखक, अध्यापक, बुद्धिजीवी अगर राजनीति से बाहर रहे, तो भीतर कौन बचे? आप जैसे अनपढ़, गवार, असभ्य, असंस्कृत, भ्रष्ट लोग। यह देश ऐसे लोगों के हाथ में सौंपना है या नहीं यह भी तो सोचना पड़ेगा।"[12]

'भोलाराम का जीव' निबंध में परसाई जी ने सरकारी संस्थानों, दफ्तरों तथा राजनैतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, नौकरशाही, लालफीताशाही का उद्घाटन किया है। इसके साथ ही भ्रष्टाचार के कारण आम आदमी की पीड़ा, मानसिक क्लेश, अभावों से भरी जिंदगी की त्रासदी को भी उद्घाटित किया है। भोलाराम के जीव की तलाश में नारद पृथ्वी पर आते हैं और अनेक स्थानों पर भटकने के बाद दफ्तर पहुंचते हैं और वहाँ के कर्मचारियों की रिश्वत लेकर काम करने की पद्धति से हैरान हो जाते हैं, तब उन्हें पता चलता है कि पेंशन पाने के लिए भोलाराम में रिश्वत नहीं दी थी। आत्मा फाइलों में ही जकड़ी है। चित्रकूट के द्वारा परसाई जी भ्रष्टाचार की स्थिति का वर्णन करते हैं—"महाराज आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत होता है, लोग दोस्तों को फल भेजते हैं और उसे रास्ते में ही पार्सल वाले उड़ा लेते हैं। होजरी के पार्षदों के मोजे रेलवे के अफसर पहनते हैं, मालगाड़ी के डिब्बे के डिब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है। राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर कहीं बंद कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को किसी विरोधी ने, मरने के बाद भी खराबी के लिए तो नहीं उड़ा दिया।"[13]

आजकल सरकारी काम करवाने में विभिन्न तरह के अपव्यय करने पड़ते हैं। कोई भी सरकारी काम आसानी से नहीं हो सकता है। राशन कार्ड बनवाना है तो पैसे खिलाओ, पैन कार्ड बनवाना है तो पैसे खिलाओ, सरकारी मुआवजा लेना है तो मुआवजे से हिस्सा दो यानी घूस दो, किसी परिवार का व्यक्ति दुर्घटना ग्रस्त हो गया है तो मुआवजे को पाने के लिए सरकारी दफ्तर के चक्कर काटो और घुस दो अर्थात कोई भी कार्य एक आम आदमी बिना अपव्यय किये पूर्ण नहीं कर सकता है। परसाई जी अपने निबंध 'ग्रीटिंग कार्ड और राशन कार्ड' में सरकारी कामों में धन के अपव्यय, परेशानी और अकर्मण्यता पर व्यंग्य किया है। उनके 'विधायकों की महंगी गरीबी', 'नया खून पुराना खून', 'हरि अनंत हरि कथा अनंता', 'कहाँ है भारत-भाग्य विधाता', 'राजनैतिक स्लो पोयज़निंग', 'छुट्टीवाला शोक',

'दर्द की दवा' आदि में राजनीति व्यंग्य मिलता है।

जनता नेताओं के लिए बस वोट बैंक है। नेताओं को चुनाव आने पर जनता की याद आती है परंतु जीतने के बाद, शपथ ग्रहण करते ही वे भूल जाते हैं कि वह जिस पद पर आसीन हुए हैं उसके दायित्व क्या हैं? सत्ता पर बैठते ही जनता नेताओं के लिए सिरदर्द बन जाती है और जनता की समस्याएँ—एक खिलौना। इस स्थिति पर परसाई जी कहते हैं—"राजनीतिज्ञों के लिए हम नारे और वोट हैं, बाकी के लिए हम गरीबी, भूख, बीमारी और बेकारी हैं। मुख्यमंत्रियों के लिए हम सिरदर्द हैं और उनकी पुलिस के लिए हम गोली दागने के निशाने हैं।"[14]

परसाई जी भ्रष्ट नेताओं से समाज को, सामान्य जन को बचाना चाहते हैं। इनके दिखावेपन, छल-कपट को समाज से दूर करना चाहते हैं और कहते हैं—"अगर वैज्ञानिक कुछ काम करना चाहते हैं तो एक काम करें। प्रदूषण को रोकने के उपाय करें। इनसे जनता नेताओं के शरीर से झूठ, फरेब, छल, कमीनापन की दुर्गंध निकलकर वातावरण में समा रही है। इसमें जहर है, बीमारी फैलेगी। वैज्ञानिक इस जनता प्रदूषण को किसी तरह रोके।"[15] इस व्यंग्य के माध्यम से परसाई जी ने राजनीतिज्ञों के चेहरे से मुखौटे उतार कर उनके यथार्थ को पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। इसके अतिरिक्त मंत्री-नेताओं के काले धंधे, सांप्रदायिक दंगे करवाने, जनता की आँखों में धूल झोंकने, विलासी मंत्रियों के लिए सचिवालय में विश्राम घर की बात और अन्य अनेक पहलुओं पर परसाई जी के व्यंग्य दिखाई पड़ते हैं।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। स्वतंत्रता के बाद जिस भारतीय संस्कृति को और अधिक फलना फूलना था वह भी विसंगतियों का शिकार हो गई। नई पीढ़ी ने पश्चिमी संस्कृति का इतना अंधानुकरण किया की पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी में विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गई। भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी संस्कृति के हुए हमले जैसे आधुनिकता, फैशन परस्ती, संगीत, नृत्य, रेस्ट्रा, शराब, अंग्रेजी भाषा, रहन-सहन हर पहलू पर परसाई की दृष्टि गई है। वे कहते हैं- "हमारी संस्कृति हजारों वर्ष पुरानी है और महान है। पूछा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति क्या है? भारतीय संस्कृति कोई खाने की चीज नहीं है, पीने की चीज नहीं है। भारतीय संस्कृति, संस्कृति है और भारतीय है।"[16] आज के समाज की संस्कृति को परसाई ने कई नाम दिए हैं- सड़ी सुपारी की संस्कृति, बनिया संस्कृति और जेबकट की सभ्यता आदि। भारतीय संस्कृति का पतन किस तरह हो रहा है इस पर परसाई की व्यंग्य दृष्टि गयी है।

परसाई जी आधुनिक पीढ़ी के हिंदी के बजाय अंग्रेजी को प्रश्रय देने पर भी व्यंग्य करते हैं। अंग्रेजी भाषा का प्रभाव हमारे भारत में बढ़ता ही जा रहा है। मध्यवर्ग अंग्रेजी को धड़ल्ले से अपना रहा है। अंग्रेजी जीवन का अभिन्न अंग बनती जा रही है। भाषा में जबरदस्ती अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग पर परसाई जी कहते हैं—"कल तो रीगल गए थे फिल्म देखने। ओ रियली? ओ वंडरफुल!! हमें तो अब एक अच्छा कुक मिल गया है। ओ रियली? ओ वंडरफुल!! ... सोचा, अगर एक कहे कि हमने तो आज खाना खाया था तो दूसरी कहेगी- ओ रियली? ओ वंडरफुल!!"[17] संस्कृति के नाम पर आज छल छद्म, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, आडंबर आदि पनप रहे हैं। परसाई जी प्राचीन संस्कृति को जीवित रखना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि नयी पीढ़ी भी संस्कृति के अर्थ को समझें। संस्कृति के नाम पर दिखावा या छल कपट ना करें। वे उस संस्कृति को जिंदा रखना चाहते हैं जिसका लोहा पूरा विश्व मानती थी।

परसाई ने शिक्षा व्यवस्था पर भी व्यंग्य किया है। आज समस्त शिक्षा प्रणाली अस्वस्थ है। हर पहलू में व्याप्त विसंगतियाँ परिवर्तन की मांग कर रही हैं परंतु परिवर्तन की बात तो की जाती है पर परिवर्तन होता नहीं है। इस पर परसाई जी कहते हैं- "वर्तमान शिक्षा पद्धति अत्यंत दूषित है। इसमें आमूल परिवर्तन करना चाहिए। भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, शिक्षा मंत्री, राज्य के मंत्री, नेता, व्यापारी, सब कह रहे हैं शिक्षा पद्धति को बदलना चाहिए। बदलना चाहिए ही—बात राष्ट्रपति ने कम से कम 50 बार कही होगी, पंडित नेहरू ने 200 बार और हर मंत्री ने कम से कम 500 बार - बदलना चाहिए! बदलना चाहिए!"[18] इसके साथ ही परसाई जी ने वर्तमान परीक्षा पद्धति, शिक्षा केंद्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार, शिक्षा प्रणाली में नकल, नंबर बढ़वाना, पेपर लीक करवाना आदि पर भी अपने तीक्ष्ण व्यंग्य बाण चलाये हैं।

कुछ ही सालों में शोध कार्य बहुत धड़ल्ले से हुए हैं। बेरोजगारी के कारण भी इसे बहुत प्रश्रय मिला है। परसाई जी डॉक्टरेट डिग्री पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं—"विश्वविद्यालय में रिसर्च करने लगा। वह नौकरी नहीं है, फिर भी इज्जत देती है। बहुत से लोग पुलिस के डर से रिसर्च करते हैं। एम. ए. करने से नौकरी मिलने तक जो काम किया जाता है उसे रिसर्च कहते हैं। वह दफ्तर जाने से पहले किया गया हरि स्मरण है। इसलिए अधिकांश शोध प्रबंध विष्णु सहस्त्रनाम है यानी उसमें एक ही बात हजार तरीके से कही जाती है।"[19]

हरिशंकर परसाई जी के अपने जीवन की विसंगतियाँ उनके साहित्य में प्रकट हो उठी हैं। उन्होंने आम आदमी को बहुत करीब से देखा और उनके अभाव और दुखों को आत्मसात करते हुए शासन और सत्ता के खिलाफ अपनी बुलंद आवाज उठायी। मानव के प्रति सहानुभूति और व्यवस्था में परिवर्तन के लिए परसाई ने राजनीति, समाज, धर्म, अर्थतंत्र, संस्कृति, साहित्य और मानव प्रकृति संबंधी व्यंग्य साहित्य का निर्माण किया। मानव और उसके आसपास के परिवेश की प्रत्येक विसंगति हरिशंकर परसाई के व्यंग्य की लक्ष्य बनी है। परसाई जी एक ऐसे व्यंग्यकार हैं जिन्होंने व्यंग्य विधा को एक निश्चित स्वरूप दिया है। इसलिए उनके साहित्य में व्यंग्य का अध्ययन वस्तुतः व्यंग्य विधा की गहरी पहचान करवाता है। व्यंग्य हरिशंकर परसाई का स्वभाव है। उन्होंने 'वैष्णव की फिसलन' व्यंग्य की भूमिका में कहा है- "यह गंभीर विचारणीय लेख हैं- पर अपने स्वभाव के कारण इनमें जगह-जगह व्यंग्य भी आ गया है।"[20] परसाई की अधिक सफलता, प्रतिष्ठा और लोकप्रियता का कारण है कि व्यंग्य उनके साहित्य में गौण रूप में नहीं आया है बल्कि वह रचना के कण-कण में समाया हुआ है और रचना का मूल आधार है। उन्होंने निराला की परंपरा को सच्चे अर्थों में उद्दीप्त किया, भारतेंदु की परंपरा को विकसित किया और कबीर के व्यंग्य को व्यापकता दी।

संदर्भ सूचीः

1. वसुधा, अंक 41, जून 1998, पृ. 139
2. देसाई बाबूराम धोडू, हिंदी व्यंग्य विधाः शास्त्र और इतिहास, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 1990, पृ. 32
3. प्रसाद कमला (सं.), परसाई रचनावली, भाग 6, हरिशंकर परसाई, व्यंग्य क्यों? कैसे? किस लिए?, तिरछी रेखाएँ की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 249
4. प्रसाद कमला (सं.), परसाई रचनावली, भाग 3, वो जरा वाइफ है ना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 106
5. वही, विज्ञापन में बिकता नारी शरीर, पृ. 220
6. प्रसाद कमला (सं.), परसाई रचनावली, भाग 1, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 61
7. प्रसाद कमला (सं.), परसाई रचनावली, भाग 4, हरिजन को पीटने का यज्ञ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 192
8. वही, अति क्रांतिकारी, पृ. 168
9. वही, जाति निरपेक्ष बलात्कार, पृ. 115
10. परसाई हरिशंकर, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण 1970, पृ. 14
11. शर्मा, उषा; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी निबंध साहित्य में व्यंग्य, आत्माराम एंड संस प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 139
12. प्रसाद, कमला; (सं.), परसाई रचनावली, भाग 3, चुनाव और सुशील लेखक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 292
13. https://www.hindisamay.com/content/429/1/»
14. प्रसाद, कमला; (सं.), परसाई रचनावली, भाग 4, दर्द ही दवा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 57
15. वही, पृ. 122
16. प्रसाद, कमला; (सं.), परसाई रचनावली, भाग 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 74
17. प्रसाद, कमला; (सं.), परसाई रचनावली, भाग 3, माना कि रहेंगे दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 170
18. प्रसाद, कमला; (सं.), परसाई रचनावली, भाग 4, चाहिए! चाहिए! चाहिए!, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 364
19. प्रसाद, कमला; (सं.), हरिशंकर परसाई, रिसर्च का चक्कर, परसाई रचनावली, भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ. 111
20. परसाई, हरिशंकर; वैष्णव की फिसलन, राजकमल प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2016, लेखक की ओर से, पृ. 1

शोधार्थी
कलकत्ता विश्वविद्यालय
हिंदी विभाग, कोलकाता

●

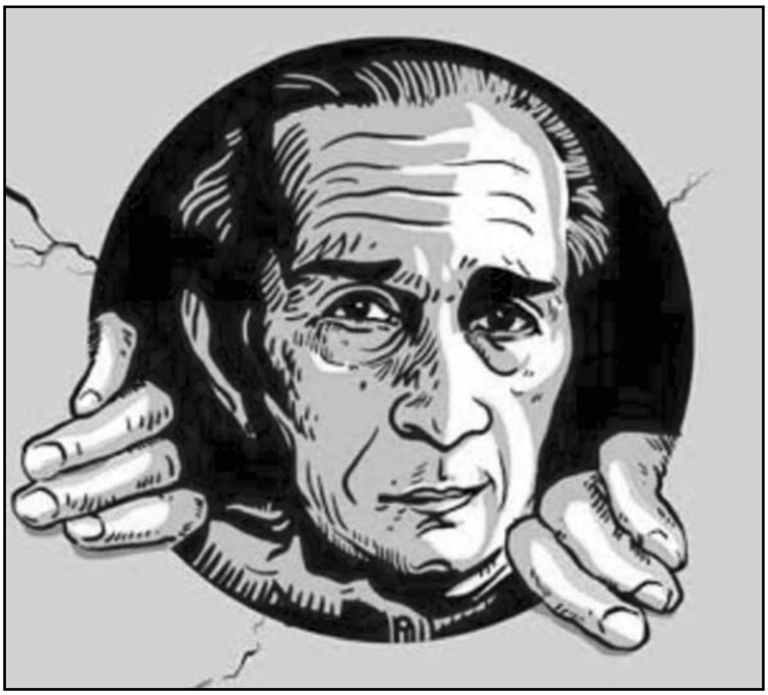

इंटरनेट से साभार

लोकनाट्य परंपरा में 'बिदेसिया' का स्थान

पूजा कुमारी

शोध सार : "बिदेसिया" भोजपुरी अंचल का सामाजिक और पारिवारिक यथार्थ का दस्तावेज है। इस लोकनाटक का मुख्य उद्देश्य समाज में प्रचलित समस्याओं को उजागर करना और जनता को मनोरंजन के माध्यम से शिक्षित करना है। यह लोकनाटक विशेष रूप से भोजपुरी लोकनाट्य शैली का एक प्रमुख उदाहरण है। अपनी विशिष्ट कथ्य और रंग के आधार पर यह अन्य लोकनाटकों से अलग दिखता है।

बीज शब्द : लोकनाटक, जनमानस, स्थानीय-पन, अनुकरण।

प्रस्तावना : लोकनाटक किसी क्षेत्र विशेष की गतिविधियों की सूक्ष्म प्रस्तुति होती है। यह नाटक पूर्णतः स्थानीयबोध से लवरेज होता है। स्थान विशेष की वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान, भाषा-बोली, चाल-ढाल इत्यादि सम्मस्त संस्कृतियों को खुद में समेटे रखता है। लोकनाटक (लोकल) स्थानीय लोग के द्वारा, स्थानीय लोगों के लिए, स्थानीयता को प्रस्तुत करता है। स्थानीय जनमानस के हर्षोल्लास के विकास के साथ संवेदनाओं का जुड़ाव प्रस्तुत होता है। लोक जीवन को आधार बनाकर लोकनाटक सृजित होता है। लोकल लोगों के संस्कार ही नाट्य सृजन का मूल स्रोत माना गया है। जनमानस की नैसर्गिक या स्वाभाविक अभिव्यंजना लोक में लोगों को एक सूत्र में बाँधे रहती है। लोकनाटक का परिचय देते हुए विद्वजन एक ही बात पर जोर देते हैं—'स्थानीय पन'। साहित्य में लोकनाट्य की बात करें तो, लोकनाट्य में लोगों के जीवन से जुड़े प्रत्येक पल का पुनः क्रियात्मक रूप दिखता है। इसके माध्यम से व्यस्तता भरे जीवन में, लोग क्षण भर की खुशी का आनंद लेते हैं। दैनिक कार्यकलापों से थके हारे लोगों की संजीवनी बूटी है। इससे जनचेतना समृद्ध होती है और लोकनाट्य लोक के दुखहरण के रूप में उपलब्ध है। लोकनाट्य के संदर्भ में विशेष बात यह है कि यह आम जनमानस के दुख-सुख से अधिक तारतम्य स्थापित करती है। इस बात की पुष्टि डॉ. श्याम परमार की पंक्तियों से होती है— "लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से हो और जो परंपरा से अपने-अपने क्षेत्र के जन समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो।"[1]

लोकनाट्य परंपरा

लोकनाट्य परंपरा भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो विभिन्न समाजों की लोकधाराओं, परंपराओं, रीति-रिवाजों, मान्यताओं और सामाजिक संरचनाओं को दर्शाती है। यह एक ऐसी रंगमंचीय विधा है जो न केवल मनोरंजन का साधन रही है, बल्कि समाज को शिक्षित और जागरूक करने का भी माध्यम बनी हुई है। लोकनाट्य की परंपरा का प्रारंभ मानव जीवन के साथ ही माना जाना चाहिए। क्योंकि मानव प्रवृत्ति के मूल में ही 'अनुकरण' व्याप्त होता है। वह जन्म से ही अनुकरण कर सामाजिक गतिविधियों को सीखता है और उसे अपने व्यावहारिक जीवन में उतारता है। यही अनुकरण की प्रवृत्ति जन सामान्य में लोकनाट्य को जन्म दिया होगा। अनुकृति की पद्धति नाट्यशास्त्र के पूर्व की है। इस कारण यह मानना गलत नहीं होगा कि लोकनाट्य परंपरा आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से पहले की है। क्योंकि भरतमुनि स्वयं नाट्यशास्त्र में लिखते हैं—

'लोक सिद्ध भवेत्, सिद्ध नाट्कम् लोकात्मक'

(अर्थात लोक प्रवृत्तियाँ जिसमें ओत-प्रोत है अथवा लोकात्मक जो वस्तु अभिनय है वह नाटक है।)

'यानी शास्त्राणि में धर्मा, यानी शिल्पानी या क्रियाः
लोक धर्म प्रवृत्तानि, नाट्यभित्य भिसंगीतम्।'[2]

(अर्थात जो भी शास्त्र धर्म या शिल्प क्रिया, लोक धर्म को लेकर प्रवृत्त होती है—वह नाट्य है। भरतमुनि को दृढ़ विश्वास था की नाट्य 'लोक' की वस्तु है।)

इससे यह इंगित होता है कि लोकानुरंजन के लिए लोकनाट्य अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही परंपरा है। इसमें समाज की अनुकृतिमूलक प्रवृत्तियों का ही प्रदर्शन होता है। लोकनाट्य के माध्यम से जीवन और लोकसंस्कृति भावी पीढ़ी को धरोहर के रूप में मिलती है। आचार्य भरत भी इसी अनमोल धरोहर को आधार बनाकर 'नाट्यशास्त्र' की रचना किए हैं। इसकी पुष्टि रमेश गौतम की पुस्तक 'हिंदी रंगमंच का लोक पक्ष' के पूर्वराग में हुआ है—"सच्चाई तो यह है कि नाट्यशास्त्र की विशद शास्त्रीयता के पीछे लोकधर्मिता की ही आधारशिला है। इसलिए स्वयं आचार्य भरत लोकसिद्ध को ही नाटकसिद्ध घोषित करते हैं।"[3] चुकी भारत राष्ट्र विविधताओं का द्योतक है। इसलिए यहाँ नाट्य परंपरा भी क्षेत्रीय विविधता लिए हुए हमारे समक्ष मौजूद है। विविधता के कारण भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश की अपनी खूबसूरती और सौंदर्य है। सौंदर्य का एक रूप विभिन्न राज्यों के लोकनाट्य में भी मौजूद है। जो निम्न है—नौटंकी (उत्तर प्रदेश, राजस्थान)—गीत, नृत्य और संवाद से भरपूर यह नाट्य शैली ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय है। तमाशा (महाराष्ट्र)—इसमें नृत्य, संगीत और संवाद का सुंदर समावेश होता है। भवई (गुजरात)—पारंपरिक लोकनाट्य शैली, जो पौराणिक कथाओं और सामाजिक विषयों पर आधारित होती है। जात्रा (पश्चिम बंगाल)—खुले मंच पर प्रस्तुत होने वाली यह शैली धार्मिक और सामाजिक विषयों को उजागर करती है। यक्षगान (कर्नाटक)—यह एक नृत्य-नाट्य शैली है, जो पौराणिक कथाओं पर आधारित होती है। भागवत मेला (तमिलनाडु)—यह धार्मिक नाटकों की एक विशेष शैली है, जो भक्ति रस से ओतप्रोत होती है। थेरुक्कूठु (तमिलनाडु)—सड़क पर प्रस्तुत किया जाने वाला यह नाट्य समाज के विभिन्न मुद्दों को उठाता है। अंजनामल्ली (केरल)—यह नाट्य शैली

खासतौर पर रामायण और महाभारत की कहानियों को प्रस्तुत करती है। डोमकच एवं जाट-जटीन (बिहार) यह बिहार क्षेत्र में विवाह के समय स्त्रियों के द्वारा खेला जाता है। आदि।

इन सब में से 'बिदेसिया' लोकनाट्य बिहार राज्य के भोजपुरी अंचल का प्रसिद्ध लोकनाटक है। समस्त लोकनाटक अपनी क्षेत्रीय विशेषता को समेटे हुए विशेष्य और वर्ण्य है। स्थानीयपन का सौंदर्य और लोकनाट्य परंपरा में प्रत्येक लोकनाटकों का अपना विशेष महत्व है। परंतु बिहार प्रांत में प्रचलित बिदेसिया लोकनाट्य का महत्व थोड़ा अधिक है। भारतीय लोक परंपरा के सशक्त हस्ताक्षर भिखारी ठाकुर अपने समाज में व्याप्त विद्रूप हालात को नजदीकी से देखा और समझा और संवेदनशील रचनाकार के रूप में इन्होंने अपने समाज की इस विद्रूप स्थिति का चित्रण बिदेसिया लोकनाटक में किया। उन्होंने अर्थ संचित करने हेतु युवाओं के पलायन की समस्याओं को, साथ ही शहरों में जाकर दयनीय स्थिति में जीवन निर्वाह करने की चुनौतियाँ को बहुत करीब से महसूस किया। इन समस्याओं के अतिरिक्त अपने पूरे अंचल को अनेक समस्याओं से जूझते हुए देखा है। जिसमें नारियों की हीनदशा, विधवाओं की समस्या, बाल विवाह, अनमेल विवाह, बहु विवाह कुप्रथा, अंधविश्वास, पलायन और व्यभिचार की समस्याएँ शामिल है। ऐसी समस्याओं से पूरे समाज को परिचित कराकर उसे खत्म करने का प्रयास इन्होंने किया। समाज को जागरूक करने का संघर्ष, बिदेसिया का आधार बना। इस दृष्टि से देखें तो बिदेसिया लोकनाट्य परंपरा में सांस्कृतिक धरोहर का अमूल्य निधि है। सन् 1912 ईस्वी में सृजित यह कृति अपने सामाजिक, पारिवारिक एवं भौगोलिक परिवेश को एक पहचान देती है। यह भोजपुरी अंचल की सामाजिक एवं पारिवारिक संरचना के साथ मानवीय विभीषिका को प्रस्तुत करता है। बिदेसिया का सृजन 'भोजपुरी का अनगढ़ हीरा' भिखारी ठाकुर ने अपनी रचना, 20वीं सदी में बिहार प्रांत के परिवेश को देखते हुए किया हैं। यह कृति बिहार की ही नहीं, बल्कि प्रत्येक वैसे क्षेत्र का परिचायक है जहाँ अर्थोपार्जन हेतु पुरुष वर्ग/युवा वर्ग अपने घर-परिवार से दूर प्रवासी जीवन जीते हैं। बिदेसिया की प्रसिद्धि का कारण भिखारी ठाकुर का अपना व्यक्तित्व भी है। जिन्हें कलात्मक पकड़ और रंगात्मक अभिव्यक्ति की सही समझ थी। कला और रंग की समझ इन्हें परफॉर्मेंस में रूढ़ और समय-समय पर लचीला बनाती थी। इनके बारे में पढ़कर ऐसा लगता है कि इनकी समझ कला के साथ राजनीति, इतिहास, समाजशास्त्र में भी अच्छी थी। इस संदर्भ में अभयमित्र ने लिखा है- "भिखारी ठाकुर एक ऐसा चरित्र है—जिसका नाम लेते ही मेरे जेहन में न जाने कितने चित्र उभरते हैं—किसी जमीनी नेता का चित्र, किसी सिद्ध पुरुष का चित्र, कबीर बाना पहने किसी फक्कड़ साधु का चित्र, देश-विदेश में घूम-घूम कर अंधविश्वासों, कुरीतियों के विरुद्ध अलख जगाते किसी समाज सुधारक का चित्र।"[4] ऐसे अनोखे व्यक्तित्व से पूर्ण भिखारी ठाकुर ने अपनी लोकभाषा और लोकजीवन के इर्द-गिर्द से बिदेसिया के कथावस्तु का चुनाव किया। इस कारण लोकनाट्य परंपरा में इनका योगदान चिरस्मरणीय है और लोकनाट्य परंपरा में बिदेसिया का स्थान अग्रणी है।

कथावस्तु और प्रासंगिकता के आधार पर

बिदेसिया का कथानक और उसकी प्रासंगिकता ही उसे अन्य लोकनाटकों से भिन्न बनाती है। भिखारी ठाकुर ने अपने समसामयिक परिवेश को बहुत ही सूक्ष्मता के साथ बिदेसिया नाटक में प्रस्तुत किया है। यहाँ कथानक का आधार प्रेम, धार्मिक-सांस्कृतिक, काल्पनिक, पौराणिक न होकर सामाजिक यथार्थ की प्रस्तुति करता है। समाज में व्याप्त दुःख, पीड़ा और उद्वेलित हृदय को बिदेसिया में स्थान मिला है। संवेदनशील रचनाकार का परिचय देते हुए भिखारी ठाकुर भोजपुरी अंचल में व्याप्त समस्याओं का जीवंत चित्र उकेरते हैं। जीविकोपार्जन एवं अर्थोपार्जन हेतु नाटक का नायक (बिदेसी) पलायन की समस्या से जूझता है। नाटक का कथा कुछ इस प्रकार है—गाँव का एक युवक (बिदेसी) जो दिहाड़ी मजदूर है। वह जैसे-तैसे अपना गुजारा कर लेता है परंतु उसकी शादी हो जाने के बाद उसके घर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो जाती है। वह धन कमाने के लिए शहर की ओर जाना चाहता है परंतु उसकी पत्नी उसे रोक लेती है। एक दिन बिदेसिया अपनी नव विवाहिता स्त्री को गाँव में छोड़कर शहर चला जाता है। कथा में पत्नी की मनोदशा, हृदय की चिंता, स्मृति और अभिलाषा आदि का वर्णन अत्यंत आकर्षित रूप से प्रस्तुत हुआ है, जो इस प्रकार है-

"पिया गइलन कलकत्ता ए सजनी
× × × × ×
गोरवा में जुता नईखे, सरवा पर छतवा ए सजनी
कैसे चलीहें रहतवा ए सजनी"[5]

प्रवासी रूप में बिदेसिया, कोलकाता में अपना जीवन एक रखेल के साथ व्यतीत करता है। गाँव में उसकी पोषिता पत्नी बिदेसिया की याद में बिरहीन बन जाती है। विरह व्यथा से व्याकुल सुंदरी, राह चलते बटोही को अपनी यताना बताकर अपने पति तक अपना संदेश पहुँचाने का अनुरोध करती है। मार्मिक रूप से वह अपना दुख बटोही के सामने रखती है—

"पिया मोर गइलन परदेस, ए बटोही भइया।
रात नाही नींद दिन तनी न चएनवा, ए बटोही भइया।
सहतानी बहुते कलेस, ए बटोही भइया।
रोवत-रोवत हम भीइली पगलिनियां, ए बटोही भइया
एको ना भेजवलन सनेस, ए बटोही भइया।"[6]

बटोही सुंदरी के दर्द को आत्मसात कर, उसे वचन देता है कि वह बिदेसिया को वापस लेकर आएगा। गाँव में सुंदरी को अकेला पाकर गाँव के मनचले लड़के सुंदरी पर गंदी नजर रखता है। सुंदरी का देवर उसके साथ व्यभिचार करना चाहता है और सुंदरी के विरोध करने पर वह कहता है -

"भौजी मान कहल हमारी। नाहीं त करब तुरत बरियारी।"[7]

बटोही कोलकाता जाकर बिदेसिया को समझा-बहलाकर उसे घर वापसी को तैयार कर लेता है परंतु रखेलिन बिदेसिया को रोकती है। बिदेसिया के हृदय में सुंदरी के लिए प्यार उमड़ता है और वह गाँव लौट आता है। रखेलिन भी उसके पीछे-पीछे गाँव आती है और तीनों लोग साथ में रहने लगते हैं।

यह लोकनाट्य अपने कथ्य में परत दर परत अनेक समस्याओं को समेटे हुए है। 20वीं सदी में बढ़ता राजनीतिक हस्तक्षेप ग्रामीण समाज के जनजीवन को प्रभावित करती है और गाँवों में आपसी प्रेम की जगह पूँजीवाद का महत्त्व दिखने लगता है। बिदेसिया की प्रसिद्धि का एक यह भी कारण है कि लोक जनमानस कथा में प्रस्तुत समस्याओं को अपने जीवन से जोड़ लेते हैं। इसमें वर्णित कई घटनाएँ भोजपुरी अंचल की जनजीवन से सीधा जुड़ाव रखता है। यह नाटक अपनी कथा में अपने जनपद की सामूहिक त्रासदी का कलात्मक प्रस्तुति करता है। कथानक में वर्णित भोजपुरी अंचल की संस्कृतियों के बारे में भिखारी ठाकुर पर शोधकर्ता डॉ. तैयब हुसैन 'पीड़ित' बताते हैं कि "बिदेसिया तो इस क्षेत्र का दस्तावेज है। जो तत्कालीन समाज में पनप रहे आर्थिक अभाव का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता पेट की खातिर, यहाँ के गबरू जवानों को पूरब देश (असम और कोलकाता) जाने की विवशता की कहानी कहता है और परिणामस्वरूप, उधर बाजारू औरत की कुसंगति में भेड़ बन जाना, इधर अकेली अबला पर समाज के बुरे लोगों की कुदृष्टि से एक ही सिक्के के दोनों पक्ष सामने ला रखता है। "8

बिदेसिया में वर्णित कथा का संबंध पहले से उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर भी विवेचित किया गया है। इस कथा को आध्यात्मिक पक्ष से चित्रित करते हुए दीनानाथ साहनी ने लिखा है- "भिखारी ठाकुर ने बिदेसिया की कथा का एक आध्यात्मिक पक्ष भी रखा है, जिसमें बिदेसिया जीव का प्रतीक है, जो दुनिया में उद्देश्य (भिखारी ठाकुर के अनुसार यह उद्देश्य है ईश्वर से मिल जाना) हासिल करने के लिए भटक रहा है। दुलारी (रखेलिन) माया का प्रतीक है। जीव बिदेसी उसमें उलझ कर अपना उद्देश्य भूल जाता है। बटोही संत का प्रतीक है। वह बिदेसी को उसका उद्देश्य बताकर सीधे रास्ते पर लाता है। प्यारी (सुंदरी) ईश्वर का प्रतीक है। नाटक के अंत में जीव अंततः ईश्वर (प्यारी) से आकर मिल जाता है।"[9]

लोकनाट्य परंपरा में बिदेसिया का स्थान इसलिए भी अलग है क्योंकि यह एक लिखित दस्तावेज के रूप में हमारे समक्ष उपलब्ध है। अन्य लोकनाट्य जैसे जट-जटीन, डोमकच, नाचा, माच, ख्याल इत्यादि सभी मौखिक रूप से स्मरण शक्ति के आधार पर खेला जाता है। यह परंपरा को पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिकी एवं वाचन के माध्यम से आगे बढ़ाया जाता है। परंतु बिदेसिया लोकनाट्य सृजित है। भिखारी ठाकुर 20वीं सदी के भोजपुरी अंचल की संस्कृतियों का हवाला देते हुए सामाजिक, मानवीय विचारों को रेखांकित करते हैं। अन्य लोकनाटकों का जुड़ाव भी समाज और मानव जीवन से है परंतु वह सृजित नहीं संकलित है—स्मरण आधारित। संयोजन का यह कार्य अन्य लोकनाटकों को विकासोन्मुख बना रहा है।

प्रयोजन की दृष्टि से भी बिदेसिया लोकनाटक अन्य लोकनाटकों से अलग है। प्रत्येक लोकनाट्य के मूल प्रयोजन में अधिकांशतः मनोरंजन ही दृष्टिगोचर होता है। परंतु बिदेसिया लोकनाट्य में मनोरंजन मात्र ध्येय नहीं है। अपितु इसमें भोजपुरी क्षेत्र वासियों की सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक त्रासदी का चित्रण मौजूद है। समाज में व्याप्त कुविचारों से उभर कर मानव जाति को नैतिकता और आदर्श की राह पर लाने का उद्देश्य है। भोजपुरी संस्कृतियों का प्रचार प्रसारण के साथ ही स्त्री जीवन की दशा में सुधार लाना इस नाटक ध्येय में निहित है।

बिदेसिया नाटक की संवाद शैली ने ही इसे विशेष और प्रभावी बनाया है। संगीतात्मक संवाद इस नाटक की कथा को प्रभावोत्पादक बनाता है। नायिका का विरह वर्णन पूर्णतः लयात्मक और मर्मस्पर्शी है। नायिका अपने पति के विरह में रो-रो कर कहती है—

"करी के गवनवां भवनवां में छोडी कर
अपने परइलन पूरबवा बलमुआ।
अंखियाँ से दिन बीतेगा बलमुआ
गुलमा के नतिया आवेला जब रतिया त
तिल भर कल ना परत बा बलमुआ।"[10]

संपूर्ण नाटक का संवाद पूर्णता लयात्मक और गेय पद्धति के अनुसार है।

भाषा और संवेदना का मिश्रण इस नाटक में गीतात्मक रूप में प्रस्तुत हुआ है। गीति नाट्य शैली में यह रचना सीधा जन समुदाय से संबंध बनाता है। बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में लयात्मक रूप से दुःख, पीड़ा, खुशी तथा विभिन्न मनोदशाओं की अभिव्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में सहज रूप से दिखता है। भोजपुरी अंचल की यह विशेषता को भिखारी ठाकुर बिदेसिया में दिखाते हैं। इसके मंचन में गायन का स्वर ऊँचा है, जिसे रंगमंचीय दृष्टि से बनाया गया है। ताकि कथागायन में निहित मूल भाव दर्शक वर्ग तक अवरोध गति से पहुंचे। गीत में 'रामा हो रामा', 'ए सजनी', 'ये बटोही' इत्यादि का टेक गायन को आकर्षक बनाता है। मंच पर कीर्तन मंडली एक ही साथ बैठे होते हैं जो कोरस गाते हैं, इन्हें 'समाजी' कहा गया है। कभी-कभी इन लोगों के द्वारा 'हां' या 'ए' बोलकर लयात्मक संवादात्मक को आगे बढ़ाया जाता है। इसके साथ ही मंच पर यह गायन नृत्य संवादात्मक अभिव्यक्ति तथा छोटा-मोटा अभिनय भी करते हैं। बिदेसिया की खूबसूरती इस कारण भी है कि इसमें गायन के साथ नृत्य का सुंदर समायोजन भी प्रस्तुत है। यह नृत्य संगीतात्मानुरूप न होकर दृश्य के अनुरूप होते हैं। इस नृत्य में अधिक कलात्मक प्रस्तुति नहीं होती बल्कि क्षेत्रीय पन के साथ कमर को हिलाना और थोड़ी उछल-कूद शामिल होती है।

अभिनय या मंचन के आधार पर भी बिदेसिया अन्य लोकनाटकों से इतर स्थान पाता है। इसका मंचन परंपरागत रूप को छोड़ सामाजिक यथार्थवाद शैली में अभिनीत हुई है। अभिनय में गायन, नृत्य, संगीत, वाद्य यंत्रों का सामंजस्य कथा के समतुल्य ही प्रस्तुत होता है। नाटक में प्रस्तुत मंगलाचरण (रामकथा प्रसंग) परंपरागत न होकर कीर्तनशैली में प्रस्तुत किया जाता है। इस संदर्भ में मुन्ना पांडेय चंद्रशेखर के हवाले से इस बात की पुष्टि करते हैं। "दिलचस्प यह है कि संस्कृत में यह गुरुवंदना श्रेण्यवादी संस्कृत परंपरा से न आकर भक्ति परंपरा और सूफी रहस्यवाद से आई है। जिसे सांस्कृतिक अध्ययन में महान परंपरा के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है।"[11] बिदेसिया का मंचन किसी भी स्थान पर किया जा सकता है। जैसे खुला मैदान, बाजार, सार्वजनिक स्थान व निजी स्थान। इसका मंच खुला होता है। मंच पर ज्यादा साज सज्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रस्तुति का आधार संस्कृत रंगमंच का ही है। मंगलाचरण से शुरू होकर नाटक की समाप्ति सुखांत पद्धति में होती है। बिदेसिया, लोकनाटक का मंचन लगभग देश के अनेक क्षेत्रों में हो चुका है। बिदेसिया में चित्रित स्त्री किरदार की भूमिका

पहले पहल पुरुष ही निभाते थे। परंतु वर्तमान में महिलाओं के द्वारा स्त्री किरदारों को निभाया जा रहा है। परंतु आज भी ग्रामीण क्षेत्र में बिदेसिया के मंचन में स्त्री किरदारों की भूमिका पुरुषों द्वारा ही निभाया जाता है। पटना प्रेमचंद रंगशाला के रंगकर्मी संजय उपाध्याय के निर्देशन में बिदेसिया का मंचन प्रसिद्धि पाया है। किंतु इनका निर्देशन, कथा को एक अलग दिशा दे चुका है। वर्तमान में बिदेसिया में वर्णित अनेक समस्याएँ हाशिये पर चला गया है। मूल समस्या के रूप में स्त्री बिरह व्यथा ही दृष्टिगोचर होता है। मंचन की दृष्टि से पात्रों का संयोजन भी अद्वितीय है। इसमें सभी पात्र शुरू से अंत तक मंच पर ही बने रहते हैं। अत्यंत सादगी से पात्र अपना किरदार निभाते हैं और सहजता से जाकर फिर मंच पर अन्य पात्रों के साथ बैठ जाते हैं। कलाकार नृत्य और नाटकीय हाव-भाव से संवादों को अधिक प्रभावी बनाते हैं। बिदेसिया शैली में एक खास प्रकार का लोकनृत्य होता है, जो ग्रामीण जीवन को जीवंत करता है। रंगभाषा जनजीवन से सीधी जुड़ी हुई है। मंचन के दौरान कलाकार कभी-कभी सीधे दर्शकों से बातचीत करते हैं, जिससे दर्शकों को नाटक का हिस्सा महसूस होता है। यह तकनीक दर्शकों की रुचि बनाये रखने में मदद करती है। बिदेसिया की मंचन पद्धति लोकगायन, नृत्य, सहज अभिनय और संवाद अदायगी पर केंद्रित है। यह नाटक मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक संदेश देने का कार्य भी करता है, जो इसे लोकनाट्य परंपरा में एक अनूठी पहचान दिलाता है।

निष्कर्ष : लोकनाट्य परंपरा में बिदेसिया का स्थान कथ्य, शिल्प और रंग के आधार पर विशेष है। लोकरंजन के इस परंपरा में बिदेसिया लोककला, लोकमंच, लोकमत, लोकवाद्य, लोकगीत, लोकजीवन, लोकनृत्य, लोककथा, लोकसाहित्य आदि को समृद्ध करता है। लोक शैलियों के प्रयोग से बिदेसिया का स्थान अनूठा है क्योंकि इसमें पौराणिक, धार्मिक, काल्पनिक आधार को पीछे छोड़ सामाजिक यथार्थ दर्शाया गया है। श्रमिक, गरीब, खेतिहर मजदूर वर्ग की पलायन की पीड़ा का जीवंत चित्र खींचा है। लोकनाट्य परंपरा में बिदेसिया का स्थान 'मील का पत्थर' है, जो वर्तमान में भी अपनी प्रासंगिकता और कथानक के जरिये लोगों से जुड़ा है।

संदर्भ सूचीः

1. परमार, डॉ. श्याम; लोक धर्मी नाट्य परंपरा, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1999, पृ. 9
2. शास्त्री, बाबू लाल शुक्ल; (अनुवादक), नाट्यशास्त्र आचार्य भरत, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1972, पृ. 25
3. गौतम, रमेश; हिंदी रंगमंच का लोक पक्ष, स्वराज प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 2020 पृ. 6
4. द्विवेदी, भगवती प्रसाद; भोजपुरी के भारतेंदु, आशु प्रकाशन, इलाहाबाद, सं 2000, पृ. 45
5. ठाकुर, भिखारी; बिदेसिया, हिंदी समय डॉट कॉम वेबसाइट से उद्धृत, hindisamay.com@content.
6. वही
7. वही
8. पांडेय, मुन्ना कुमार; हिंदी लोकनाटक स्वरूप और रंगभाषा, रमेश गौतम, (सं.), हिंदी रंग भाषा स्वरूप और विकास, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं 2015, पृ. 307
9. साहनी, दीनानाथ; समकालीन रंगमंच, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2002, पृ. 32
10. ठाकुर, भिखारी; बिदेसिया, हिंदी समय डॉट कॉम वेबसाइट से उद्धृत
11. गौतम, रमेश; हिंदी रंगमंच का लोक पक्ष, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 201

शोधार्थी
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविश्विलय

●

'कइसन पिया तोर? करिया कि हवन गोर?
सचमुच रूपवा बता दे प्यारी धनियाँ।
मन में सबुर कर, जय शिव, हरिहर,
कहत भिखारी कारण हाई प्यारी धनियाँ।'

— बिदेसिया से साभार

हृषिकेश सुलभ के नाटकों में लोक-चेतना और सामाजिक यथार्थ

राहुल

शोध सार : हिंदी साहित्य की सघन धारा में अनेक रचनाकार हैं, जिन्होंने अपनी कलम से हिंदी साहित्य की विविध विधाओं की महत्त्वपूर्ण रचनाओं द्वारा हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है, फिर चाहे वह गद्य हो या पद्य। नाटक एक महत्वपूर्ण रचना शैली है जिसकी जड़े भारतीय वाङ्मय में बहुत गहरी प्रतीत होती हैं। हिंदी नाटक की परम्परा में भारतेंदु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, उपेंद्रनाथ अश्क, मोहन राकेश से होते हुए अब तक कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टि से बड़ा परिवर्तन आया है। हृषिकेश सुलभ समकालीन रचनाकार हैं, इन्होंने केवल अपनी रचनाओं में न केवल विभिन्न अनुप्रयोग किये हैं बल्कि अपनी प्रयोगशीलता और कथ्य की प्रस्तुति से अपना अलग प्रतिमान स्थापित किया है। इन्होंने लोक शैली में विविध विमर्शो को भी वाणी दी है। इनके नाटकों में सामंतवाद, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री जीवन के कटु यथार्थ की पहचान की जा सकती हैं। इनकी जीवनीपरक नाटकों की रचनाशैली में आदिवासी जीवन के अनसुलझे पक्ष महत्वपूर्ण है जो पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। पुराने कथ्य को इन्होंने नवीन नाट्य शैली में पिरोया है।

बीज शब्दः लोक-चेतना, जातीय-अस्मिता, स्त्री-चेतना, आदिवासी चेतना, समकालीनता, सामाजिक यथार्थ, जीवन मूल्य, उत्तर-आधुनिक विमर्श।

प्रस्तावना : समकालीन हिंदी नाटककारों में हृषिकेश सुलभ का नाम अग्रणी है। वे न केवल सामान्य हिंदी के साधारण रचनाकार हैं बल्कि उनकी नाट्य रचनाओं में विशिष्ट नाट्य शिल्प और रंगदृष्टि का समावेश स्पष्ट ही दिखाई देता है। आज वर्तमान में हिंदी नाटकों की मौलिक रचना प्रक्रिया और प्रस्तुति पर गहन आक्षेप लगाए जाते रहे हैं, जैसे हिंदी नाटक की कोई परंपरा, ठोस नींव नहीं है या हिंदी की अपनी कोई मौलिक परंपरा नहीं है इत्यादि। सुलभ के नाटक इन सवालों को अपनी नाट्य रचनाओं के माध्यम से उचित चुनौती देते हैं। इनके नाटकों में यक्षगान, बिदेसिया जैसे लोकतत्त्वों को विशेष रूप से देखा जा सकता है, जो पारंपरिक भारतीय लोकनाट्य के रूप हैं। समकालीन हिंदी नाटक अपने विशिष्ट अनुप्रयोगों के लिए चर्चित रहे ही हैं वहीं भारतीय समाज के जीवन दर्शन का भी चित्रण भी करते हैं। हृषिकेश सुलभ ने नाटकों में उन गम्भीर विषयों को वाणी दी है, जो भारतीय समाज और जन चेतना को प्रभावित करते रहे हैं।

मूल लेखः सन् अस्सी के बाद का समय आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक रूप से भारतीय समाज के लिए एक महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण जैसी प्रणालियों के बाद इसके परिणामों ने भारतीय समाज में कई परिवर्तन किये। चूंकि किसी भी समाज की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रभाव उसके साहित्य पर भी पड़ते ही हैं। इन विभिन्न बदलावों के संस्कार न केवल समाज बल्कि साहित्य में भी देखने को मिले। पश्चिम से केवल प्रौद्योगिकी और तकनीक ही भारत नहीं आई बल्कि साहित्यिक रूप से विमर्श के कई विषय भी यहाँ चिन्हित हुए। जिनसे प्रेरित हो हिंदी साहित्य में स्त्री, दलित और वृद्ध विमर्श जैसे विषयों को केंद्र में रखकर साहित्यिक रचनाएँ होने लगती हैं। आलोचकों ने इस दौर को उत्तर आधुनिकता का दौर कहा। साहित्यिक रूप से इस विचार ने विभिन्न भारतीय आलोचकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। समग्रतावादी सार्वभौमिक सत्यों का नकार, तर्कवाद का नकार और आधुनिकतावाद की सक्षमता से नकार आदि वे तीन बिंदु थे जो इस विचारधारा के मूल मे थे। इसके फलस्वरूप साहित्य में बड़े महावृत्तांत की जगह लघु आख्यान केंद्र में आने लगते हैं। जिनके मूल में सदियों से दमित और शोषित स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक और वृद्ध सभी दिखाई देते हैं। यह सभी प्रमुख रूप विमर्श के केंद्र में आये। किसी भी विमर्श के केंद्र में एक लोक चेतना होती है जो उसे दमनकारी शक्तियों से मुक्ति के योग्य बनाती है। इन प्रवृत्तियों के लक्षण हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ हिंदी नाटकों में भी देखने को मिले।

हृषिकेश सुलभ के नाटकों में लोक चेतना और क्रांति के विविध स्वर परिलक्षित होते हैं। 'धरती आबा', 'बटोही', 'अमली', 'माटीगाड़ी', 'मैला आँचल' और दालिया इनके महत्वपूर्ण नाटक हैं। 'धरती आबा' नाटक में जनजातीय वीरपुरुष बिरसा मुंडा का औपनिवेशिक दमनकारी शक्तियों से मुक्ति का प्रयास है। 'बटोही' और 'अमली' स्त्री जीवन के कटु यथार्थ की व्याख्या करते हैं। 'माटीगाड़ी' नाटक का आधार संस्कृत के नाटककार शूद्रक द्वारा रचित मृक्षकटिकम् हैं। जिसके केंद्र में प्रेम और सामाजिक न्याय है। मैला आँचल नाटक का आधार रेणु का प्रसिध्द उपन्यास है और 'दालिया' नाटक में रवींद्रनाथ ठाकुर की कहानी को रोचक नाट्य रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हृषिकेश सुलभ के नाटकों में वर्तमान परिदृश्य के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विषयों के साथ-साथ लोक संस्कृति भी देखने को मिलती है। इन्होंने बिरसा मुंडा के जीवन को केंद्र में रखकर धरती आबा नाटक की रचना की है। जनजातीय समाज के नायक बिरसा मुंडा भारतीय समाज के नायक के रूप में सामने आते हैं। वह दासता के कठोर जीवन से मुक्ति के लिए जन आंदोलन आरम्भ

करते हैं। आमजन को संगठित करते हैं दासता से मुक्ति के लिए लड़ते हैं।

इस आंदोलन ने अंग्रेज़ों की तानाशाही सत्ता को चुनौती दी। सामाजिक असमानता पर आधारित तत्कालीन राज्य-व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था और सरकार को ललकारा। इस लड़ाई में मिली पराजय और जेल में बिरसा की मौत के बाद भी उनके आंदोलन में 'उलगुलान' की आग सुलगती रही।

बिरसा कहता है—"लौटकर आऊंगा मैं... जल्दी ही लौटूँगा मैं अपने जंगलों में, अपने पहाड़ों पर। ...मुंडा लोगों के बीच फिर आऊँगा मैं तुम्हें मेरे कारण दुख न सहना पड़े इसलिए माटी बदल रहा हूँ मैं। ...उलगुलान खत्म नहीं होगा। आदिम खून है हमारा। ...काले लोगों का खून है यह...जल्दी ही लौटकर आऊंगा मैं"[1]

'उलगुलान' एक क्रांतिकारी उथल पुथल थी। जिसका उद्देश्य दमनकारी नीतियों से मुक्ति था। यह ऐतिहासिक तथ्य भी है कि इस आंदोलन ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को नयी शक्ति दी। औपनिवेशिक भारत के जनजातीय जीवन का यथार्थ चित्रण इस नाटक में हुआ है। जल, जंगल और ज़मीन आदिवासी जीवन के महत्त्वपूर्ण तत्व हैं। इनके बिना इनका जीवन संभव नहीं है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में औद्योगिक इकाईयाँ आने के बाद इन जनजातीय लोगों को सस्ते श्रम में ढाल दिया गया। चाय के बगान, बड़े-बड़े कारखानों में इनसे मजदूरों का काम लिया जाने लगा। भुखमरी, अकाल, आपदा और गंभीर बीमारियों के साथ-साथ अंग्रेज़ी शासन की क्रूरताओं ने इन आदिवासी समुदायों पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव डाले। शिक्षा, रोज़गार के नाम पर जबरन धर्मांतरण, मानसिक और शारीरिक शोषण जैसे अत्याचारों से त्रस्त वर्ग को एक ऐसे व्यक्ति की तलाश थी। जो उन्हे एकजुट कर सकें। बिरसा का व्यक्तिव उनके विश्वासों पर खरा उतरता है। बिरसा के कहने पर सभी लोग दमनकारी व्यवस्था की अवहेलना करते हैं और मुक्ति के लिए संघर्ष करते हैं। अंग्रेज़ी व्यवस्था बिरसा को नहीं ढूँढ पाती। वह उसपर ईनाम रखती है। भुखमरी से त्रस्त कुछ मुंडा लोग, बिरसा की खबर अंग्रेज़ी सत्ता को कर देते हैं और वो पकड़ा जाता है लेकिन निराश नहीं होता नाटक के अंत में बिरसा भूख और लाचारी से त्रस्त मुंडाओं को सद्भावना और मजबूती देते हुए विदा लेते हैं।

नाटक का मुख्य चरित्र बिरसा आधुनिक, प्रगतिशील, यथार्थवादी पात्र है। वह पुराने कर्मकांडो को नहीं मानता। जीवन को जरूरी मानता है। इसलिए वह ईश्वर से नहीं डरता। न ही अपने पारंपरिक देवता 'सिंबोडा' से। बिरसा कहता है, "मैं हूँ मानुख। इसलिए कि मुझे भूख लगती है। प्रेत और पिशाच को भूख नहीं लगती। मैं नहीं डरता प्रेतों से। नहीं डरता मैं सिंबोडा से"[2]

बिरसा एक सशक्त ज़िम्मेदार मार्गदर्शक हैं। अपनी जनजाति का उद्धार और कल्याण उनका मूल लक्ष्य है। जब समुदाय के लोग और बच्चे चेचक, हैजा जैसे रोगों से पीड़ित और परेशान होते हैं तब बिरसा उनकी सेवा का प्रण लेता है—

"मैं चंदन घिसकर उनके घावों पर लेप करूँगा। ... मैं जाऊँगा घर-घर। मैं पत्थर का भगवान नहीं हूँ। मैं ज़िंदा हूँ। ...मैं साथ हूँ तुम्हारे। तुम्हारे दुखों में... तुम्हारी पीड़ा में... तुम्हारे बुरे दिनों में... हर जगह तुम्हारे साथ हूँ मैं"[3]

बिरसा ईश्वर की परिभाषा बदलता है, उसके अनुसार ईश्वर वह है जो जरूरत के समय काम आए। वह नहीं जो देवालय में बैठा हुआ जड़ मूर्ति है। बिरसा के व्यक्तिव के साथ-साथ नाटक के अन्य पात्रों की शैलीगत विशेषताओं को भी नाटककार ने प्रस्तुत किया है। धानी, सुगुना, करमी और डोंका आदि सभी सशक्त पात्र हैं। नाटक की रंगदृष्टि विशिष्ट है जो कि एक विशेष समय और समाज का चित्रण करती है, निर्देशक संजय उपाध्याय लिखते हैं—"धरती आबा की प्रस्तुति में भी संगीत और नृत्य का एक सार्थक युक्ति के रूप में प्रयोग किया गया है। वस्त्र-वेशभूषा, केश-विन्यास और जनजातीय जीवन की स्थानीयता भी इस नाटक की युक्ति ही है। बिरसा के बहाने एक गुज़रे हुए कालखंड और जनजातीय समाज की स्वतंत्रता की लालसा ही नहीं, समस्त मानव समाज की मुक्ति की लालसा भी धरती आबा का लक्ष्य है।"[4]

हृषिकेश सुलभ प्रयोगशील नाटककार हैं उन्होंने नाटक में लोक शैली के तत्त्व लेते हुए नाटक की रचना की है। संवादों के साथ-साथ सुंदर विद्रोह के गीतों के संयोजन से विशेष नाटकीयता और उत्साह उत्पन्न होते हैं। जैसे—

"अपने कांधे पर लिए चला
पीड़ा की बारात
घर-घर घूमा लेप लगाया
महक उठी हर साँस
रोग-शोक में मौत-प्रलय में
हरदम उसका साथ
काली रातें मिट जाएँगी
आएगा प्रभात"[5]

'बटोही' अर्थात घुम्मकड़, यात्री या एक स्थान पर न रहने वाला। भिखारी ठाकुर के जीवन पर आधारित इस नाटक में हृषिकेश सुलभ ने उनके जीवन के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के पहलुओं को छुआ है। भिखारी ठाकुर के जीवन के वह पक्ष जो अनसुने रह गए या जिनको साहित्य की दृष्टि में लाना जरूरी था, उन पक्षों कों अपनी विशिष्ट रंगदृष्टि के माध्यम से हृषिकेश सुलभ ने प्रस्तुत किया है। एक सामान्य आदमी के विशिष्ट हो जाने की कथा को नाटक प्रस्तुत करता है। भिखारी नाटक का महत्त्वपूर्ण पात्र है। गरीबी, बेरोजगारी भूख और अकाल जैसी त्रासदी के साथ-साथ अपने बच्चे और पत्नी की मृत्यु की घटनाएँ भिखारी के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। भिखारी के मनोविज्ञान पर विभिन्न ग्रामीण स्त्रियों (मनतुरनी, कमला बबुनी, तिवारी बहू, मोती बहू और बुचिया) के जीवन की त्रासद घटनाओं की छाप पड़ी। भिखारी की संवेदना उन सब से जुड़ गई।

भिखारी ठाकुर का समय कई हलचलों से भरा हुआ है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के उथल-पुथल भरे समय में वह स्त्री-जीवन के दुखों को अपनी रचना का आधार बनाता है। आजीविका और धनोपार्जन के लिए परदेस गए लोगों की पीछे छूट गई स्त्रियों और धन के लालच में ब्याह के नाम पर बूढ़ों के हाथ बेच दी गई स्त्रियों के जीवन की मुक्ति को भिखारी भारत माता की मुक्ति के रूप में देखता है। सुलभ के नाटकों में बिहार प्रदेश की सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्नों को भी उठाया गया है। सामाजिक,

आर्थिक समस्याएँ, गरीबी, स्वास्थ्य जैसे प्रश्न नाटक की मार्मिकता को बढ़ाते हैं, इनसे तत्कालीन भारतीय परिवेश की समस्याओं और जीवन को सहज ही समझा जा सकता है। भिखारी, रामानंद को कहता है- "बाबू साहेब! धरती तो कहने भर को अपनी है। कहँवा है धरती? होती, तो भूखे पेट, नंगे पाँव, जेठ—बैशाख की दुपहरिया हो, चाहे सावन-भादों की अधरतिया, भटकना नहीं पड़ता।"[6]

हृषिकेश सुलभ 'बटोही' के माध्यम से स्त्री जीवन के उन पहलुओं को पकड़ते हैं। जो अनायास ही विमर्शकारों से अनछुए रह गये। शहरीकरण के साथ-साथ वेश्यावृत्ति जैसी प्रवृत्तियाँ नगरों में बढ़ने लगीं। नितांत गरीबी और बेरोजगारी जैसे तत्त्व स्त्री जीवन को कब वेश्यावृत्ति की चपेट में ले लेते हैं इसका पता ही नहीं चलता। पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष ही असहाय स्त्रियों का दैहिक शोषण करता है और घृणास्पद वेश्या कहकर अपना पल्ला झाड़ लेता है। जीवन की बदहाली से त्रस्त पेट पालने को विवश स्त्री कहाँ जाये? शक्तिशाली वर्ग उसकी मजबूरी का फायदा उठाता है। अक्सर कहा जाता है 'गरीब की घरवाली सबकी भाभी', स्त्री जीवन के इन कटु अनुभवों को हृषिकेश सुलभ ने नये दृष्टिकोण से देखा और 'बटोही' नाटक के चरित्र 'बाबूलाल' के माध्यम से व्यक्त किया। बाबूलाल भिखारी से कहता है - "रंडी भी औरत होती है भिखारी। रंडी न रहे कलकत्ता में तो यहाँ कुछ भी न बचे। गंगा जी और रंडी- यही दूनों तो कलकत्ता को जिलाए हुए हैं। सबका पाप... सबका नरक यही दूनों सहेजती हैं।"[7] समाज से निष्काषित और घृणित समझी जाने वाली वैश्या की तुलना एक दैवीय चरित्र से करना एक नया प्रयोग है। बड़े-बड़े शहरों की घुटन, भागदौड़ भरी जिंदगी से उत्पन्न हुए नर्क और व्यवस्था के चित्रण के साथ-साथ नाटक में हृषिकेश सुलभ ने एक कलाकार के सामाजिक द्वंद्व को भी परिभाषित किया है, जिससे किसी कलाकार के व्यक्तित्व की निर्माण प्रक्रिया का भी पता चलता है।

'दालिया' नाटक के केंद्र में प्रकृति और मानवीय प्रेम है। अहम् भाव का विसर्जन और संवेदनाओं की उत्पत्ति इस नाटक का मूल मर्म है। नाटक का कथानक एक ऐतिहासिक कल्पना प्रसंग है। कथानक दो कथाओं, पूर्व कथा और उत्तर कथा में विभाजित है। पूर्व कथा का विश्लेषण सूत्रधार पहले दृश्य में करता है। उत्तर कथा नाटकीय रूप से चलती है। औरंगज़ेब और उसके भाई शाहसूजा के बीच सत्ता के लिए युद्ध होता है, जिसमें शाहसूजा हार जाता है और अपनी बेटियों सहित आराकान राज्य में शरण लेता है। कुछ समय बाद आराकान के राजा की इच्छा होती है कि शाहसूजा अपनी बेटियों का विवाह उसके राजकुमारों से कर दे। जब शाहसूजा उसका प्रस्ताव नहीं मानता तो उसने सूजा के परिवार को षडयंत्रपूर्वक नदी में डुबोकर मार देना चाहा। इसमें शाहसूजा और बड़ी बेटी की मौत हो जाती है। छोटी बेटी अमीना और जुलेखा बच जाती हैं। अमीना निःसंतान मछुआरे के जाल में फंस कर उसे मिलती है। वह अपनी बेटी की तरह उसका पालन पोषण करता है। यह नाटक की पूर्व कथा है। उत्तर कथा में अमीना और मछुआरे के जीवन प्रसंग, दालिया और अमीना का प्रसंग, तथा जुलेखा और अमीना के द्वारा पिता की हत्या के प्रतिशोध प्रसंग इत्यादि आते हैं।

रवींद्रनाथ ठाकुर की एक कथा की तरह ही नाटक में प्रकृति का मनोहारी चित्रण देखने को मिलता है। नाटक में शाही महल में रहने वाली राजकुमारी अमीना साधारण मछुआरे को अपना पिता मान लेती है। राजकुमार दालिया साधारण अमीना के लिए साधारण युवक बन उसके सभी कार्य करता है। इस नाटक में प्रेम भावना केवल मनुष्य को लेकर नहीं है अपितु प्रकृति के प्रति भी है। कई प्रसंगों से प्रेम की महत्ता का पता चलता है। अमीना को प्रकृति से घनिष्ठ प्रेम है वह जुलेखा से कहती है "यह सामने जो नदी बह रही है, मैं इसकी लहरों का संगीत सुनती हूँ। यह मेरी पुकार सुनती है और मैं इसकी आवाज़ पर दौड़कर इसके किनारे चली जाती हूँ"[8] प्रेम एक जादुई तत्त्व है जो मनुष्य को विनम्र बनाता है। किसी भी दर्शन की पहली सीढ़ी प्रेम ही तो है बेशक वह ईश्वर से हो या गुरु से। प्रेम में कोई मनुष्य हो या जीव वह निश्छल मूक जीवों की तरह व्यवहार करने लगता है इसकी छाप पात्र दालिया पर स्पष्ट देखने को मिलती है। वहीं अमीना के मन में प्रेम और पिता की हत्या के प्रतिशोध का द्वंद्व चलता रहता है। नाटक में कुछ संवादों को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इससे नाटकीयता में वृद्धि होती है अमीना का संवाद देखिए—

"जाना जाना बाबा जाना
छिन भर ठहरो फिर तुम जाना
जाल कांधे लिए ही जाना
मैंने अभी पकाया खाना"[9]

प्रकृति का मानवीकरण ठाकुर जी के काव्य की विशेषता है। जो नाटक में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

'मैला आँचल' नाटक फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास का नाट्य रूपांतरण है। यह मेरीगंज क्षेत्र के जीवन में व्याप्त, जनजीवन की मैली जिंदगी के विभिन्न दृश्यों को प्रस्तुत करता है। ग्रामीण जीवन की आर्थिक विषमता, अनैतिक संबंध, मठों के मठाधीश और उनकी काम पिपासा, इत्यादि के सजीव एवं प्रभावपूर्ण चित्रण के साथ लेखक ने पूर्णिया जिले के ग्रामीण जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

ऋषिकेश सुलभ ने नाट्य रूपांतरण के समय उपन्यास की गरिमा का खास ध्यान रखा है। इसलिए उपन्यास के रोचक और गंभीर विषयों का वर्णन नाटक में किया है। तत्कालीन राजनैतिक के गाँधीवादी मॉडल और समाजवादी मॉडल के बीच की बहस को भी वाणी दी है। दोनो पक्षों की आपसी खींचा तानी को नाटक में व्यंग्य का निर्माण करती है। कालीचरन और बालदेव के बीच की लड़ाई में गाँधीवादी बालदेव कहता है, "आप ही सोचिए, क्या यह समझदार आदमी का काम है! आप लोग हिंसाबाद करने जा रहे थे। इसके लिए हमको अनसन करना होगा। भारथ माता का, गान्ही जी का, यह रास्ता नहीं है। कालीचरन, तुम बहुत बहादुर लौजमान हो। लेकिन जोस में होस भी रखना चाहिए।"[10]

धार्मिक पाखंड के साथ ही एक ग्रामीण समाज की निरीहता का वर्णन रचनाकार ने संवादों के रूप में किया है। जमींदारी व्यवस्था की खामियाँ और समाज की कुरूपताओं को नाटक में व्यक्त किया है, डॉ. प्रशांत कहता है- "गरीबी और जहालत.. बस, यही दो कीटाणु हैं इस रोग के। इनोफ्लीज और सेंडफ्लाई से भी ज्यादा जहरीले हैं यहाँ के पूँजीपति और जमींदार..."[11] नाटक में संवादों के बीच में गीतों

की रचना की गई है जो एक ओर आंचलिकता को बढ़ावा देते हैं वहीं दूसरी ओर तत्कालीन व्यवस्था पर भी चोट और सामाजिक बदहाली का भी चित्रण करते हैं–

"रीत अब गाँव के बदले लागल,
लोग अब गाँव के बदले लागल
सवा रुपया रोज के मजूरिया
ना भरे पेटवा सुन मोरे भइया,
तार-तार देहिया के बस्तर फाटल..."[12]

हृषिकेश सुलभ ने मैला आँचल उपन्यास के नाट्य रूपांतरण में इसकी रोचकता और गंभीरता में वृद्धि की है।

उत्तर-औपनिवेशिक युग में जब समानता, स्वतंत्रता जैसी धारणाओं की बात की जा रही थी तब भी पूर्वांचल के ग्रामीण परिवेश में कृषकों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई थी। सामाजिक आर्थिक परिवर्तन हो रहे थे। किसानी के पुराने संसाधन पेट पालने में असमर्थ थे। अंततः किसान वर्ग रोज़गार की तलाश में कलकत्ता जैसे शहरों की ओर उन्मुख हुआ।

'अमली' सामंतवादी व्यवस्था का पर्दाफाश करने वाला नाटक है। नाटक का पात्र रमेसर उसी सर्वहारा किसान का प्रतीक है। किसानों का प्रवास से जमींदारी व्यवस्था को चोट पहुँची। फलस्वरूप सामंतवादी प्रताड़नाएँ बढ़ने लगीं। जबरन जमीन की हड़प, जबरन ऋण वसूली और रैय्यतों का शोषण आम बात हो गई। इस नाटक में अमली इसी सामंतवादी व्यवस्था का शिकार होती है। अमली का पति रामेसर जमींदारी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता। गरीबी और बदहाली से त्रस्त होकर वह रोजगार की तलाश में कलकत्ता शहर चला जाता है और फिर वापस नहीं लौटता।

पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष को ही परिवार का सर्वेसर्वा मान लिया जाता है। रामेसर के कलकत्ता चले जाने, और सास की मृत्यु हो जाने के बाद अमली अकेली पड़ जाती है। इसका फायदा उठाकर दोनों जमींदार महादेव राय और अबरार खां अपना उल्लू सीधा करते हैं। आर्थिक मदद के नाम पर महादेव राय अमली का दैहिक शोषण करता है। अबरार खां अमली की कृषि योग्य जमीन को तिकड़म लगाकर अपने नाम करा लेता है। गाँव में बात फैलती है। महादेव राय जमीन के लालच में, अबरार खां के विरुद्ध हिंदुओं को इकट्ठा करता है। वहीं दूसरी ओर अबरार खां मुस्लिम अवाम को। मामला देखते ही देखते सांप्रदायिक हो जाता है। मुंशी जी को गाँव में चुनाव लड़ना है इसलिए वह नहीं चाहते की कोई भी विवाद हो। अपना राजनीतिक लाभ देखते हुए मुंशी जी अमली को चरित्रहीन और फसाद की जड़ बनाते हुए गाँव से निकलवा देते हैं और दोनों जमींदारों की सुलह करते हुए, अमली की जमीन (जिस पर अबरार खां का कब्जा है।) पर सरकारी विद्यालय खुलवाने की बात करते हैं। मुंशी कहता है, "ई जमीन को सार्वजनिक मान लो। ई जमीन पर स्कूल खोलवा देंगे। हम मंत्री जी से बात करेंगे। अबकी बार मंगल बाबू एम पी का चुनाव लड़ रहे हैं उनका भी साथ मिलेगा"[13] अमली नाटक भारतीय समाज की विडंबना और कुरूपता को प्रस्तुत करता है। अपने स्वार्थ के लिए सत्ताधारी वर्ग सर्वहारा और कमजोर वर्ग का शोषण करता है। जहालत और राजनीतिक त्रासदी का शिकार होते हैं अमली जैसे पात्र जिनका साधारण जीवन तहस-नहस हो जाता है।

हृषिकेश सुलभ ने अपने नाटकों में कथ्य और शिल्प को लेकर अभिनव प्रयोग किए हैं। शूद्रक की रचना मृच्छकटिकम् संस्कृत साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृति है। जो अपने काल परिवेश का यथार्थ चित्रण करती है। 'माटीगाड़ी' नाटक का आधार शूद्रक की यही रचना है। तत्कालीन परिवेश के लोकरंजक शिल्प के साथ-साथ नाटक में तत्कालीन समय की समस्याएँ भी समझ आती हैं। सात्विक, आंगिक, वाचिक और आहार्य सौंदर्य के विविध रूपों का वर्णन, राजकीय कथा और सामाजिक समस्या को नाटक उठाता है। चारूदत्त वसंतसेना के प्रेम प्रकरण के साथ-साथ शकराज द्वारा वसंतसेना का अपहरण और न्याय व्यवस्था का चित्रण नाटक के केंद्र में है। हृषिकेश सुलभ ने नाटक का कथ्य लेकर इसमें समकालीन परिस्थिति और पूर्वांचल क्षेत्र संस्कृति को मिलाकर लेकर नवीन प्रयोग किया है। हृषिकेश सुलभ की रंगदृष्टि महत्त्वपूर्ण हैं। जो स्त्री अस्मिता और औचित्य को नाटक के केंद्र में स्थापित करती है। साथ ही समकालीन विमर्श को नाटक के द्वारा प्रस्तुत करती है। शूद्रक और हृषिकेश सुलभ की रंगदृष्टि में अंतर केवल इतना है कि शूद्रक जहाँ नाटक को सुखांत बनाने के लिए दुष्ट शकार को माफ कर देते हैं। वहीं, सुलभ ऐसा नहीं करते। संगीत के साथ पूर्वी आलाप का तर्ज इस प्रकार है–

'नाहीं माफी पापी के, सजाय होई भइया,
तबाह कईल जिनगी, जे तबाह होई भइया'

भोजपुरी में वर्णित यह गीतबंध वर्तमान समय की उपयोगिता को व्यक्त करता है। जो सज़ा का भागी है वह सज़ा पाएगा, जो शोषण की प्रवृत्तियों में लिप्त होगा उसका खामियाजा भी उसे ही भुगतना पड़ेगा। सुलभ के इस नाटक के अंत में खलनायक सज़ा पाता है। इस तरह के प्रसंगों में सामाजिक न्याय और समता देखने को मिलती है–

समकालीन नाटकों के क्षेत्र में जहाँ विभिन्न समकालीन नाटककारों ने वर्तमान समय के परिदृश्य की विडंबना को समझने और विश्लेषित करने के लिए मिथकों का सहारा लिया वही ऋषिकेश सुलभ ने खास आंचलिक शैली का प्रयोग किया। इनके नाटकों में चाहे कथावस्तु कोई भी हो के साथ लोक को प्राथमिकता दी है। वे विमर्श के विश्लेषण में बहुत ही सतर्क हैं। विमर्श की चेतना बेशक पश्चिम से आई हो लेकिन लोक में बँधी इनकी नाट्य शैली पूर्णतः मौलिक है। हृषिकेश सुलभ के नाटकों मे खड़ीबोली हिंदी के साथ साथ भोजपुरी का मिलाजुला प्रयोग है। भोजपुरी गीतों ने नाट्य प्रस्तुति को अधिक रुचिपूर्ण बनाया है। हिंदी नाटकों मे यह शिल्पगत प्रयोग और इनकी दृश्य योजना नाटकों को किसी विशेष वर्ग के लिए ही नहीं बाँधती। इनके नाट्य लेखन की ही विशेषता है कि इन्हें किसी भी वर्ग का पाठक या दर्शक आसानी से समझ सकता है।

निष्कर्ष : हृषिकेश सुलभ आज के विमर्शवादी प्रश्नों की तलाश के लिए न तो अतीत की खाक छानते हैं और न ही किसी बड़े पौराणिक चरित्र का सहारा लेते हैं। वे एक सामान्य वर्ग के सामान्य मनुष्य के द्वारा आज के ज्वलंत मुद्दों को उठाते हैं। धरती आबा का नाटक का प्रमुख चरित्र बिरसा भी एक महान चरित्र होते हुए भी एक सामान्य क्रांतिकारी अभिभावक की भूमिका का निर्वहन करता है, जिसके जहन

में एक राजनीतिक क्रांतिकारी का तेवर नहीं अपितु एक संतान- दायित्व से पूर्ण अभिभावक की भूमिका है। बटोही और अमली नाटकों के केंद्र में स्त्री जीवन की घोर त्रासदी है। सुलभ इस त्रासदी को अपनी ही ग्रामीण जीवन के शिल्प के साथ समायोजित करते हैं। एक सामान्य पुरुष चरित्र होते हुए भी बहुत ही सरल रूप से पुरानी रूढ़ियों को तोड़ते हैं। दालिया, मैला आँचल और माटीगाड़ी तीनों नाटक चर्चित साहित्य की विविध रचनाओं के नाट्य रूपांतरण हैं। जिनसे इन रचनाओ के भाव को एक नया दृष्टिकोण मिला है। इन नाटकों में न केवल कथ्य की ताजगी है अपितु शिल्प के साथ-साथ अंतर्वस्तु भी विविध रूप से निखर कर सामने आती है।

संदर्भ सूचीः

1. सुलभ, हृषिकेश; 2013, धरती आबा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 95
2. वही, पृ. 32
3. वही, पृ. 39
4. वही, पृ. 11
5. वही, पृ. 40
6. सुलभ, हृषिकेश; 2013, बटोही, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 18
7. वही, पृ. 43
8. सुलभ, हृषिकेश; 2014, दालिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 34
9. वही, पृ. 45
10. सुलभ, हृषिकेश; 2013, तीन रंगनाटक, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 175
11. वही, पृ. 225
12. वही, पृ. 215
13. वही, पृ. 67

शोधार्थी
हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

●

'रंगमंच एक जनतांत्रिक कला है। कई कलाओं का समुच्चय है रंगमंच। शुचितावाद के आग्रह से रहित ग्रहणशीलता का गुण इसे विनम्र बनाता है। यहाँ कुछ भी पुराना नहीं होता। पूर्वाभ्यास या मंचन-हर बार सब कुछ नया होता है, बार-बार दुहराए जाने के बावजूद।'

— हृषीकेश सुलभ
'रंगमंच का जनतंत्र' पुस्तक से साभार

महाकुंभ 2025

विश्व का सबसे बड़ा जनसमागम

आस्था, अध्यात्म और सांस्कृतिक एकता का प्रतीक

जन्मशती वर्ष

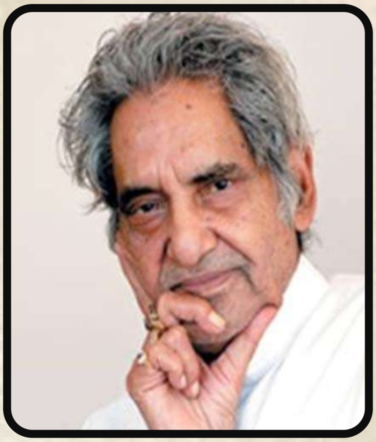

गोपालदास नीरज

मोहन राकेश

कृष्णा सोबती

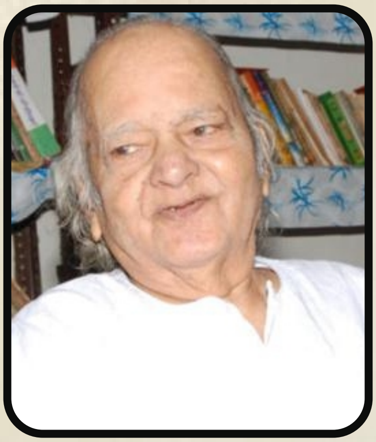

अमरकांत

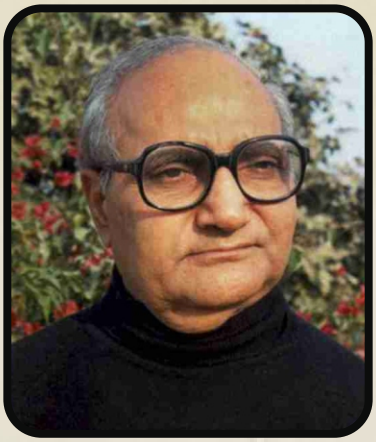

श्रीलाल शुक्ल

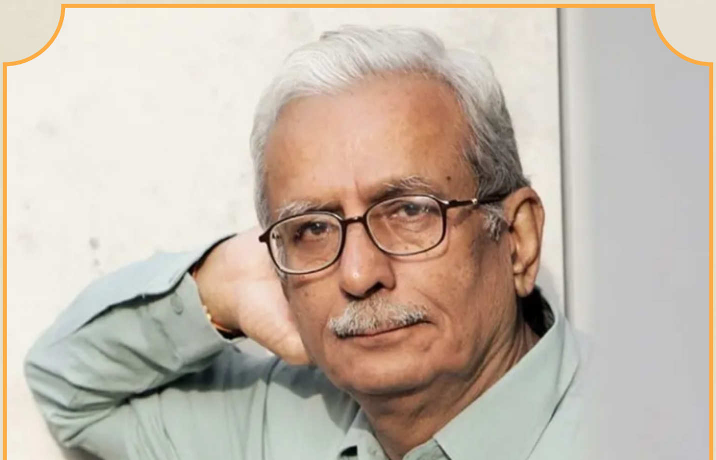

विनोद कुमार शुक्ल

विनोद कुमार शुक्ल को इस वर्ष 59वें 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।